# भूमिका

राष्ट्र की सम्पन्नता का आधार शिक्षा का सर्वाङ्गीण विकास है। आधुनिक युग मे प्रगति के पथ पर अभियान करने के लिये लालायित सभी देश शिक्षा की समस्याओ का समाधान करके उसके मार्ग को प्रशस्त बनाने के कार्य मे संलग्न हैं। *'समाजवादी आदर्श के समाज'* की स्थापना को अपना लक्ष्य मान कर आज हमारा देश भी शिक्षा की विविध समस्याओ का निराकरण करके उसके पुनर्संगठन तथा विस्तार के लिये नवीनतम योजनाओ को कार्यान्वित किया जा रहा है। भारत में शिक्षा की ऐसी अनेकों समस्यायें हैं जिन पर देश के नेताओं और शिक्षाविदों द्वारा गम्भीर चिन्तन एवं विचार-विमर्श किया जा रहा है। ऐसी परिस्थिति में शिक्षा के इतिहास के छात्रों और शिक्षा-नौका के कर्णधार के रूप में अध्यापको के लिये शिक्षा की समस्याओं और उनके समाधान के उपायों का अध्ययन अनिवार्य हो गया है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये यह पुस्तक प्रस्तुत की जा रही है।

गत कुछ वर्षों से प्रशिक्षण-महाविद्यालयों के छात्राध्यापको को एक ऐसी पुस्तक का अभाव खटक रहा था जिसमें भारतीय शिक्षा की समस्याओ का सरल एवं सुन्दर ढङ्ग से विवेचन किया गया हो। इस विचार-विन्दु को समक्ष रख कर इस पुस्तक की रचना की गई है। समस्याओ के साथ-साथ शिक्षा के क्षेत्र मे किये जाने वाले महत्त्वपूर्ण परीक्षणों का भी आलोचनात्मक विवरण पुस्तक में दिया गया है।

इस पुस्तक के लेखन मे श्री रामबाबू शर्मा, एम० ए० एवं भाषा के परि-मार्जन मे श्री विनोदकुमार अग्रवाल, एम० ए० से जो विशेष सहयोग प्राप्त हुआ है, उसके लिये हम उनके आभारी हैं।

दयालबाग़ — डी० पी० जौहरी
१-६-६० — पी० डी० पाठक

# भूमिका

राष्ट्र की सम्पन्नता का आधार शिक्षा का सर्वाङ्गीण विकास है। आधुनिक युग में प्रगति के पथ पर अभियान करने के लिये लालायित सभी देश शिक्षा की समस्याओं का समाधान करके उसके मार्ग को प्रशस्त बनाने के कार्य में संलग्न हैं। 'समाजवादी आदर्श के समाज' की स्थापना को अपना लक्ष्य मान कर आज हमारा देश भी शिक्षा की विविध समस्याओं का निराकरण करके उसके पुनस्संगठन तथा विस्तार के लिये नवीनतम योजनाओं को कार्यान्वित किया जा रहा है। भारत में शिक्षा की ऐसी अनेकों समस्यायें हैं जिन पर देश के नेताओं और शिक्षाविदों द्वारा गम्भीर चिन्तन एवं विचार-विमर्श किया जा रहा है। ऐसी परिस्थिति में शिक्षा के इतिहास के छात्रों और शिक्षा-नौका के कर्णधार के रूप में अध्यापकों के लिये शिक्षा की समस्याओं और उनके समाधान के उपायों का अध्ययन अनिवार्य हो गया है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये यह पुस्तक प्रस्तुत की जा रही है।

गत कुछ वर्षों से प्रशिक्षण-महाविद्यालयों के छात्राध्यापकों को एक ऐसी पुस्तक का अभाव खटक रहा था जिसमें भारतीय शिक्षा की समस्याओं का सरल एवं सुन्दर ढङ्ग से विवेचन किया गया हो। इस विचार-बिन्दु को समक्ष रख कर इस पुस्तक की रचना की गई है। समस्याओं के साथ-साथ शिक्षा के क्षेत्र में किये जाने वाले महत्वपूर्ण परीक्षणों का भी आलोचनात्मक विवरण पुस्तक में दिया गया है।

इस पुस्तक के लेखन में श्री रामबाबू शर्मा, एम० ए० एवं भाषा के परिमार्जन में श्री विनोदकुमार अग्रवाल, एम० ए० से जो विशेष सहयोग प्राप्त हुआ है, उसके लिये हम उनके आभारी हैं।

दयालबाग
१-६-६०

बी० पी० जौहरी
पी० डी० पाठक

# विषय-सूची

## अध्याय १

### अनिवार्य शिक्षा



## अध्याय २

### अपव्यय एवं अवरोधन



## अध्याय ३

### स्त्री-शिक्षा



## अध्याय ४

### समाज-शिक्षा

२. विश्व-भारती



३. अरविन्द-आश्रम



४. गुरुकुल



५. वनस्थली विद्यापीठ



— ० —

अध्याय १

# अनिवार्य शिक्षा[1]

अपने युग के महान् अंग्रेज लेखक रस्किन (Ruskin) के अग्रलिखित शब्द शिक्षा-जगत को सदैव आलोकित करते रहेंगे : "शिक्षा का अभिप्राय व्यक्तियों को उन बातों की शिक्षा देना नहीं है, जिन्हें वे नहीं जानते हैं; शिक्षा का अभिप्राय है उनको इस प्रकार का व्यवहार करने की शिक्षा देना जैसा कि वे नहीं करते हैं।"[2] हम भले ही अपने को प्रगतिशील, आधुनिक तथा सभ्य कहें, परन्तु हमारे नैतिक आदर्शों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। आज का मानव उसी प्रकार की समस्या उपस्थित करता है, जैसा कि प्राचीन मानव करता था। उसने अपने बाह्य आवरण को परिवर्तित कर लिया है, परन्तु उसका स्वभाव वही है। वह अधिक सुन्दर और आकर्षक वस्त्र धारण करता है, परन्तु फिर भी वह प्राचीन मानव से भिन्न नहीं है। अपनी सभ्यता की चरम सीमा पर पाश्चात्य देशों के पुरुषों ने गत दो विश्व-युद्धों में ऐसे जघन्य अपराध किये हैं, जिनकी समानता इतिहास में प्राप्त होना असम्भव है।[3] अतः आज के प्रजा-

1. Compulsory Education.
2. "Education does not mean teaching people to know what they do not know; it means teaching them to behave as they do not behave."—John Ruskin, Quoted by Sir Richard Livingstone : *Some Tasks for Education*, p. 24.
3. "In the last years the West, at the height of its civilization has seen human nature guilty of crimes to which history has no parallel."—Sir Richard Livingstone, *op. cit.* p. 27.

तन्त्रीय युग में सर्व महान् आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षा द्वारा मानव को मानवता का पाठ पढ़ाया जाय और उसे प्रजातन्त्र राज्य का सुयोग्य नागरिक बनाया जाय। एक उत्तम नागरिक के रूप में उसे दूसरों के साथ रहना और उनके अधिकारों तथा भावनाओं का आदर करना सीखना है। उसे समाज की प्रगति में योग देना है, अन्यथा समाज का जीवित रहना असम्भव है। समाज के विनाश में हमारा विनाश भी अवश्यम्भावी है।

आज हमारा देश भी एक प्रजातन्त्र राज्य है और उसको सफल बनाने के लिये उत्तम एवं आदर्श नागरिकता की शिक्षा देना अनिवार्य है। इस शिक्षा की आवश्यकता इसलिए भी अधिक है क्योंकि भारत की केवल १६.६१% जनसंख्या शिक्षित है।[1] भारतीयों को एक विशेष स्तर तक अनिवार्य शिक्षा प्रदान करके ही उन्हें देश के योग्य नागरिक बनाने की आशा की जा सकती है और भारत को सफल प्रजातन्त्र बनाने का स्वर्णिम स्वप्न पूर्ण हो सकता है। इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिये भारतीय संविधान मे यह स्पष्ट कर दिया गया है : "राज्य इस संविधान के कार्यान्वित किये जाने के समय से दस वर्ष के अन्तर्गत सभी बच्चों के लिये जब तक वे चौदह वर्ष की आयु को पूर्ण नहीं कर लेंगे निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का प्रयास करेगा।[2]

इस स्थान पर अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के इतिहास पर विहंगम दृष्टिपात कर लेना अनुपयुक्त न होगा।

## प्राथमिक शिक्षा—अनिवार्यता से पूर्व

### १७५७ से १८१३ तक

१७५७ में प्लासी के युद्ध के उपरान्त ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारत में राज्य-प्रसार के पथ पर अपना अभियान प्रारम्भ किया और उसी समय से भारतीय शिक्षा के इतिहास मे एक नवीन अध्याय आरम्भ हुआ। उस समय तक देश में व्यापक अशांति और अराजकता के परिणामस्वरूप भारतीय शिक्षा-व्यवस्था की काया पर्याप्त रूप से जीर्ण और जर्जर हो चुकी थी, फिर भी सम्पूर्ण देश में शिक्षा-संस्थाओं का जाल बिछा हुआ था, जो जनता में

1. भारत (वार्षिक सन्दर्भ ग्रन्थ), १९६०, पृ० ७३।
2. "The state shall endeavour to provide within a period of ten years from the commencement of this Constitution for the free and compulsory education for all children until they complete the age of fourteen years."—*Article 45 of the Constitution adopted by Free India on January, 26, 1950.*

कारण व्यक्तियों के सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन का अङ्ग बन गई थीं।[1]

१८३५ के आसपास केवल बंगाल में एक लाख पाठशालायें थी।[2] परन्तु अंग्रेजों ने अपने व्यापारिक एकाधिकार एवं राजनीतिक स्वामित्व को चिर-स्थायी बनाये रखने की अभिलाषा से देशी शिक्षा का गला घोंट दिया। "यदि किसी देश को दास बनाए रखना है, तो उसके साहित्य और संस्कृति का विनाश कर देना चाहिए।" अपनी शिक्षा-नीति के निर्माण में भारत के अंग्रेज शासकों ने इसी सिद्धान्त का अनुसरण किया। इसी के फलस्वरूप भारतीय शिक्षा-व्यवस्था निष्प्राण होती चली गई और पाश्चात्य सभ्यता तथा संस्कृति से बोझिल आधुनिक शिक्षा व्यवस्था पनपने लगी।

## १८१३ से १८५४ तक

आधुनिक शिक्षा-व्यवस्था पर आधारित शिक्षासंस्थायें स्थापित करने का श्रेय मिशनरियों को प्राप्त है। उन्होंने ही भारतीयों को प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा की व्यवस्था करने के लिये शिक्षा-संस्थाओं का निर्माण किया। कम्पनी के शासनकाल में इसकी निश्चित रूप से अवहेलना की गई क्योंकि कम्पनी के संचालकों को व्यापार द्वारा धनोपार्जन में ही प्रमुख रुचि थी, न कि भारतीयों के लिये शिक्षा की व्यवस्था करके धन व्यय करने की। १८१३ के आज्ञा-पत्र (Charter) के अनुसार भारतीय साहित्य के पुनरुत्थान एवं विज्ञानों के प्रसार के लिये कम से कम एक लाख रुपया प्रतिवर्ष व्यय करने का आदेश दिया गया। परन्तु इस थोड़े से धन का, जो देश की इतनी विशाल जन-संख्या के लिये कदापि भी पर्याप्त नहीं था, दस वर्ष तक समुचित प्रयोग नहीं किया गया। १८२४ से शिक्षा के लिये अल्प धन-राशि व्यय की जाने लगी, परन्तु अल्प होने के कारण वह करोड़ों भारतीयों की शिक्षा की आवश्यकता को पूर्ण न कर सकी।

## १८५४ से १८५७ तक

१८५४ के वुड के शिक्षा-घोषणा-पत्र (Wood's Despatch) में यह स्वीकार किया गया कि जन-साधारण की शिक्षा की पूर्ण रूप से अवहेलना की गई थी। अतः घोषणा-पत्र में कहा गया कि जन-साधारण को व्याव-हारिक एवं लाभदायक शिक्षा देने की व्यवस्था की जाय, प्राथमिक

1. A. N. Basu : *Education in Modern India*, p. 5.
2. *Ibid*, p. 5.

विद्यालयों की संख्या में वृद्धि की जाय और सहायता-अनुदान (Grant-in-aid) द्वारा देशी विद्यालयों को प्रोत्साहित किया जाय। परन्तु भारत स्थित कम्पनी के कर्मचारियों ने प्राथमिक शिक्षा की उपेक्षा करके, माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा के प्रसार में ही अधिक धन व्यय किया। फलस्वरूप प्राथमिक शिक्षा की प्रगति न हो सकी। १८५७ की क्रान्ति के उपरान्त ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने कम्पनी की राजनैतिक सत्ता का अन्त करके भारतीय शासन की बागडोर अपने हाथ में सम्हाली।

### १८५७ से १८८२ तक

१८५९ के स्टैनले के घोषणा-पत्र ( Stanley's Despatch ) में भारत-सरकार से प्राथमिक शिक्षा का भार अपने ऊपर लेने के लिये कहा गया और उसका व्यय-भार वहन करने के लिये स्थानीय कर लगाने का परामर्श दिया गया। फलस्वरूप प्राथमिक शिक्षा की द्रुत गति से उन्नति हुई। १८८२ के अन्त तक प्राथमिक विद्यालयों की संख्या ८२,९१६ और उनमें शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्रों की संख्या २१ लाख हो गई। परन्तु इन आंकड़ों से प्राथमिक शिक्षा के विकास को अनुपम स्वीकार कर लेना भ्रमात्मक होगा, क्योंकि १८८२ में भारत में साक्षरता का प्रतिशत केवल १.२ था।[1]

### १८८२ से १९०४ तक

१८८२ में भारतीय शिक्षा-आयोग ( Indian Education Commission ) की सिफारिश के अनुसार प्राथमिक शिक्षा का प्रबन्ध स्थानीय संस्थाओं को हस्तान्तरित कर दिया गया। इस नवीन व्यवस्था से प्राथमिक शिक्षा की कुछ प्रगति तो अवश्य हुई, पर उसको संतोषजनक नहीं कहा जा सकता। यद्यपि आयोग ने यह स्पष्ट शब्दों में बलपूर्वक कहा था कि प्राथमिक शिक्षा को सरकार का पूर्ण संरक्षण प्राप्त होना चाहिये, तथापि सरकार ने इसकी अवहेलना की। वास्तविकता यह है कि सरकार ने स्थानीय संस्थाओं पर प्राथमिक शिक्षा का उत्तरदायित्व डालकर उससे अपना पीछा छुड़ा लिया। फलस्वरूप प्राथमिक शिक्षा का उचित विस्तार नहीं हुआ। इसका प्रमाण इस बात से प्राप्त होता है कि १९०२ तक प्राथमिक विद्यालयों की छात्र-संख्या में केवल ६ लाख ६० हजार की वृद्धि हुई। स्थानीय संस्थाओं के प्रयास के बावजूद भी राज्य से पर्याप्त आर्थिक सहायता प्राप्त न होने के कारण प्राथमिक शिक्षा का विकास अवरुद्ध हो गया। प्राथमिक शिक्षा की सरकार द्वारा अब तक जो अवहेलना की गई थी, उसे भारत के गवर्नर-जनरल, लार्ड कर्जन (Lord

[1] G. K. Gokhale : *Speeches*, p. 595.

Curzon) ने इन शब्दों में स्वीकार किया : "प्राथमिक शिक्षा से मेरा अभिप्राय जन-साधारण को मातृ-भाषा की शिक्षा देना है। मैं उन व्यक्तियों में से हूँ, जो समझते हैं कि सरकार ने इस दिशा में अपने कर्तव्य का पालन नहीं किया है।"[1] १९०४ के "शिक्षा-नीति सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव" (Government Resolution on Educational Policy) में कर्ज़न ने स्वीकार किया : "प्राथमिक शिक्षा के प्रश्न पर सामान्य रूप से विचार करने पर सरकार इस निष्कर्ष पर पहुँचे बिना नहीं रह सकती है कि अब तक प्राथमिक शिक्षा के प्रति अपर्याप्त ध्यान दिया गया है, और उसे सार्वजनिक कोष से अपर्याप्त धन-राशि प्राप्त हुई है।"[2]

लार्ड कर्ज़न ने प्राथमिक विद्यालयों की संख्या में वृद्धि करने और उनके शिक्षण-स्तर को ऊँचा उठाने के लिये सराहनीय कार्य किया। परन्तु उसकी बंग-भंग (Partition of Bengal) की मूर्खतापूर्ण एवं निष्प्रयोजन नीति ने उसके सभी शिक्षा-कार्यों पर पानी फेर दिया। जनता उसकी सेवाओं की ओर रंचमात्र भी ध्यान न देकर, उसके अन्याय के कारण क्रोधाग्नि से प्रज्वलित हो उठी। १९०५ में कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में राष्ट्रीय आन्दोलन प्रारम्भ करने का निश्चय किया गया। इस आन्दोलन ने भारतीयों को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक कर दिया। अन्य अधिकारों के साथ-साथ उन्होंने विदेशी सरकार से शिक्षा प्राप्त करने के अधिकार की भी बलपूर्वक शब्दों में माँग की। यहीं से प्राथमिक शिक्षा में एक मोड़ आता है, और वह अनिवार्य शिक्षा की दिशा में अग्रसर होती है।

## अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा

### प्रारम्भिक प्रयास

यद्यपि वर्तमान शताब्दी के प्रारम्भ तक अनिवार्य शिक्षा के लिये कोई ठोस क़दम नहीं उठाया गया था, तथापि कतिपय शिक्षा-प्रेमी अंग्रेजों ने

1. "Primary Education—by which I understand the teaching of the masses in vernacular—opens a wider and more contested field of study. I am one of those who think that Government has not fulfilled its duty in this respect." —Curzon's Speech at the Simla Conference, 1901.
2. "On a general view of the question the Government of [illegible] cannot avoid the conclusion that primary education received insufficient attention and an inade- of the public funds." —*Government Resolu-* [illegible] *Policy*, 1904.

जाँच करने के लिए १६०६ में एक समिति की नियुक्ति की। परन्तु प्रान्त के दुर्भाग्य से समिति इस निष्कर्ष पर पहुँची कि अनिवार्य शिक्षा प्रारम्भ करना उचित न होगा, क्योंकि जनता इसके लिए तैयार नहीं थी।[1]

### बड़ोदा का सर्वप्रथम प्रयोग

भारत में अनिवार्य शिक्षा का सर्वप्रथम सफल प्रयोग बड़ौदा-नरेश, महाराज सायाजीराव गायकवाड़ ने किया। उदार मस्तिष्क एवं शिक्षा-प्रेमी नरेश ने १८६२ में घोषित किया कि उनके राज्य के अमरेली नगर के एक ताल्लुका के ६ ग्रामों में प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य होगी। ७ से १२ वर्ष तक की आयु के समस्त बालकों और ७ से १० वर्ष तक की आयु की सब बालिकाओं को प्राथमिक विद्यालयों में अनिवार्य रूप से शिक्षा ग्रहण करनी थी। नवम्बर, १८६३ में अनिवार्य शिक्षा का यह कार्य प्रारम्भ किया गया और इसमें इतनी आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त हुई कि उपरोक्त ताल्लुका के ५२ ग्रामों में शिक्षा अनिवार्य कर दी गई। १६०६ में अधिनियम बनाकर राज्य के सभी बच्चों के लिए प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य कर दिया गया।[2]

### गोखले के असफल प्रयास

राष्ट्रीय भावनाओं से सराबोर शिक्षा के मर्मज्ञ गोपाल कृष्ण गोखले ने बड़ोदा—नरेश के उत्कृष्ट उदाहरण से अनुप्राणित होकर केन्द्रीय धारा-सभा (Imperial Legislative Council) में १६ मार्च १६१० को यह प्रस्ताव रखा: "यह सभा सिफारिश करती है कि सम्पूर्ण देश में प्राथमिक शिक्षा को निःशुल्क तथा अनिवार्य बनाने का कार्य प्रारम्भ किया जाय।"[3] सरकार द्वारा प्रस्ताव पर विचार किये जाने का आश्वासन प्राप्त होने पर गोखले ने प्रस्ताव को वापिस ले लिया, परन्तु सरकार ने अपने आश्वासन को साकार रूप देने का स्वप्न में भी विचार नहीं किया।

प्राथमिक शिक्षा के प्रति सरकार की उदासीनता देख कर गोखले ने १६ मार्च १६११ को केन्द्रीय धारा-सभा मे प्राथमिक शिक्षा-सम्बन्धी अपना विधेयक (Bill) प्रस्तुत किया। "इस विधेयक का उद्देश्य देश की प्राथमिक शिक्षा-

1. D. M. Desai : *Universal Compulsory and Free Primary Education in India*, pp. 42-48.
2. *The Gazetteer of the Baroda State*, pp. 310-312
3. "That this Council recommends that a beginning should be made in the direction of making elementary education free and compulsory, throughout the country."—Gokhale: *op. cit.*, p. 609.

थ –

...णाली में अनिवार्यता के सिद्धान्त को क्रमशः लागू करना था।" इस विधेयक के अनुसार स्थानीय परिषदों द्वारा सरकार की पूर्व स्वीकृति प्राप्त करके उन क्षेत्रों में अनिवार्य शिक्षा प्रारम्भ की जा सकती थी, जहाँ ६ से १० वर्ष तक की आयु के बालकों की एक निश्चित संख्या शिक्षा प्राप्त कर रही थी। परन्तु गोखले का अनिवार्य शिक्षा का श्रीगणेश करने का यह लघु तथा तुच्छ प्रयास सफल न हो सका। धारा-सभा में विधेयक का घोर विरोध हुआ और १६ मार्च १९१२ को इसे १३ वोटों के विरुद्ध ३८ वोटों से गिरा दिया गया।

## अनिवार्य शिक्षा-अधिनियम

गोखले के कार्य से प्रेरणा प्राप्त करके भारत के एक अन्य महान् नेता विट्ठलभाई पटेल ने बम्बई की प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा में एक विधेयक प्रस्तुत किया जिसका उद्देश्य प्रान्त के नगरपालिका क्षेत्रों में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाना था। विधेयक ने १९१८ में 'बम्बई प्राथमिक अधिनियम' का रूप धारण किया। यह प्रथम अधिनियम था जिसके द्वारा एक प्रान्त की सरकार ने अनिवार्य शिक्षा के सिद्धान्त की स्वीकृति प्रदान की। यह अधिनियम शिक्षा-जगत में क्रान्ति का अग्रदूत था। इसके परिणाम स्वरूप १९३० तक प्रायः सभी प्रान्तों में अनिवार्य शिक्षा के अधिनियम पारित कर दिये गये।

अनिवार्य शिक्षा के इन अधिनियमों के अनुसार प्राथमिक शिक्षा का भार स्थानीय संस्थाओं को सौंप दिया गया। अधिनियमों को कार्यान्वित करने का उत्तरदायित्व भी इन्हीं संस्थाओं पर रखा गया। शिक्षा के व्यय की पूर्ति के लिए इन्हें 'शिक्षा-कर'(Education Cess) लगाने का अधिकार दे दिया गया। प्रान्तीय सरकारों ने इस व्यय के लिये आर्थिक सहायता देने का वचन दिया। अनिवार्य शिक्षा का लाभ वे ही बालक और बालिकायें उठा सकते थे, जिनकी आयु साधारणत. ६ वर्ष से १० वर्ष तक की थी।

## अनिवार्यता का प्रसार

अनिवार्य शिक्षा-अधिनियमों और राष्ट्रीयता की भावना की व्यापकता के फलस्वरूप अनिवार्य शिक्षा का प्रसार क्रमशः तीव्र होता गया। राष्ट्रपिता के पथ-प्रदर्शन में स्त्रियों ने अपने अधिकारों की माँग की। उन्होंने १९२७ में 'अखिल भारतीय स्त्री-शिक्षा सम्मेलन' आयोजित करके पुरुषों के अनुरूप शिक्षा की अधिकारिणी होने का नारा बुलन्द किया। महात्मा गाँधी और डा० अम्बेदकर के अथक प्रयास से हरिजनों में न केवल जागृति, अपितु शिक्षा का प्रसार भी प्रारम्भ हुआ। इन सभी कारणों के फलस्वरूप जनता प्राथमिक शिक्षा में अधिक रुचि लेने लगी। परिणामस्वरूप उसकी प्रगति होना स्वाभावि...

था। भारत के सौभाग्य से १९२१ में प्रान्तीय शिक्षा का सचालन-सूत्र भारतीय मंत्रियों के हाथ आ जाने के कारण प्राथमिक शिक्षा के प्रसार को राजकीय योग भी प्राप्त हुआ।

अनिवार्य शिक्षा की यह प्रगति १९३० तक होती रही, परन्तु तत्पश्चात् १९३१ से १९३७ तक इसका विकास प्रायः अवरुद्ध हो गया। इसके दो प्रमुख कारण थे। प्रथम, यह काल विश्वव्यापी आर्थिक-अवसाद (Economic depression) का था जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव भारत पर भी पड़ा था। अतः अनिवार्य शिक्षा की व्ययपूर्ण योजनाओं को स्थगित कर दिया जाना स्वाभाविक था। द्वितीय, १९२७ में नियुक्त की गई हर्टॉग-समिति (Hartog Committee) ने इस बात पर बल दिया था कि प्राथमिक शिक्षा को अधिक लाभप्रद बनाने के लिये प्राथमिक विद्यालयों की सख्यात्मक वृद्धि न की जाय, अपितु उनकी गुणात्मक उन्नति पर विशेष ध्यान दिया जाय और शिक्षा को ठोस (Consolidation) बनाने की नीति का अनुसरण किया जाय। जनता का विरोध करने पर भी सरकार ने समिति के इस सुझाव को क्रियान्वित किया जिससे अनिवार्य शिक्षा पर वज्र प्रहार हुआ और उसका प्रसार अवरुद्ध हो गया।

१९३७ में प्रान्तीय स्वशासन की स्थापना के समय ११ प्रान्तों में से ६ में कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों का निर्माण हुआ। उन्होंने अपने प्रान्तों मे अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा को प्रचलित करने के प्रयास किये। उन्होंने उन ग्रामों में स्कूल स्थापित किये जहाँ प्राथमिक विद्यालय नहीं थे। स्थानीय संस्थाओं को अतिरिक्त सहायता-अनुदान दिया, जिससे वे प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने में होने वाले व्यय का भार वहन कर सकें। जिन स्थानों में जनता की माँग थी, वहाँ बालिका-विद्यालय निर्मित किये। इन प्रयासों के फलस्वरूप अनिवार्य शिक्षा की अति द्रुत गति से उन्नति हुई। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय बालकों के लिये २२९ नगरों तथा १०,०१७ ग्रामों और बालकों एवं बालिकाओं के लिये १० नगरों तथा १,४०४ ग्रामों मे अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था की जा चुकी थी।[1]

## स्वतंत्र भारत में अनिवार्य शिक्षा

स्वतंत्र भारत ने अपने नवनिर्माण के लिये शिक्षा-प्रसार की आवश्यकता का अनुभव किया। इसीलिये राष्ट्रीय सरकार ने प्राथमिक शिक्षा को निःशुल्क, सार्वभौमिक तथा अनिवार्य बनाने का निश्चय किया। भारतीय संविधान की ४५ वीं धारा में अनिवार्य शिक्षा के सिद्धान्त की घोषणा की गई। यह शिक्षा, बेसिक शिक्षा के प्रकार की होगी। इसी के आधार पर राष्ट्रीय शिक्षा का भवन

1. *Progress of Education in India*, 1937-47, Vol. I, p. 73.

श्यक है। सैयदन ने लिखा है कि भारत की राजनीतिक स्थिति अनिवार्य शिक्षा योजना का कार्यान्वन शीघ्र ही चाहती है परन्तु देश के राजनीतिज्ञ इसके लिये न तो उत्सुक ही हैं और न वे ऐसा करने की स्थिति ही में हैं।[1] कारण यह है कि सत्ता हस्तान्तरण के समय से लेकर आज तक उनके समक्ष कितनी ही कठिन समस्यायें उपस्थित रही है और अब भी हैं, यथा–देशी राज्यों की समस्या, शरणार्थियों की समस्या, काश्मीर की समस्या, चीन की समस्या, विभिन्न भाषा-भाषी राज्यों की समस्या, खाद्यान्न की समस्या इत्यादि। इन समस्याओं ने सरकार के इतने धन और ध्यान पर अधिकार रखा है कि अनिवार्य शिक्षा के सिद्धान्त को स्वीकार करते हुए भी सरकार को शिक्षा के प्रति अपने कर्त्तव्य पालन का अवकाश नहीं प्राप्त हुआ है।

४. दोषपूर्ण शिक्षा-प्रशासन

भारत के अधिकांश राज्यों मे प्राथमिक शिक्षा का उत्तरदायित्व नगर-पालिकाओं तथा जिला परिषदों पर है। जब यह कार्य उन्हें सौंपा गया था, तब यह आशा की गई थी कि इससे शिक्षा का प्रसार अधिक तीव्र गति से होगा। परन्तु समय की गति ने सिद्ध कर दिया है कि ऐसा नहीं हुआ है। साधारणतः इन स्थानीय संस्थाओं में कार्य-क्षमता, अभिरुचि तथा धन का अभाव है। वे अनिवार्य शिक्षा का व्यय-भार वहन करने के लिये स्थानीय कर ले सकती हैं, परन्तु ऐसा करने से पद-लोलुप सदस्य आगामी निर्वाचन में अपना पद रिक्त करने के विचार से सशंकित हो उठते हैं। अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के सभी अधिनियम समयानुकूल न होकर प्राचीन हो गये हैं। फिर ऐसी कोई केन्द्रीय संस्था या शक्ति नहीं है, जो स्थानीय संस्थाओं को इन्हें कार्यान्वित करने के लिये बाध्य करे। ऐसी स्थिति में ये अधिनियम केवल पुस्तकों में लिखे हुए ही रह गये हैं। इसके अतिरिक्त प्राथमिक विद्यालयों की संख्या में तो वृद्धि की गई है, परन्तु उनके अनुपात में शिक्षा-निरीक्षकों की वृद्धि नहीं की गई है। शिक्षा-प्रशासन की ऐसी दोषपूर्ण व्यवस्था अनिवार्य शिक्षा के मार्ग में महान् बाधक सिद्ध हो रही है।

५. शिक्षकों की समस्या

प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने में शिक्षकों की वांछित संख्या उपलब्ध न होने के कारण सरकार के समक्ष एक अति कठिन समस्या उपस्थित है। अनुमान लगाया गया है कि शिक्षा को अनिवार्य बनाने के लिये २८ लाख

---

1. Saiyidain : *Compulsory Education in India*, p. 111.

शिक्षकों की आवश्यकता पड़ेगी, परन्तु इनमें से केवल ६२३,२५५ शिक्षक ही उपलब्ध हैं।[1] १९५५-५६ में प्रति शिक्षक के पास औसत रूप में शिक्षा देने के लिये ३३ छात्र थे।[2] नगर-विद्यालयों की अपेक्षा ग्राम विद्यालयों में शिक्षकों का अधिक अभाव है। शिक्षकों की वाञ्छित संख्या प्राप्त न होने तथा विद्यालयों में उनका अभाव होने का प्रमुख कारण यह है कि नवयुवकों के लिये अध्यापन कार्य आकर्षक नहीं है। प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों का वेतन इतना निम्न है कि किसी योग्य तथा सुशिक्षित नवयुवक का ध्यान उधर आकृष्ट ही नहीं होता है। नगरों में तो उनको धनोपार्जन के अन्य साधन प्राप्त रहते हैं, परन्तु ग्रामों में इस बात की आशा करना असम्भव है। इसके अतिरिक्त ग्रामों की अपेक्षा नगरों में सुखद जीवन व्यतीत करने के अधिक उत्तम साधन उपलब्ध होते हैं। इन्हीं सब बातों का विचार करके युवक अध्यापक ग्राम-विद्यालयों में कार्य नहीं करना चाहते हैं। जहाँ तक अध्यापिकाओं का प्रश्न है, वे ग्राम-विद्यालयों में कार्य करने का विचार ही नहीं करती हैं, जब तक कि उनका निवास-स्थान उसी ग्राम में न हो जिसमें कि विद्यालय है। ऐसी स्थिति में अध्यापकों तथा अध्यापिकाओं का प्राथमिक विद्यालयों में स्थायी अभाव होना स्वाभाविक है। इस अभाव की उपस्थिति में प्राथमिक शिक्षा का अनिवार्य बनाया जाना सम्भव नहीं प्रतीत होता है।

### ६. शिक्षण का निम्न स्तर

प्राथमिक विद्यालयों में प्रशिक्षित अध्यापकों की न्यूनता है। १९५५-५६ में इन विद्यालयों में ६,९१,२४६ व्यक्ति अध्यापन कार्य कर रहे थे, जिनमे से २,६८,०५७ अध्यापक तथा अध्यापिकायें अप्रशिक्षित थे।[3] अदीक्षित अध्यापक शिक्षण-विधियों से परिचित नहीं होते हैं। समस्त शिक्षकों में से ५ प्रतिशत से भी कम हाईस्कूल अथवा मिडिल परीक्षा उत्तीर्ण हैं। शेष सभी प्राथमिक स्तर तक शिक्षित हैं। धनाभाव के कारण प्राथमिक विद्यालय शिक्षण के उपकरणों को प्रयोग नहीं कर पाते हैं। इन समस्त कारणों के फलस्वरूप शिक्षा अरुचिकर तथा निम्न स्तर पर है। अतः वह बच्चों तथा उनके अभिभावकों को आकृष्ट करने में असफल रहती है।

1. S. N. Mukerji : *Education in India To day and To-morrow*. p. 102.
2. *Education in India*, 1955-56, p. 71,
3. [illegible]

प्रतिशत विद्यालय-भवन ही ऐसे हैं, जिन्हें उपयुक्त कहा जा सकता है। शेष सभी विद्यालय किराये के मकानों, मन्दिरों, धनी व्यक्तियों के गृहों, अध्यापकों के निवास-स्थानों आदि में चल रहे हैं। इनमें जगह का अभाव है और छात्रों के बैठने तथा खेलने के लिये उचित व्यवस्था नहीं है। अनेकों विद्यालय कोलाहलपूर्ण अथवा अवांच्छनीय वातावरण में स्थित हैं तथा उनके भवनों में धूप एवं वायु का प्रवेश न हो सकने के कारण छात्रों के स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। ऐसी स्थिति में प्रश्न यह उपस्थित होता है कि यदि शिक्षा को अनिवार्य करके छात्रों की संख्या में वृद्धि कर दी जाय तो उन्हें शिक्षा कहाँ दी जाय। निःसंदेह, उत्तर होगा कि नवीन भवनों का निर्माण किया जाय। पर इसके लिये धन जुटाना जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं, अत्यन्त कठिन है।

## १०. अनुपयुक्त पाठ्यक्रम

प्राथमिक विद्यालय का पाठ्य-क्रम संकीर्ण तथा स्थानीय आवश्यकताओं के अनुकूल नहीं है। इसमें पुस्तकीय शिक्षा पर बल दिया जाता है और छात्र को अपनी रचनात्मक शक्ति का विकास करने तथा कार्य करके सीखने के सिद्धान्त की अवहेलना की जाती है। पाठ्य-क्रम के इन दोषों का निराकरण करने के लिये सरकार ने प्राथमिक शिक्षा को बेसिक शिक्षा का रूप प्रदान करने का निश्चय किया है। इससे पाठ्यक्रम के दोष तो अनिवार्य रूप से दूर हो जायेंगे, परन्तु बेसिक शिक्षा की व्ययपूर्ण योजना को सम्पूर्ण देश में एक साथ न तो क्रियान्वित किया जा सकता है और न किया जा सका है।

## ११. अपव्यय एवं अवरोधन

प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर अत्यधिक अपव्यय ( Wastage ) एवं अवरोधन (Stagnation) हैं। प्रत्येक १०० छात्रों में से जो १९५२-५३ में कक्षा १ में थे, केवल ४३ छात्र १९५५-५६ में कक्षा ४ में पहुँचे।[1] इस प्रकार ५७ प्रतिशत छात्र परीक्षाओं में असफल होने अथवा अपने अभिभावकों को कार्य करके तथा धनोपार्जन करके सहायता देने के लिये विद्यालयों से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर गये। दुर्भाग्य से विद्यालयों की उपकरण हीनता, अवांच्छनीय स्थिति तथा आकर्षण रहित भवन उनको सम्पूर्ण शिक्षा प्राप्त करने के लिये प्रलोभित न कर सके। इस बात की परम आवश्यकता है कि प्राथमिक शिक्षा में अपव्यय तथा अवरोधन को रोका जाय, अन्यथा अनिवार्य शिक्षा-योजना अथवा शिक्षा-प्रसार की अन्य किसी भी योजना का सफल होना असम्भव है।

1. *Education in India*, 1955-56, p. 64.

### ७. आर्थिक समस्या

प्राथमिक विद्यालयों के समक्ष आर्थिक समस्या अति विकराल रूप में उपस्थित रहती है। हम ऊपर लिख चुके हैं कि प्राथमिक शिक्षा का उत्तर-दायित्व नगरपालिकाओं तथा जिला परिषदों पर है। सरकार ने ऐसा व्यय-पूर्ण दायित्व तो उन पर रख दिया, परन्तु उनके लिये धन की कोई व्यवस्था नहीं की। उनके स्वयं के आय-साधन सीमित हैं, जिससे वे प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाकर उसका व्यय-भार वहन करने में सर्वथा असमर्थ हैं। ब्रिटिश शासनकाल में प्राथमिक शिक्षा पर होने वाले कुल व्यय का ३० प्रतिशत सरकार द्वारा दिया जाता था। स्वतंत्र भारत में इस धन-राशि को ३३ प्रतिशत कर दिया गया है।[1] सरकार द्वारा दी जाने वाली इस न्यून आर्थिक सहायता को शिक्षा को अनिवार्य बनाने के लिये किसी प्रकार उपयुक्त नहीं कहा जा सकता है। वस्तुतः देश के नागरिकों को शिक्षित करने का उत्तरदायित्व राज्य पर होता है, न कि स्थानीय संस्थाओं पर। फिर यदि आर्थिक समस्या में ग्रस्त स्थानीय संस्थाएं शिक्षा को अनिवार्य बनाने का विचार नहीं करती हैं, तो इसके लिये उन पर दोषारोपण करना सर्वथा अनुचित है।

### ८. विद्यालय स्थापना की समस्या

अनिवार्य शिक्षा के मार्ग में एक अन्य कठिनाई विद्यालयों की स्थापना की समस्या है। नगरों में तो नहीं, परन्तु ग्रामों में इस कठिनाई पर विजय प्राप्त करना दुष्कर प्रतीत होता है। भारत ग्राम-प्रधान देश है, परन्तु दो-तिहाई ग्राम ऐसे हैं, जिनमें विद्यालय नहीं हैं, १९५१ की जन-गणना के अनुसार भारत में ५५८,०८८ ग्राम हैं। इनमें से ३,८०,०२० ग्राम ऐसे हैं जिनकी जनसंख्या ५०० से कम है।[2] शिक्षा को अनिवार्य बनाने के लिये लगभग ४ लाख ग्रामों में, जिनमें ५०० से कम जनसंख्या वाले भी ग्राम सम्मिलित हैं, प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना आवश्यक है। परन्तु इतने विद्यालयों के निर्माण के लिये धन एकत्रित करना सरल नहीं है। फिर ५०० से कम की जनसंख्या वाले ग्रामों में विद्यालय निर्मित करना अधिक बालकों की शिक्षा के लिये हितकर सिद्ध नहीं होगा। यह एक ऐसी समस्या है जिसने देश के प्रशासकों तथा शिक्षाविदों के समक्ष एक जटिल प्रश्न उपस्थित कर दिया है।

### ९. विद्यालय-भवन की समस्या

विद्यालय-भवनों की एक अन्य समस्या है। आज हमारे देश में केवल ३०

1. *Education in India*, 1952-53, Vol. I, p. 27.
२. भारत, १९६०, पृष्ठ १३

प्रतिशत विद्यालय-भवन ही ऐसे हैं, जिन्हें उपयुक्त कहा जा सकता है। शेष सभी विद्यालय किराये के मकानों, मन्दिरों, धनी व्यक्तियों के गृहों, अध्यापकों के निवास-स्थानों आदि में चल रहे हैं। इनमें जगह का अभाव है और छात्रों के बैठने तथा खेलने के लिये उचित व्यवस्था नहीं है। अनेकों विद्यालय कोलाहलपूर्ण अथवा अवांच्छनीय वातावरण में स्थित हैं तथा उनके भवनों में धूप एवं वायु का प्रवेश न हो सकने के कारण छात्रों के स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। ऐसी स्थिति में प्रश्न यह उपस्थित होता है कि यदि शिक्षा को अनिवार्य करके छात्रों की संख्या में वृद्धि कर दी जाय तो उन्हें शिक्षा कहाँ दी जाय। निःसंदेह, उत्तर होगा कि नवीन भवनों का निर्माण किया जाय। पर इसके लिये धन जुटाना जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं, अत्यन्त कठिन है।

## १०. अनुपयुक्त पाठ्यक्रम

प्राथमिक विद्यालय का पाठ्य-क्रम संकीर्ण तथा स्थानीय आवश्यकताओं के अनुकूल नहीं है। इसमें पुस्तकीय शिक्षा पर बल दिया जाता है और छात्र की अपनी रचनात्मक शक्ति का विकास करने तथा कार्य करके सीखने के सिद्धान्त की अवहेलना की जाती है। पाठ्य-क्रम के इन दोषों का निराकरण करने के लिये सरकार ने प्राथमिक शिक्षा को बेसिक शिक्षा का रूप प्रदान करने का निश्चय किया है। इससे पाठ्यक्रम के दोष तो अनिवार्य रूप से दूर हो जायेंगे, परन्तु बेसिक शिक्षा की व्ययपूर्ण योजना को सम्पूर्ण देश में एक साथ न तो क्रियान्वित किया जा सकता है और न किया जा सका है।

## ११. अपव्यय एवं अवरोधन

प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर अत्यधिक अपव्यय (Wastage) एवं अवरोधन (Stagnation) है। प्रत्येक १०० छात्रों में से जो १९५२-५३ में कक्षा १ में थे, केवल ४३ छात्र १९५५-५६ में कक्षा ४ में पहुँचे।[1] इस प्रकार ५७ प्रतिशत छात्र परीक्षाओं में असफल होने अथवा अपने अभिभावकों को कार्य करके तथा धनोपार्जन करके सहायता देने के लिये विद्यालयों से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर गये। दुर्भाग्य से विद्यालयों की उपकरण हीनता, अवांच्छनीय स्थिति तथा आकर्षण रहित भवन उनको सम्पूर्ण शिक्षा प्राप्त करने के लिये प्रत्योत्साहित न कर सके। इस बात की परम आवश्यकता है कि प्राथमिक शिक्षा में अपव्यय तथा अवरोधन को रोका जाय, अन्यथा अनिवार्य शिक्षा-योजना अथवा शिक्षा-प्रसार की अन्य किसी भी योजना का सफल होना असम्भव है।

---

1. *Education in India*, 1955-56, p. 64.

### १२. भौगोलिक कठिनाइयाँ

अनिवार्य शिक्षा के प्रसार में भौगोलिक कठिनाइयाँ अत्यन्त बाधक सिद्ध
हो रही हैं। हिमाचल-प्रदेश, काश्मीर, गढ़वाल और अल्मोड़ा आदि पर्वतीय
क्षेत्रों में जनसंख्या कम होने के कारण ग्राम दूर-दूर पर स्थित हैं। यही बात
राजस्थान के रेतीले प्रदेश के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। फिर मध्य-
प्रदेश, मध्य भारत तथा दक्षिण में ऐसे अनेक क्षेत्र हैं, जो जंगलों से ढके हुए
हैं और जहाँ की जनसंख्या छोटे एवं सुदूर ग्रामों में बिखरी हुई है। उपरोक्त
सभी प्रदेशों में आवागमन के साधनों का अभाव है और शीत, उष्णता अथवा
भारी वर्षा यात्रा के मार्गों में विभिन्न प्रकार की कठिनाइयाँ उपस्थित करते हैं।
क्योंकि भारत के प्रत्येक ग्राम में प्राथमिक विद्यालय नहीं है, अतः इन कठि-
नाइयों पर विजय प्राप्त करके दूसरे ग्राम-विद्यालयों में ऐसा ज्ञानार्जन करने के
लिये जाना, जिसका वास्तविक जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं है, छात्रों एवं उनके
अभिभावकों द्वारा बुद्धिमानी की बात नहीं समझी जाती है।

### १३. सामाजिक समस्यायें

धर्मान्धता, अन्धविश्वास, रूढ़िवादिता, अशिक्षा तथा प्राचीन परम्पराओं
में आस्था रखने के परिणामस्वरूप भारत का कोई भी ऐसा कोना नहीं
है, जहाँ के निवासी नाना प्रकार की सामाजिक समस्याओं में ग्रस्त
न हों। उदाहरणार्थ, बाल-विवाह, अस्पृश्यता, पर्दा-प्रथा, धार्मिक
सिद्धान्त आदि ऐसी अनेकों बातें हैं जिन्होंने अनिवार्य शिक्षा के मार्ग में
ऊँची दीवारें खड़ी कर दी हैं। बाल-विवाह-निषेध अधिनियम की चिन्ता
न करके आज भी प्राचीन विचारों के अनेकों व्यक्ति बालकों तथा बालि-
काओं का अल्प आयु में विवाह करके उन्हें शिक्षा से वंचित कर देते हैं।
विधान द्वारा सभी नागरिकों को समान अधिकार दिये जाने पर भी आज अनेकों
हरिजन छात्रों को किसी न किसी बहाने से विद्यालयों में प्रवेश करने से निषेध
कर दिया जाता है। आज भी अनेकों हिन्दुओं तथा मुसलमानों का दृढ़ विश्वास है
कि बालिकाओं को या तो शिक्षा दी ही नहीं जानी चाहिये या यदि दी भी जाय
तो अति न्यून। पर्दा-प्रथा के कारण आज भी ऐसे व्यक्तियों का अभाव नहीं है,
जो प्राथमिक विद्यालयों में भी सह-शिक्षा के विरोधी हैं। जब जनता का दृष्टि-
कोण ऐसा है, तब शिक्षा को अनिवार्य बनाना निःसंदेह एक गम्भीर समस्या है।

### १४. अभिभावकों की आर्थिक स्थिति एवं अशिक्षा

अभिभावकों की आर्थिक स्थिति एवं अशिक्षा भी शिक्षा के मार्ग में अव-
रोध प्रस्तुत कर रही हैं। उच्च वर्ग के थोड़े से व्यक्तियों के अतिरिक्त सभी लोग

आर्थिक संकट में ग्रस्त हैं। वस्तुओं के बढ़ते हुए मूल्यों ने उनकी कठिनाई को कई गुना अधिक बढ़ा दिया है। भारत में ऐसे करोड़ो व्यक्ति हैं जिन्हें पेट भरने के लिए भोजन तथा तन ढकने के लिये कपड़े भी नसीब नही हैं। इस दयनीय दशा में वे यह अधिक उत्तम समझते हैं कि उनके बालक तथा बालिकायें या तो कुछ धनोपार्जन करें या उनके कार्य में हाथ बँटा कर उन्हें अधिक धन का अर्जन करने के योग्य बनावें, जिससे वे अपना तथा उनका भरण-पोषण कर सकें। अतः वे अपने बच्चों को शिक्षा देने का स्वप्न में भी विचार नही कर सकते हैं। फिर भारत में अशिक्षा के दानव का भयंकर साम्राज्य है। यहाँ की केवल २४.०२ प्रतिशत जनसंख्या शिक्षित है।[१] अशिक्षा के ऐसे वातावरण में अभिभावकों को अपने बच्चो को शिक्षा देने के लिये कहना सर्वथा निरर्थक है। जो अभिभावक स्वयं ही शिक्षित नहीं हैं, वे अपने बच्चो को शिक्षा द्वारा लाभान्वित होने की कल्पना ही नहीं कर सकते हैं।

## १५. भाषा की समस्या

अनिवार्य शिक्षा की अन्तिम समस्या भाषा की है। १९५१ की जनगणना के अनुसार देश में ८४५ भाषायें अथवा बोलियाँ बोली जाती हैं।[२] देश के प्रशासकों के स मक्ष समस्या यह है कि इतनी विभिन्न भाषायें बोलने वाले बच्चों को शिक्षा किस भाषा के माध्यम द्वारा दी जाय। भारतीय संविधान में जिन १४ भाषाओं का उल्लेख किया गया है, वे ऐसी हैं जिनको शिक्षा का माध्यम बनाया जा सकता है, परन्तु ऐसी अनेक भाषायें हैं जिनको इस पद पर प्रतिष्ठित नहीं किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, ऐसी अनेकों अनुसूचित तथा आदिम जातियाँ हैं, जिनका न तो कोई साहित्य है और न कोई वर्णमाला। फिर उनकी संख्या भी ७.७८ करोड़ है।[३] इनके अतिरिक्त ४० लाख निरधिसूचित आदिम जातीय लोग और हैं।[४] इन पिछड़ी हुई जातियों में अभी तक अनिवार्य शिक्षा का प्रवेश बहुत ही कम हो पाया है।

उपरिलिखित समस्याओं एवं कठिनाइयों ने अनिवार्य शिक्षा के प्रसार-कार्य का निर्बाध उन्नयन नहीं होने दिया है। परन्तु इससे हतोत्साहित न होकर देश के कुशल शिक्षा-विशेषज्ञ राज्य के सहयोग से उनके अपरोहण में क्रियाशील हैं। हम इन समस्याओं के निराकरण तथा कठिनाइयों के उन्मूलन के सम्बन्ध में कुछ विचार गर्भित सुझाव निम्नांकित पंक्तियों में दे रहे हैं।

---

१. भारत, १९६०, पृष्ठ, ७३
२. वही, पृष्ठ १२
३. वही, पृष्ठ, ११६
४. वही

# अनिवार्यता-प्रसार सम्बन्धी सुझाव

हमने अनिवार्य शिक्षा की जिन समस्याओं एवं कठिनाइयों का विवरण ऊपर दिया है, उन पर विजय प्राप्त करने के लिये कुछ व्यावहारिक सुझावों को यथोलिखित पंक्तियों में प्रस्तुत किया जा रहा है :—

## १. अनिवार्य शिक्षा की निश्चित नीति

सर्वप्रथम आवश्यकता इस बात की है कि सरकार अपनी अनिवार्य शिक्षा सम्बन्धी नीति को पूर्ण रूप से निश्चित कर ले। सरकार घोषित कर चुकी है कि भारत की राष्ट्रीय शिक्षा बेसिक शिक्षा के प्रकार की होगी। परन्तु इसके साथ-साथ सरकार इस बात को भी स्वीकार कर चुकी है कि कुछ ही समय में सम्पूर्ण देश मे बेसिक शिक्षा की योजना को कार्यान्वित करना असम्भव है। इस प्रकार सरकार एक आदर्श को तो अपने समक्ष रखना चाहती है, परन्तु उसको प्राप्त करने मे स्वयं ही अपनी असमर्थता को स्वीकार करती है। ऐसी दशा के सर्वोत्तम नीति यही हो सकती है कि अनिवार्य शिक्षा की नीति को आदर्शवाद पर आधारित न करके यथार्थ परिस्थितियों के अनुकूल बनाया जाय। अनिवार्य शिक्षा और बेसिक शिक्षा का प्रसार पृथक् रूप से किया जा सकता है। प्राथमिक विद्यालयों में जो भी शिक्षा दी जा रही है, उसी को अनिवार्य बनाया जा सकता है, चाहे उसका रूप कुछ भी हो। उस शिक्षा को शनैः शनैः और सुविधानुसार बेसिक शिक्षा का रूप प्रदान किया जा सकता है। यदि सरकार ने इस सिद्धान्त पर अपनी अनिवार्य शिक्षा-सम्बन्धी नीति का निर्माण नहीं किया, तो यह निःसंकोच रूप से स्वीकार करना पड़ेगा कि निकट भविष्य में अनिवार्यता की आशा करना व्यर्थ है।

## २. शिक्षा-प्रशासन में सुधार

इस समय प्राथमिक शिक्षा का भार स्थानीय संस्थाओं के ऊपर है। परन्तु जैसा कि हम लिख चुके हैं, इन संस्थाओं की उदासीनता तथा असमर्थता के कारण अनिवार्य शिक्षा के प्रसार की गति अत्यन्त मन्द है। नागरिकों को शिक्षित करने का भार राष्ट्र के ऊपर होता है। अतः यह आवश्यक है कि अनिवार्य शिक्षा के पुनीत कार्य का भार सरकार स्वयं अपने ऊपर ले। यदि किन्हीं कारणों वश सरकार कुछ समय के लिये इस उत्तरदायित्व को नहीं सम्हाल सकती है, तो उसे एक ऐसी शक्तिशाली केन्द्रीय संस्था स्थापित कर देनी चाहिये जो एक निश्चित अवधि में जिला-परिषदों तथा नगर-पालिकाओं को अपने क्षेत्रों में अनिवार्य शिक्षा प्रारम्भ करने के लिये बाध्य करे। परन्तु इसके साथ-साथ

आवश्यकता इस बात की होगी कि इस शिक्षा से सम्बन्धित जो भी व्यय हो, उसको सरकार पूर्ण करे।

## ३. शिक्षकों की समस्या

शिक्षा को अनिवार्य बनाने के लिये शिक्षकों की वांछित संख्या उपलब्ध नहीं है, परन्तु इस समस्या का समाधान किया जा सकता है। प्रारम्भ में न्यूनतम वेतन पर आवश्यक योग्यताओं के शिक्षकों को चुना जा सकता है, चाहे वे अप्रशिक्षित ही क्यों न हों। उनमें से प्रति वर्ष एक निश्चित संख्या को विद्योपार्जन करके अपनी योग्यताओं को बढ़ाने के लिये प्रोत्साहित किया जा सकता है, अथवा उन्हें राज्य-व्यय पर प्रशिक्षण विद्यालयों में दीक्षा प्राप्त करने के लिये भेजा जा सकता है। अनिवार्य शिक्षा प्रारम्भ करने के लिये उस समय तक प्रतीक्षा करना जब तक कि उचित शिक्षकों की उचित संख्या उपलब्ध न हो जाय, विवेकपूर्ण कार्य नहीं कहा जा सकता है। सबसे अधिक आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षकों को अधिक वेतन, अधिक सुविधायें तथा अधिक सम्मान प्रदान करके अध्यापन-कार्य के प्रति आकर्षित किया जाय।

## ४. आर्थिक समस्या

धनाभाव के कारण अनिवार्य शिक्षा का प्रसार अबाध गति से नहीं हो रहा है। यदि सम्पूर्ण देश में अनिवार्य बेसिक शिक्षा की योजना को ६ से १४ वर्ष तक की आयु के समस्त बच्चों के लिये क्रियान्वित कर दिया जाय, तो प्रतिवर्ष २९९.५ करोड़ रुपये की आवश्यकता होगी।[1] शिक्षा पर इतना धन व्यय करना इस निर्धन देश की शक्ति से परे की बात है। प्रथम पंच-वर्षीय योजना में प्राथमिक शिक्षा पर ९३ करोड़ रुपया व्यय किया गया, परन्तु अन्य विकास कार्यों के लिये धन की आवश्यकता होने के कारण द्वितीय योजना में इस राशि को घटा कर ८९ करोड़ कर दिया गया।[2] धनाभाव की ऐसी दशा में हमारा ध्येय प्राथमिक शिक्षा की गुणात्मक वृद्धि पर नहीं होना चाहिये, अपितु हमें इस बात का प्रयास करना चाहिये कि कम धन व्यय करके अधिक से अधिक बच्चों को शिक्षित किया जा सके, जिससे वे अज्ञानता के मार्ग में न भटकें। इस सम्बन्ध में गोपाल कृष्ण गोखले के ये शब्द उल्लेखनीय हैं : "जन-शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य अशिक्षा का नाश करना है। शिक्षा की गुणात्मक वृद्धि महत्त्वपूर्ण अवश्य है, पर उस पर तभी बल दिया जाना चाहिये जब अज्ञानता

1. *Education in India*, 1953-54, Vol I, p. 116.
2. द्वितीय पंचवर्षीय योजना, पृष्ठ ४९८

का विनाश हो जाय।"[1] इस कथन के निर्विवाद सत्य को ध्यान में रखकर जो धन प्राथमिक विद्यालयों को बेसिक स्कूलों में परिणत करने में व्यय किया जा रहा है, उसे पूर्ण रूप से तो नहीं पर अधिकांश रूप से समाप्त कर देना वाञ्छनीय होगा। सर्व प्रथम अनिवार्य शिक्षा पर न कि बेसिक शिक्षा के रूप में अनिवार्य शिक्षा पर बल दिया जाना चाहिये। कुछ भारतीय शिक्षा-विदों का मत है कि प्राथमिक शिक्षा की अवधि को चार वर्ष करके भी व्यय को कम किया जा सकता है। आस्ट्रेलिया, जर्मनी, जापान, मिश्र, चीन और रूस ने प्राथमिक शिक्षा की अवधि को चार वर्ष रख कर ही जन-साधारण में शिक्षा का प्रसार किया।[2] देसाई का सुझाव है कि अनिवार्य शिक्षा के व्यय को कम करने के लिये धनी व्यक्तियों के बच्चों से शुल्क लिया जाय और व्यक्तिगत प्राथमिक विद्यालयों को बच्चों से शुल्क लेने की अनुमति दे दी जाय।[3] यदि इन सभी सुझावों को सरकार द्वारा मान्यता प्रदान कर दी जाय, तो अनिवार्य शिक्षा की आर्थिक समस्या का समाधान सम्भव हो सकता है।

## ५. विद्यालयों की समस्या

ग्रामीण क्षेत्रों में विद्यालयों की समस्या अति जटिल है। नये विद्यालयों के निर्माण के लिये धन का अभाव है। फिर अनेकों ग्राम दूर-दूर तथा छोटे हैं। यदि विद्यालयों के निर्माण के लिये धन प्राप्त हो सकता है, तो उन्हें ऐसे ग्रामों में पहिले निर्मित किया जाय, जहाँ उनकी आवश्यकता अधिक है। जो ग्राम छोटे हैं, उनके मध्य में विद्यालय निर्माण के लिये ऐसे ग्राम को चुना जाय, जो सभी ग्रामों के बच्चों के लिये सुविधाजनक हो। परन्तु यदि धन उपलब्ध नहीं है, तो अनिवार्य शिक्षा का कार्य इसलिये स्थगित नहीं कर देना चाहिये कि छात्रों के लिये विद्यालयों का निर्माण नहीं किया जा सकता है। बच्चों को जब शिक्षित ही किया जाना है तो मन्दिरों, मसजिदों, धर्मशालाओं, सरायों, जमींदारों की चौपालों अथवा अन्य किसी उपयुक्त स्थान पर शिक्षा प्रदान की जा सकती है। इंगलैण्ड में तो विद्यालयों के अभाव में बच्चों को रेल के पुलों के नीचे बैठाकर शिक्षा दी जाती थी।[4] फिर प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति अथवा

---

1. "Primary purpose of mass education is to banish illiteracy. The quality of education is a matter of importance that comes only after illiteracy has been abolished."
   Gokhale : *op. cit.*, p. 651.
2. Dinker Desai : *Primary Education in India*, pp. 31-32.
3. D. M. Desai : *op. cit.*, p. 337.
4. *Ibid.*, P. 84.

शान्तिनिकेतन की प्रणाली के अनुसार वृक्षों की छाया में बच्चे विद्यार्जन कर सकते हैं। आयरलैण्ड में तो कुछ समय पूर्व तक इसी पद्धति को अपनाया गया था।[1] भारत को भी विद्यालयों के निर्माण पर अपना ध्यान केन्द्रित न करके, देश के भावी नागरिकों को ज्ञान के पथ पर अग्रसर करने का ध्येय अपनाना चाहिये।

### ६. पाठ्यक्रम की समस्या

प्राथमिक विद्यालयों का पाठ्यक्रम एक-मार्गीय तथा अरुचिकर है। स्थानीय पर्यावरण से सम्बन्धित न होने के कारण उसमें किसी प्रकार की उपादेयता नहीं है। यह ठीक है कि सरकार बेसिक शिक्षा का पाठ्यक्रम कार्यान्वित करके शिक्षा को रोचक बनाने का प्रयास कर रही है, परन्तु इस कार्य में अति दीर्घ समय लगेगा। अतः उस समय तक के लिये स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार प्राथमिक विद्यालयों में किसी कला-कौशल की शिक्षा दी जाय। इससे बच्चों की शिक्षा में रुचि बढ़ेगी और वे अपने अर्जित ज्ञान से कुछ लाभ भी उठा सकेंगे। यह आवश्यक नहीं है कि हस्त-कौशल की शिक्षा देने के लिये कोई विद्वान तथा प्रशिक्षित अध्यापक ही रखा जाय। इस कार्य के लिये किसी भी स्थानीय तथा अनुभवी व्यक्ति की सेवाओं से लाभ उठाया जा सकता है।

### ७. पारि-विधि का प्रचलन

पारि-विधि ( Shift System ) के प्रचलन द्वारा अध्यापकों तथा विद्यालय भवनों के अभाव पर पर्याप्त मात्रा में विजय प्राप्त की जा सकती है। यद्यपि इस विधि को आदर्श रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है, तथापि अध्यापकों एवं विद्यालय-भवनों के अभाव की वर्तमान स्थिति में इसको अपनाना ही श्रेयस्कर होगा। पारि-विधि के अनुसार एक ही भवन में विभिन्न छात्रों को दो अधिवेशनों में शिक्षा प्राप्त करने के लिये बुलाया जा सकता है—प्रथम प्रातः ७'३० बजे से ११'३० बजे तक और द्वितीय १ बजे से ५ बजे तक। पारिविधि को विश्व के अनेकों देशों ने शिक्षा-प्रसार की प्रारम्भिक दशाओं में अपनाया है। इन देशों में जर्मनी, फ्रांस, पुर्तगाल, संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान आदि हैं। आज भी इस प्रथा का आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, टर्की, मिश्र, चीन, लंका, डेनमार्क आदि देशों में प्रचलन है।[2] भारत में इस प्रणाली का प्रचलन किया जाना चाहिये। यदि ऋतुओं, कृषकों तथा श्रमिकों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर विद्यालयों के अधिवेशनों का समय निश्चित कर

---

1. Dinker Desai : *op. cit.*, p. 88
2. S. N. Mukerji : *op. cit.*, p. 103.

दिया जाय, तो इस प्रणाली से भारत के बच्चों में ज्ञान का प्रसार अति सरलता पूर्वक किया जा सकता है। हाँ, इतना अवश्य है कि शिक्षकों को कुछ अधिक कार्य करना पड़ेगा। पर यदि उनको कुछ अधिक वेतन दे दिया जायगा, तो उनको अधिक कार्य करने में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं होगी।

## ८. कक्षाओं में छात्र-संख्या की वृद्धि

अनिवार्य शिक्षा के तीव्र विकास के लिये कतिपय भारतीय शिक्षा-मर्मज्ञों का मत है कि कक्षाओं में छात्रों की संख्या में वृद्धि कर दी जाय। इस समय प्रत्येक शिक्षक को औसत रूप में एक कक्षा में ३३ छात्रों को शिक्षा देनी पड़ती है।[1] अनेकों पाश्चात्य देशों में प्रति शिक्षक को शिक्षा देने के लिये ३३ से कहीं अधिक छात्र थे। उदाहरणार्थ, १९२२ तक इंगलैन्ड में प्रत्येक कक्षा में छात्रों की संख्या ६० तक थी और १९३२ तक इटली में भी यही संख्या थी। राष्ट्र संघ ने चीन के प्राथमिक विद्यालयों की कक्षाओं के लिये भी ६० छात्रों की सिफ़ारिश की थी। अतः जिन भारतीय प्राथमिक विद्यालयों में एक अध्यापक एक ही कक्षा के विद्यार्थियों को शिक्षा देता है, वहाँ छात्रों की संख्या में निश्चय रूप से वृद्धि की जा सकती है। हाँ, जिन विद्यालयों में एक अध्यापक एक से अधिक कक्षा को एक ही समय में शिक्षा देता है, वहाँ इस योजना को क्रियान्वित करना उचित नहीं होगा।

## ९. विशिष्ट विद्यालयों की स्थापना

उन क्षेत्रों में जहाँ आदिम, अनुसूचित तथा पिछड़ी हुई जातियाँ निवास करती है विशिष्ट स्कूलों की स्थापना आवश्यक है। स्वतंत्र भारत में इस ओर पर्याप्त ध्यान दिया जा रहा है। सरकार इन जातियों के छात्रों के लिये विशिष्ट स्कूल स्थापित कर रही है और उन्हें निःशुल्क पढ़ाई, छात्रवृत्तियों, पुस्तकों, लेखन-सामग्री आदि की सुविधायें दे रही है।[2] द्वितीय पंचवर्षीय योजना की अवधि में आदिम जातीय क्षेत्रों में ३,१८७ और अनुसूचित जातियों के लि[ये] ६,००० स्कूल और छात्रावास स्थापित करने का लक्ष्य रखा गया है। ल[क्ष्य] सराहनीय है, परन्तु जब हम इस बात पर विचार करते हैं कि अनुसूचित त[था] आदिम जातियों की संख्या क्रमशः ५.५३ करोड़ तथा २.२५ करोड़ है, हमें कुछ निराशा प्रतीत होने लगती है। शिक्षा द्वारा शताब्दियों से पद-द[लित]

---

1. *Education in India*, 1955-56, p. 71.
2. भारत, पृष्ठ १२०
3. वही, पृष्ठ १२२

इन जातियों की शिक्षा का भार केवल सरकार पर ही नहीं छोड़ देना चाहिये, अपितु जनता को भी इस पुनीत कार्य मे सहयोग प्रदान करना चाहिये ।

## १०. जनता का सहयोग

अनिवार्य शिक्षा के प्रसार के लिये देश-व्यापी प्रयास की आवश्यकता है। जब सरकार के साथ-साथ इस देश के निवासी प्रत्येक बाधा का उन्मूलन करके, प्रत्येक कठिनाई का व्ययरोपण करके और प्रत्येक समस्या का समाधान करके, भारत के कोने-कोने में सरस्वती देवी को वरासन पर प्रतिष्ठित करने के लिये कटिबद्ध हो जायेंगे, तभी ४० करोड़ से अधिक निवासियों के इस विस्तृत भूभाग में शिक्षा का प्रवाह अनवरत गति से प्रवाहित हो सकेगा। देश के विकास मे शिक्षा का विकास सन्निविष्ट है । पंचवर्षीय तथा सामुदायिक विकास योजनाओं से जितने शीघ्र भारत का विकास होगा, उतने ही शीघ्र शिक्षा अपने मार्ग पर अग्रसर होगी । यातायात एवं परिवहन के साधनों का विकास बालकों के मार्ग में आने वाली भौगोलिक कठिनाइयों का अन्त कर देगा । देश का औद्योगीकरण तथा कृषि-सुधार की योजनायें भारत के निवासियों के आर्थिक स्तर को उच्च कर देंगी और वे धनाभाव के कारण अपने बच्चों को शिक्षा से वंचित नहीं रखेंगे । फलस्वरूप शिक्षा में होने वाला अपव्यय समाप्त हो जायगा । सरकार द्वारा समाज-शिक्षा की जो योजनायें क्रियान्वित की जा रही हैं, उनसे जनता का दृष्टिकोण संकुचित न रह कर विस्तृत हो जायगा और वह शिक्षा के महत्त्व तथा मूल्य को समझ सकेगी। परन्तु सरकार द्वारा देश, समाज तथा जनता की उन्नति के हेतु जो भी योजनायें कार्यान्वित की जारही हैं, उनकी सफलता अथवा असफलता इस देश के निवासियों पर निर्भर है । कोई भी सरकार चाहे वह कितनी भी शक्तिशाली तथा धन एवं साधन सम्पन्न क्यों न हो, देश को प्रगति के पथ पर तब तक नहीं अग्रसर कर सकती है, जब तक उसकी जनता निस्स्वार्थ भाव से उसे पूर्ण सहयोग न प्रदान करे । अतः प्रत्येक भारतीय का यह एक परमावश्यक कर्तव्य हो जाता है कि वह सरकार के कार्यों में हाथ बटा कर देश के कल्याण की योजनाओं को सफल बनाये । इन योजनाओं की सफलता पर ही शिक्षा-विस्तार की सफलता आधारित है ।

ने प्राथमिक शिक्षा की अवहेलना की है। १६०५ में कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में राष्ट्रीय आन्दोलन प्रारम्भ करने का निश्चय किया गया। तभी से जनता का ध्यान प्राथमिक शिक्षा द्वारा जन-शिक्षा की ओर आकृष्ट हुआ।

अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा—१८३८ में ऐडम ने, १८५२ में विनगेट ने और १८५८ में टी० सी० होप ने अनिवार्य शिक्षा के प्रस्ताव रखे, परन्तु ब्रिटिश सरकार ने उनको स्वीकार नहीं किया। १६०६ में बड़ौदा नरेश ने अपने राज्य में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाया। १६११ में गोखले ने केन्द्रीय धारा सभा में अनिवार्य शिक्षा का विधेयक प्रस्तुत किया, परन्तु उनको सफलता न मिली। १६१८ में 'बम्बई प्राथमिक शिक्षा अधिनियम' पारित किया गया। १६३० तक प्रायः सभी प्रान्तों में अनिवार्य शिक्षा के अधिनियम बना दिये गये। १६३७ में ६ प्रान्तों में कांग्रेसी मंत्रिमंडलों का निर्माण हो जाने के कारण प्राथमिक अनिवार्य शिक्षा को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। स्वतंत्र भारत के संविधान के अनुसार सरकार ने अनिवार्यता के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया है। सरकार इस दिशा में प्रयत्नशील है।

अनिवार्य शिक्षा की समस्यायें—ये समस्यायें अग्रलिखित हैं :—(१) ब्रिटिश सरकार की उदासीनता, (२) भारतीय सरकार की दोषपूर्ण नीति, (३) राजनीतिक कठिनाइयाँ, (४) दोष-पूर्ण शिक्षा-प्रशासन, (५) शिक्षकों की समस्या, (६) शिक्षण का निम्न स्तर, (७) आर्थिक समस्या, (८) विद्यालय-स्थापना की समस्या, (६) विद्यालय-भवन की समस्या, (१०) अनुपयुक्त पाठ्य-क्रम, (११) अपव्यय तथा अवरोधन, (१२) भौगोलिक कठिनाइयाँ, (१३) सामाजिक समस्यायें, (१४) अभिभावकों की आर्थिक स्थिति एवं अशिक्षा, और (१५) भाषा की समस्या।

अनिवार्यता-प्रसार सम्बन्धी सुझाव—ये सुझाव अग्रलिखित हैं—(१) अनिवार्य शिक्षा की निश्चित नीति, (२) शिक्षा-प्रशासन में सुधार, (३) शिक्षकों की समस्या, (४) आर्थिक समस्या, (५) विद्यालयों की समस्या, (६) पाठ्य-क्रम की समस्या, (७) पारि-विधि का प्रचलन, (८) कक्षाओं में छात्र-संख्या की वृद्धि, (६) विशिष्ट विद्यालयों की स्थापना, और (१०) जनता का सहयोग।

## सहायक पुस्तकों की सूची

1. Sir Richard Livingstone : *Some Tasks for Education.*
2. A. N. Basu : *Education in Modern India.*
3. G. K. Gokhale : *Speeches.*

4. J. P. Naik : *History of Local Fund Cess in the Province of Bombay.*
5. D. M. Desai : *Universal Compulsory and Free Primarg Education in India.*
6. K. G. Saiyidain : *Compulsory Education in India.*
7. S. N. Mukerji : *Education in India Today and Tomorrow.*
8. Dinker Desai : *Primary Education in India.*
9. *Constitution adopted by the Free India on January, 26,* 1950.
10. *Government Resolution on Educational Policy.* 1904.
11. *The Gazetteer of the Baroda State.*
12. *Progress of Education in India,* 1937 47. *Vol. I.*
13. *Education in India,* 1955-56.
14. *Adam's Reports*
15. दूसरी पंचवर्षीय योजना (प्रारम्भिक रूपरेखा)
16. भारत (वार्षिक संदर्भ ग्रन्थ), १९६०

## TEST QUESTIONS

1. Give a brief history of compulsory education in India.
2. Discuss the special difficulties that have stood in the way of the adoption of compulsory primary education in India.
3. Outline the history of compulsory primary education in India laying greater emphasis on recent developments in the field.
4. What, in your opinion, are the major problems of compulsory primary education in India ? What suggestions can you offer to tackle them ?
5. Describe the system of compulsory primary education which has been adopted in your state.
6. Discuss the causes of slow progress in the spread of primary education in India. How could these be removed ?

अध्याय २

# अपव्यय एवं अवरोधन[1] ✓

हम गत अध्याय में प्राथमिक शिक्षा की समस्याओं का विवरण देते समय अपव्यय (Wastage) एवं अवरोधन (Stagnation) का उल्लेख कर चुके हैं। "प्राथमिक शिक्षा, जैसा कि स्वयं इसके नाम से विदित है, वह आधार है जिस पर शिक्षा की सम्पूर्ण संरचना का निर्माण किया जाता है।"[2] परन्तु भारत में अपव्यय एवं अवरोधन की समस्यायें इतनी असाध्य तथा अव्याप्य सिद्ध हो गई हैं कि वर्तमान और निकट भविष्य में इन समस्याओं को पूर्ण रूपेण अव्याख्यात्मक स्वीकार किया गया है। प्राथमिक शिक्षा के प्रसार में भारत सरकार सक्रिय पग उठा रही है, विद्यालयों की संख्या में दिन प्रतिदिन वृद्धि कर रही है, अध्यापकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था कर रही है और सामान्य पाठ्य-क्रम को बेसिक पाठ्य-क्रम में परिवर्तित करके शिक्षा को अधिक उपयोगी बना रही है, परन्तु फिर भी इन समस्याओं की स्थिर प्रकृति के कारण सरकार प्राथमिक शिक्षा के आधार को दृढ़ बनाने में अभिलषित सफलता प्राप्त करने में निराशा का आलिंगन कर रही है। इन समस्याओं का रूप क्या है और इनका समाधान किस प्रकार किया जा सकता है, यही प्रस्तुत पाठ की प्रमुख विषय-वस्तु है। अतः हम इनका इस स्थान पर अध्ययन करेंगे।

---

1. Wastage and Stagnation.
2. "Primary education, as its very name implies, constitutes the foundation on which the entire superstructure of education is built."—*Education in India*, 1955-56, p. 47.

## अपव्यय

प्राथमिक शिक्षा के इतिहास में अपव्यय एक प्राचीन समस्या है. यद्यपि यह समस्या जन-शिक्षा के प्रसार में अति दीर्घ काल से घेरा डाले हुए थी, तथापि भारतीय शिक्षा के विकास की ठेकेदारी का दावा करने वाली विदेशी सरकार इससे भिज्ञ होकर भी अनभिज्ञ बनी रही। १९२९ में हर्टाग समिति (Hartog Committee) ने शिक्षा के विभिन्न पक्षों की निष्पक्ष रूप से जाँच करके सरकार का ध्यान अपव्यय एवं अवरोधन की ओर आकर्षित किया। समिति ने अपनी रिपोर्ट में लिखा : "अपव्यय से होने वाली हानियाँ कुछ छात्रों के अतिरिक्त प्रायः सभी की साक्षरता के मार्ग में बाधक है।"[१] हम नीचे की पंक्तियों में अपव्यय के अर्थ तथा परिभाषा और उससे सम्बन्धित अन्य बातों का उल्लेख कर रहे हैं।

### अपव्यय का अर्थ एवं परिभाषा

'अपव्यय' शब्द का प्रयोग एक से अधिक अर्थों में किया जाता है। शिक्षा में 'अपव्यय' शब्द का सर्वमान्य अर्थ है उन छात्रों पर समय, धन और शक्ति का अपव्यय जो सफलता पूर्वक अपनी शिक्षा को पूर्ण नहीं करते हैं। जो बालक प्राथमिक विद्यालय में प्रवेश करता है, उससे यह आशा की जाती है कि वह पाँच वर्ष में अपनी प्राथमिक शिक्षा समाप्त कर लेगा और अन्त में कक्षा ५ में उत्तीर्ण हो जायगा।[२] इस प्रकार के छात्र के सम्बन्ध में समय, धन और शक्ति का किसी प्रकार का अपव्यय नहीं होता है। परन्तु व्यावहारिक रूप में हमें ऐसे अनेकों छात्र मिलते हैं जो अति उत्साह से प्राथमिक विद्यालयों में प्रवेश लेते हैं, किन्तु वे कुछ ही समय के उपरान्त और कभी-कभी तो ३ या ४ वर्ष के पश्चात् विद्यालय से अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर देते हैं। इस प्रकार के छात्र प्राथमिक शिक्षा के पाठ्य-क्रम को समाप्त नहीं करते हैं। अतः इन छात्रों पर समय, धन और शक्ति का अपव्यय होता है। इस प्रकार 'अपव्यय' से हमारा अभिप्राय है उन विद्यार्थियों पर व्यर्थ व्यय किया हुआ समय, धन और शक्ति जो किसी न किसी कारणवश प्राथमिक शिक्षा को पूर्ण करने से पूर्व ही अपना अध्ययन

---

1. "The losses due to wastage prevent all but few pupils from becoming literate."—*Report of the Hartog Committee*, p. 49.
२. भारत के अधिकांश राज्यों में प्राथमिक शिक्षा की अवधि ५ वर्ष की है, परन्तु बम्बई, मध्यप्रदेश, विन्ध्य प्रदेश आदि में ४ वर्ष और आसाम में ३ वर्ष है।
—*Education in India*, 1955-56, p. 54.

स्थगित कर देते हैं। 'अपव्यय' के अर्थ को हर्टाग समिति की रिपोर्ट में इन शब्दों में स्पष्ट किया गया है : "अपव्यय से हमारा अभिप्राय है प्राथमिक शिक्षा पूर्ण होने से पूर्व बच्चों को विद्यालय की किसी भी कक्षा से हटा लेना।"[1] इसे अपव्यय इसलिये कहा गया है क्योंकि जो शिक्षा इस प्रकार के छात्र प्राप्त करते हैं, वह उनको स्थायी रूप से साक्षर बनाने में असफल होती है। इसकी पुष्टि में हम हर्टाग समिति के इन शब्दों को उद्धृत कर सकते हैं : "जब तक प्राथमिक शिक्षा कम से कम साक्षरता न प्रदान कर दे, वह व्यर्थ है। सामान्यतः कोई भी बच्चा जिसने कम से कम चार वर्ष का प्राथमिक शिक्षा का पाठ्य-क्रम पूर्ण नहीं किया है, स्थायी रूप से साक्षरता नहीं प्राप्त कर सकता है।"[2]

## प्राथमिक शिक्षा में अपव्यय

यद्यपि प्रगति के इस युग में भारतवासी प्राथमिक शिक्षा के द्वारा देशव्यापी साक्षरता के महत्त्व को पूर्णतः हृदयंगम कर चुके हैं, तथापि अब भी प्राथमिक शिक्षा में अत्यधिक अपव्यय है। आज भी कितने ही अभिभावक ऐसे हैं जो कठिन परिस्थितियों के शिकंजे में फँसे होने के कारण अपने बच्चों को प्राथमिक शिक्षा का पाठ्य-क्रम पूर्ण करने से पूर्व ही विद्यालयों से पृथक् कर देते हैं। १९५२-५३ में कक्षा १ में शिक्षा ग्रहण करने वाले प्रत्येक १०० छात्रों में से १९५३-५४ में कक्षा २ में ६४, १९५४-५५ में कक्षा ३ में ५१ और १९५५-५६ में कक्षा ४ में ४३ छात्र थे।[3] इन आँकड़ों से सिद्ध हो जाता है कि हमारे देश की प्राथमिक शिक्षा में अति महान् अपव्यय है। इसके साथ ही ५७ प्रतिशत बच्चे जो पूर्ण प्राथमिक शिक्षा के लाभ से वंचित रह गये, वे जैसा कि उपरिकथित हर्टाग समिति का मत है, साक्षर न हो सके। इन विद्यार्थियों की शिक्षा पर व्यय किया गया समय, धन और शक्ति व्यर्थ ही गये। वास्तविकता यह है कि प्राथमिक शिक्षा पर व्यय किये जाने वाले धन का आधे

1. "By 'wastage' we mean the premature withdrawal of children from school at any stage before completion of the primary course."—*Report of the Hartog Committee* p. 47.
2. "Primary education is ineffective, unless it at least produces literacy. On the average, no child who has not completed a primary course of at least four years will become permanently literate."—*Ibid*, p. 48.
3. *Education in India*, 1955-56, p. 64.

से अधिक भाग इन छात्रों को शिक्षा की सुविधा प्रदान करने में व्यर्थ ही नष्ट हो गया। यह अपव्यय करोड़ों रुपये का था, जिसका अनुमान सहज ही इस बात से लगाया जा सकता है कि १९५५-५६ में प्राथमिक विद्यालयों के सम्पूर्ण छात्रों की संख्या २,४५,११,३३१ थी[1] और प्रत्येक छात्र पर औसत रूप से २३·४ रुपये व्यय किये गये।[2] इस महान् अपव्यय को रोककर ही सार्वजनिक शिक्षा द्वारा साक्षर भारत की कल्पना की जा सकती है।

## अपव्यय के कारण

अपव्यय के कतिपय प्रमुख कारण हैं, जिन पर हम नीचे प्रकाश डाल रहे हैं :

### १. दोष-पूर्ण शिक्षा-प्रशासन

प्राथमिक शिक्षा का दोष-पूर्ण प्रशासन अपव्यय के लिये बहुत-कुछ उत्तरदायी है। यदि प्रशासक इस बात पर बल देने लगें कि कोई भी छात्र प्राथमिक शिक्षा का पाठ्य-क्रम समाप्त करने से पूर्व विद्यालय से सम्बन्ध-विच्छेद नहीं कर सकता है, तो अपव्यय पर पर्याप्त अंकुश लगाया जा सकता है। परन्तु हमारे शिक्षा-प्रशासक अपने इस कर्त्तव्य के प्रति उदासीन हैं। बालकों पर विद्यालय से पृथक् न होने का प्रतिबन्ध लगाने के लिये उन्हें अभिभावकों के प्रबल विरोध का सामना करना पड़ेगा और सम्भवतः अपनी सेवा की वर्तमान दशाओं में शिक्षा-प्रशासक तथा निरीक्षक इस दिशा में क्रियाशील होने के लिये अपने को असमर्थ पाते हैं।

प्राथमिक शिक्षा-प्रशासन का एक अन्य प्रत्यक्ष दोष यह है कि छात्रों के विद्यालय प्रवेश की योग्यता, आयु तथा वर्ष में उपस्थिति के दिवसों के सम्बन्ध में निश्चित नियम नहीं है। फलस्वरूप अपर्याप्त योग्यता वाले विद्यार्थी उच्च कक्षा में प्रवेश ले लेते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि वे वार्षिक परीक्षा में असफल होने के उपरान्त या उससे पूर्व ही अपना अध्ययन स्थगित कर देते हैं। विद्यालय प्रवेश की आयु निर्धारित न होने के कारण कोई भी बालक किसी भी आयु में किसी भी कक्षा में प्रविष्ट हो जाता है। इस प्रकार प्रत्येक कक्षा के विद्यार्थियों में आयु की पर्याप्त असमानता दृष्टिगोचर होती है। छोटे तथा बड़े दोनों प्रकार के बच्चों पर इसका अति विपरीत प्रभाव पड़ता है। दोनों प्रकार के बच्चे कक्षा के वातावरण को अपने अनुकूल नहीं पाते हैं। परिणामस्वरूप उन

1. *Education in India*, 1955-56, p. 63.
2. *Ibid*, p. 79.

कतिपय छात्र शिक्षा की ओर से अपना मुँह मोड़ लेते हैं। वर्ष में उपस्थिति के दिवसों की निश्चित संख्या न होने के कारण बालक स्वेच्छा से विद्योपार्जन के लिये जाते हैं। प्रायः उन्हें अभिभावकों द्वारा किसी कार्य के हेतु घर पर रोक लिया जाता है। ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित विद्यालयों में छात्रों की अनियमित उपस्थिति विशेषतः अवलोकित की जाती है क्योंकि ग्रामीण कृषक कृषि-कार्य की अधिकता के समय अपने बच्चों को स्वयं ही विद्यालय जाने से रोक लेते हैं। इस यदा-कदा कक्षा-उपस्थिति से बालक न तो सफलता पूर्वक ज्ञान का अर्जन ही कर पाते हैं और न उनकी शिक्षा में रुचि ही उत्पन्न हो पाती है। फलतः उनका मन शिक्षा से ऊबने लगता है और उनकी शिक्षा का कार्य-क्रम आगे नहीं बढ़ पाता है।

प्राथमिक शिक्षा-प्रशासन का एक प्रमुख दोष यह है कि विद्यालयों की बढ़ती हुई संख्या के अनुपात में शिक्षा-निरीक्षकों की संख्या में वृद्धि नहीं की गई है। परिणामस्वरूप एक विद्यालय-निरीक्षक के अधीन इतने विद्यालय हैं कि वह उनका कुशल तथा उपयुक्त निरीक्षण नहीं कर पाता है। यदि कोई कर्त्तव्यनिष्ठ शिक्षा-निरीक्षक ऐसा करने का संकल्प भी करता है, तो यातायात, परिवहन तथा निर्दिष्ट स्थान पर रात्रि-विश्राम की उचित व्यवस्था के अभाव में उसे अपने संकल्प को तोड़ देना पड़ता है। ऐसी परिस्थितियों में न तो शिक्षा-निरीक्षक अपव्यय के कारणों का ही अध्ययन कर पाते हैं और न उनको दूर करने के उपाय ही सोच सकते हैं।

## २. दोषपूर्ण शिक्षा-व्यवस्था

प्राथमिक शिक्षा को पूर्णतया दोषमुक्त नहीं कहा जा सकता है। ऐसे प्राथमिक विद्यालयों की संख्या अति नगण्य है, जो बालक के मानसिक, शारीरिक तथा नैतिक विकास करने का दावा कर सकें। अधिकांश प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षण का स्तर निम्न है, प्रशिक्षित अध्यापकों का अभाव है, शिक्षा-उपकरण की अनुपस्थिति एक विशेषता है और स्वस्थ वातावरण में निर्मित विद्यालय भवन की कमी है। शिक्षा-व्यवस्था की ऐसी दशा में न तो छात्र ही विद्या-व्रत का संकल्प ले पाते हैं और न शिक्षक ही पूर्ण उत्साह से निपुण अध्यापन के कार्य का बीड़ा उठा पाते हैं। फलस्वरूप दोनों ही शिक्षा प्राप्त करने तथा शिक्षा प्रदान करने के कार्य के बोझ से लदे हुए ज्यों-त्यों करके अपने दिन काटते हैं। जब शिक्षा की ऐसी व्यवस्था है, तब उसमें सजीवता तथा आकर्षण की आशा करना व्यर्थ है और फलस्वरूप यह कल्पना करना भी जड़ता है कि विद्यालय में प्रवेश करने वाले छात्र अपने पाठ्य-क्रम को समाप्त करके ही विद्यालय से विदा लेंगे।

शिक्षा की इस अव्यवस्था के कारण जो अपव्यय हो रहा है, उसे भारत-सरकार ने स्वयं स्वीकार करते हुए लिखा है : "विद्यालयों के अपूर्ण शिक्षा-उपकरण, अवांछनीय भवन और नीरस तथा उत्साह-हीन वातावरण दुर्भाग्य से छात्रों को अध्ययन करते रहने के लिये प्रभावपूर्ण प्रेरणा न प्रदान कर सके।"[1]

## ३. दोष-पूर्ण पाठ्यक्रम

प्राथमिक शिक्षा में अपव्यय का एक अन्य कारण दोष पूर्ण पाठ्य क्रम है। पाठ्य क्रम एक-मार्गीय तथा कठोर है और उसमें विषयों का आधिक्य है। नगर तथा ग्राम के समस्त बालक-बालिकाओं को एक ही पाठ्य-क्रम का अध्ययन करना पड़ता है, चाहे उन्हें उसमें रुचि हो अथवा नहीं। साथ ही पाठ्य-क्रम में किसी हस्तकार्य को समाविष्ट करके उसे रोचक बनाने का प्रयास नहीं किया गया है। यद्यपि बेसिक पाठ्य-क्रम के अनुसार इस दिशा में सक्रिय पग उठाया जा रहा है, तथापि अब भी ऐसे अनेकों प्राथमिक विद्यालय हैं, जिनमें यह योजना क्रियान्वित नहीं की जा सकी है। पाठ्य-क्रम में विषय इतने अधिक हैं कि अल्प आयु के बालकों के लिये उन सब का अध्ययन करना सरल तथा सम्भव नहीं होता है। बम्बई राज्य में किये गये एक अन्वेषण से ज्ञात हुआ है कि छात्र गणित, कृषि तथा सामान्य विज्ञान में रुचि न लेने के कारण साधारणतः इन विषयों में निर्बल होते हैं।[2] इन सब बातों का परिणाम यह होता है कि छात्र परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो जाते हैं और उनमें से अनेकों विद्या-देवी की आराधना करना समाप्त कर देते हैं।

## ४. अभिभावकों की अशिक्षा

बम्बई राज्य में किये गये एक सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ है कि पिछड़ी हुई जातियों के बच्चों में अधिक अपव्यय है।[3] इसका प्रमुख कारण यह है कि इन बच्चों के अभिभावकों में शिक्षा का अभाव है। स्वयं शिक्षित न होने के कारण वे अपने बच्चों की शिक्षा का भी सांस्कृतिक एवं सामाजिक महत्व समझने में विफल रहते हैं। अतः शिक्षा को व्यर्थ समझकर वे यदि अपने बच्चों को शिक्षा उप-

---

1. "The schools being ill-equipped, poorly housed and with dull and depressing environment unfortunately could not exercise effective counter-acting influence."—*Education in India*, 1955-56, p. 64.
2. *Report on Wastage and Stagnation in Primary Schools*, Bombay.
3. *Ibid.*

लक्ष्य करने के लिये विद्यालयों में प्रविष्ट भी करा देते हैं, तो भी कुछ समय उपरान्त वे उन्हें वहाँ से हटाकर उनके तथा अपने दृष्टिकोण से हितकर किसी कार्य में लगा देते हैं। इस प्रकार प्राथमिक शिक्षा पूर्ण न करने से अपव्यय होना स्वाभाविक है। जो बात इन पिछड़ी हुई जातियों के अभिभावकों के सम्बन्ध में कही जा सकती है, वही भारत की अधिकांश जनता के विषय में भी सत्य है, क्योंकि आज भी हमारे देश के मस्तक पर निरक्षरता की कलंक कालिमा लगी हुई है। इसकी पुष्टि इस बात से हो जाती है कि *अभी तक* भारत में लगभग ८५ प्रतिशत व्यक्ति अशिक्षित हैं।[1]

५. आर्थिक कारण

आर्थिक कारण भी अपव्यय के लिये उत्तरदायी हैं। नग्न सत्य यह है कि प्राथमिक शिक्षा में होने वाले ६० प्रतिशत अपव्यय का कारण भारतीय जनता की प्रतिकूल आर्थिक परिस्थितियाँ ही हैं।[2] हमारे देशवासी निर्धनता के कारण ऐसी असहाय दशा में हैं कि यदि उनके बच्चों के लिये शिक्षा निःशुल्क भी कर दी जाय, तो वे उनके लिये कापी-किताबों तथा शिक्षा से अन्य सम्बन्धित व्यय के लिये धन जुटाने में अपने को असमर्थ पाते हैं। फिर उनके समक्ष निरन्तर *यह प्रश्न उपस्थित रहता है कि बालकों को विद्याध्ययन के लिये भेजा जाय* अथवा उन्हें आर्थिक विचार बिन्दु से लाभप्रद किसी कार्य में संलग्न कर दिया जाय। जैसा कि स्वाभाविक है वे द्वितीय विचार का ही निर्वाचन करते हैं क्योंकि इससे न केवल बच्चों की अपितु परिवार के सदस्यों की क्षुधा शान्त करने में योग प्राप्त होता है। बालक भी इस बात को समझते हैं और उपयुक्त कार्य मिलने पर शिक्षा को तिलांजली दे देते हैं। जहाँ तक बालिकाओं की शिक्षा का प्रश्न है, उनको अधिक से अधिक अ, ब, स का ज्ञान कराने के उपरान्त विद्यालयों से पृथक् कर लिया जाता है। ऐसा किये जाने के समय अभिभावक उचित विचार नहीं करते हैं कि बालिकाओं को शिक्षित करने से परिवार का कोई आर्थिक हित नहीं होगा। इसके लिये अभिभावकों पर दोषारोपण करना व्यर्थ है, क्योंकि जिस सामाजिक वातावरण में वे पले और बड़े हुए हैं, उसमें उन्होंने ऐसा ही देखा और सुना है।

---

1. भारत, १९६०, पृ० ७७
2. K. G. Saiyidain : *Compulsory Education in India*, p. 56.

६. सामाजिक कारण

रूढ़िवादिता पर आधारित भारतीय समाज अपव्यय में अतिशय योग दे रहा है। आज के आधुनिक युग में भी इस देश के प्रत्येक कोने में अनेकों हास्यप्रद सामाजिक कुरीतियों का बोल-बाला है। अल्प-आयु के बालकों तथा बालिकाओं की सह-शिक्षा को सशंकित दृष्टि से देखा जाता है। फलस्वरूप यदि एक स्थान पर बालिकाओं की शिक्षा के लिये पृथक् व्यवस्था नहीं है, तो उनको शिक्षा से वंचित रखा जाता है और यदि सौभाग्य से वे किसी विद्यालय में प्रवेश पा चुकी हैं, तो थोड़ी सी आयु अधिक हो जाने पर ही उन्हें सरस्वती की आराधना समाप्त करने के लिए बाध्य कर दिया जाता है। फिर बाल-विवाह की एक ऐसी दूषित प्रथा है जो अनेकों बालिकाओं को ही नहीं, अपितु कुछ बालकों को भी प्राथमिक शिक्षा का पाठ्यक्रम पूर्ण करने से पूर्व ही उसकी ओर से मुख मोड़ लेने के लिये अधिकार पूर्ण आदेश देती है। इन कारणों के फलस्वरूप जो अपव्यय होता है वह उच्चवर्ग के हिन्दुओं में तो कम है, पर मध्य तथा निम्न श्रेणी के हिन्दुओं और साधारण मुसलमानों में अति शोचनीय है।[1]

## अपव्यय-निवारण के उपाय

• प्राथमिक शिक्षा में होने वाले अपव्यय का निवारण किस प्रकार किया जा सकता है, इस पर हम अधोलिखित पंक्तियों में प्रकाश डाल रहे हैं:

१. शिक्षा-प्रशासन में सुधार

प्राथमिक शिक्षा के दोष-पूर्ण प्रशासन के कारण जो अपव्यय हो रहा है, उसका एकमात्र उपाय यही है कि प्रशासन की निर्बलताओं तथा त्रुटियों का उन्मूलन किया जाय। यह तभी सम्भव हो सकता है जब सरकार और स्थानीय संस्थायें इस ओर अपना ध्यान दें और शिक्षा-प्रशासन की एक निश्चित नीति का निर्धारण करें। इसके अन्तर्गत छात्रों के विद्यालय-प्रवेश की योग्यता, आयु तथा वर्ष में उपस्थिति के दिवसों पर विशेष रूप से ध्यान केन्द्रित किया जाय। जब तक उचित योग्यता के छात्र कक्षाओं में प्रविष्ट नहीं होंगे, प्रत्येक कक्षा में प्रवेश आयु निश्चित नहीं की जायगी और उपस्थिति के दिवस स्पष्ट रूप से निर्धारित नहीं किये जायेंगे, तब तक इन कारणों के फलस्वरूप होने वाले अपव्यय को रोकना सम्भव नहीं होगा। आवश्यकता इस बात की भी है कि

1. *Report on Wastage and Stagnation in Primary Schools*, Bombay.

शिक्षा-निरीक्षकों की संख्या में उचित वृद्धि की जाय, उनको निरीक्षण की सुविधायें प्रदान की जायें और उनके निरीक्षण को कठोर, कुशल तथा फलोत्पादक बनाया जाय।

## २. शिक्षा-व्यवस्था में सुधार

अपव्यय का निराकरण करने के हेतु शिक्षा-व्यवस्था में त्वरित सुधार किया जाना अनिवार्य है। प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षा-स्तर को ऊँचा उठाया जाय, अध्यापकों को प्रशिक्षित किया जाय, शिक्षा-उपकरणों में वृद्धि की जाय, स्वस्थ पर्यावरण में विद्यालय-भवनों का निर्माण किया जाय, विद्यालयों के वातावरण को आकर्षक बनाया जाय और छात्रों के मनोरंजन तथा खेल-कूद की उचित व्यवस्था की जाय। जब तक विद्यालयों को इस प्रकार से संगठित नहीं जायगा, तब तक वे शिक्षा के वास्तविक केन्द्र न बन सकेंगे और परिणामतः वे शिक्षा-प्रसार का कार्य सफलता पूर्वक न कर सकेंगे।

प्राथमिक शिक्षा व्यवस्था का एक प्रमुख दोष यह है कि भारत में ऐसे अनेक प्राथमिक विद्यालय हैं जिनमे समस्त कक्षाओं के छात्रों को शिक्षा देने के लिये केवल एक अध्यापक है। १९५५-५६ में इस प्रकार के विद्यालयों की संख्या १,११,२२० और उनमें शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्रों की संख्या ३६,१६,७१२ थी।[1] इस सम्बन्ध में मत विभिन्नता नहीं हो सकती है कि एक अध्यापक विद्यालय के समस्त विद्यार्थियों का कुशलता पूर्वक अध्यापन नहीं कर सकता है। फिर सामाजिक प्राणी होने के नाते उसे कभी न कभी किसी कार्य वश विद्यालय से अवकाश लेना आवश्यक हो जाता है अथवा अन्य मनुष्यों के सदृश वह किसी रोग से पीड़ित हो सकता है। तनिक अपने मानस-पटल पर उस दिवस या उन दिवसों का चित्र अंकित कीजिये, जब छात्र तो विद्यालय में उपस्थित हैं परन्तु अध्यापक अदृश्य है। वर्ष में ऐसे अनेक अवसर हो सकते हैं। ऐसी परिस्थिति में छात्र एवं अभिभावक दोनों विद्यालय-आगमन निष्प्रयोजन समझने लगते हैं। फलस्वरूप अपव्यय से बचने का कोई उपाय नहीं रह जाता है। स्वयं सरकार ने स्वीकार किया है: "एक अध्यापक वाले प्राथमिक विद्यालयों ने इस अपव्यय में अभूतपूर्व योग दिया है।"[2] यह जानते हुए भी आश्चर्य इस बात का है कि सरकार द्वारा प्रतिवर्ष इस प्रकार के विद्यालयों की संख्या में वृद्धि की जा रही है। १९५५-५६ में एक अध्यापक वाले प्राथमिक

1. *Education in India*, 1955-56, p. 66.
2. "Single-teacher primary schools contributed a good deal to this wastage." *Education in India*, 1955-56, p. 64.

विद्यालयों की संख्या सम्पूर्ण प्राथमिक विद्यालयों की संख्या की १६'६ प्रतिशत थी, जब कि यह संख्या १६५४-५५ में १८'४ थी।[1] यदि यह तर्क उपस्थित किया जाय कि सरकार शिक्षकों के प्रभाव के कारण इस प्रकार के विद्यालयों की स्थापना कर रही है, तो इसके विरुद्ध में यह बलपूर्वक कहा जा सकता है कि जिस धन का अपव्यय इन विद्यालयों के कारण हो रहा है, उस धन के कुछ भाग को अधिक वेतन देकर व्यक्तियों को अध्यापन कार्य के प्रति आकर्षित किया जा सकता है और शेष धन से उनको प्रशिक्षित किया जा सकता है।

## ३. पाठ्य-क्रम में सुधार

अपव्यय का उन्मूलन करने के लिये पाठ्य-क्रम में सुधार किया जाना आवश्यक है। किसी भी पाठ्य क्रम को एक अनिश्चित काल के लिये निश्चित नहीं माना जा सकता है। इसमें अनुभव तथा परीक्षण के आधार पर परिवर्तित होती हुई परिस्थितियों एवं आवश्यकताओं के अनुसार परिवर्तन किया जाना आवश्यक है। अतः प्राथमिक विद्यालयों के पाठ्यक्रम में स्थानीय वातावरण तथा आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर परिवर्तन किया जाय, नगर तथा ग्राम के छात्रों के लिये पृथक् पाठ्य-क्रम तैयार किये जायें और बालकों एवं बालिकाओं की आवश्यकताओं तथा रुचियों पर ध्यान केन्द्रित करके विषयों का निर्धारण किया जाय। सर्वोपरि प्रयास इस बात का किया जाना चाहिये कि पाठ्य क्रम रोचक, सरल एवं व्यावहारिक हो और उसमें स्थानीय आवश्यकताओं को पूर्ण करने वाला कला-कौशल का कोई ऐसा हस्तकार्य अवश्य हो जो बालक की निर्माणकारी एवं लाभप्रद कार्य करने की आन्तरिक मनोभावना को संतुष्ट कर सके।

## ४. अभिभावकों की शिक्षा

अभिभावक अपने बच्चों की शिक्षा के महत्त्व को तभी हृदयंगम कर सकेंगे और तभी वे उनको कम से कम प्राथमिक शिक्षा के पाठ्य-क्रम को पूर्ण करने की अनुमति प्रदान करेंगे, जब वे स्वयं शिक्षित होंगे। अशिक्षित अभिभावकों को शिक्षित करने के लिये रात्रि-पाठशालाओं, वयस्क विद्यालयों और अंशकालिक शिक्षालयों (Part-time schools) की स्थापना की जानी चाहिये। हर्ष का विषय है कि हमारी सरकार इस दिशा में प्रयत्नशील है। १६५५-५६ में ४,६१,२३४ पुरुषों और ५३,६८७ स्त्रियों को साक्षर बनाया गया और

1. *Education in India*, (1955-56), p. 64.

उनकी शिक्षा पर ६६,८६,५६२ रुपया व्यय किया गया।[1] द्वितीय पंचवर्षीय योजना में इस कार्य को अधिक प्रोत्साहन देने के लिये १५ करोड़ रुपया व्यय किया जा रहा है।[2]

## ५. आर्थिक कठिनाइयों का निवारण

अभिभावकों की आर्थिक कठिनाइयों का निवारण अति आवश्यक है क्योंकि इनके कारण प्राथमिक शिक्षा में अत्यधिक अपव्यय हो रहा है। भारत-सरकार इस दिशा मे प्राण-प्रण से चेष्टा कर रही है। देश का औद्योगीकरण किया जा रहा है और अन्न तथा कृषि सम्बन्धी अन्य पदार्थों के उत्पादन में वृद्धि की जा रही है। आशा है कि देश के आर्थिक विकास का जो अनवरत प्रयास किया जा रहा है उसके परिणामस्वरूप द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्त तक प्रति व्यक्ति की आय मे लगभग १८ प्रतिशत की वृद्धि होगी, और १९५५-५६ की २८१ रुपये की आय से बढ़ कर १९६०-६१ में ३३१ रुपये की हो जायगी।[3] निस्सन्देह आय की इस वृद्धि से जनता की आर्थिक कठिनाइयों का बहुत कुछ निवारण हो सकता है, परन्तु विचारणीय बात यह है कि क्या यह वृद्धि जीवन की आवश्यक वस्तुओं के द्रुत गति से बढ़ते हुए मूल्यों के अनुपात में पर्याप्त होगी ? अनेकों वस्तुओं के मूल्यो मे १८ प्रतिशत से कहीं अधिक वृद्धि हो चुकी है। गत कुछ वर्षों का अनुभव बताता है कि मध्य तथा निम्न वर्ग के व्यक्तियों की आर्थिक स्थिति पूर्व की अपेक्षा अधिक शोचनीय हो गई है। क्या इस परिस्थिति के फलस्वरूप सामान्य जनता की आर्थिक कठिनाइयो से मुक्ति की आशा की जा सकती है ? यदि नही, तो प्राथमिक शिक्षा मे इस कारण जो ६० प्रतिशत व्यय हो रहा है उसके समाप्त होने की आशा करना केवल काल्पनिक तथा निराधार है। आर्थिक संकटों के दुर्भेद्य घेरे को केवल सरकार की सशक्त भुजायें ही भेद सकती हैं और इस दिशा में प्रथम पग होगा निरन्तर बढ़ते हुए मूल्यों पर अंकुश लगाना। यदि सरकार यह नहीं करती है तो राष्ट्रीय उन्नति तथा अर्थ-विकास की योजनाओं के बावजूद भी जनसाधारण की आर्थिक समस्या का हल न हो सकेगा और शिक्षा में होने वाला अपव्यय अपने यथावत रूप में विराजमान रहेगा।

## ६. सामाजिक समस्याओं का समाधान

जिस प्रकार आर्थिक कठिनाइयों ने अपव्यय के उन्मूलन में गतिरोध

---

1. *Education in India*, 1955-56, p. 286.
2. द्वितीय पंचवर्षीय योजना, पृष्ठ ४८२
3. वही, पृष्ठ ७०

प्रभावित कर रखा है, उसी प्रकार हमारे समाज की दुर्बलता देश की दुर्बलता बन कर शिक्षा-प्रसार के मार्ग को अवरुद्ध किये हुए है। "देश की सामाजिक-आर्थिक संरचना जिसमें बालक मजदूरी करते हैं अपव्यय में योग प्रदान करने वाला एक कारक है।"[1] इस संरचना में केवल बालक को मजदूरी करने से रोक कर परिवर्तन नहीं किया जा सकता है, क्योंकि रूढ़िवादिता पर आधारित हमारे समाज में सह-शिक्षा की विरोधी भावना, बाल-विवाह तथा मानसिक संकीर्णता की जड़ें इतनी गहरी पैठ चुकी हैं कि उनको समूल नष्ट करके शिक्षा में होने वाले अपव्यय को रोकना निकट भविष्य में सम्भव नहीं जान पड़ता है। समाज में व्याप्त शिक्षा विरोधी इन समस्याओं के निराकरण के लिये दो ही मार्ग हो सकते हैं। या तो समाज में क्रान्ति करके उसे पूर्ण रूपेण ही बदल दिया जाय या समाज के इन दोषों का शनैः शनैः धैर्यपूर्वक उन्मूलन किया जाय। द्वितीय मार्ग ही अधिक व्यावहारिक प्रतीत होता है पर इसका दायित्व देश के युवक-युवतियों पर है। यदि वे कमर कस कर इन समस्याओं से लोहा लें, तो वे जनता में नवीन चेतना और देश में नवीन युग का सूत्रपात कर सकते हैं। उनके इसी कार्य पर उपर्युक्त सामाजिक दुर्गुणों के फलस्वरूप होने वाले अपव्यय की इतिश्री हो सकती है।

हमें आशा है कि उपरोक्त सुझावों का कार्यान्वित करने से अपव्यय की समस्या स्वतः ही समाप्त हो जायगी।

## अवरोधन

प्राथमिक शिक्षा के कलेवर को जर्जरित करने वाली अवरोधन नामक संक्रामक व्याधि के प्रति भारतीय सरकार का ध्यान आकर्षित करने का श्रेय हर्टॉग-समिति को प्राप्त है। प्राथमिक शिक्षा की तत्कालीन परिस्थिति का सूक्ष्म पर्यवेक्षण करने के उपरान्त समिति इस निष्कर्ष पर पहुँची कि प्राथमिक विद्यालयों में कक्षा १ के पश्चात् प्रत्येक कक्षा में विद्यार्थियों की संख्या में न्यूनता होती चली जाती है और कक्षा ५ में पहुँचते-पहुँचते छात्र-संख्या सब से अधिक कम हो जाती है। इस सम्बन्ध में अपने विचारों को व्यक्त करते हुए समिति ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है : "छात्र संख्या में यह ह्रास मुख्यतः दो कारणों के फलस्वरूप होता है, जिन्हें हम 'अपव्यय' तथा 'अवरोधन की संज्ञा देंगे। उपलब्ध आँकड़ों से यह स्पष्ट नहीं होता है कि एक कक्षा से दूसरी में छात्र-संख्या में

---

1. "The socio-economic structure in the country in which child labour had a place was another contributory factor." *Education in India*, 1955-56, p. 64.

होने वाला यह अतिशय ह्रास कितना 'अपव्यय' के कारण होता है और कितना 'अवरोधन' के कारण, पर हमारे अन्वेषणों से व्यक्त होता है कि 'अपव्यय' की अपेक्षा 'अवरोधन' कम शक्तिशाली कारण है।"[1] इस स्थान पर 'अवरोधन' के अर्थ एवं परिभाषा और प्राथमिक शिक्षा में अवरोधन पर सूक्ष्म दृष्टिपात कर लेना युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

## अवरोधन का अर्थ एवं परिभाषा

अवरोधन का अर्थ स्पष्ट करते हुए हर्टाग समिति ने लिखा है : "अवरोधन से हमारा अभिप्राय है एक बच्चे का एक निम्न कक्षा में एक वर्ष से अधिक रोका जाना।"[2] इस रोके जाने का प्रमुख कारण परीक्षा में अनुत्तीर्ण होना है। यदि एक बालक एक या अधिक कक्षाओं में एक या एक से अधिक बार परीक्षा में असफल होता है, तो वह पाँच वर्ष में प्राथमिक शिक्षा का पाठ्य-क्रम समाप्त नहीं कर सकता है। इस प्रकार जो छात्र चार अथवा पाँच वर्ष की निश्चित अवधि में प्राथमिक शिक्षा पूर्ण नहीं कर पाते हैं, उन पर भी किसी अंश तक समय, धन और शक्ति का अपव्यय होता है। अतः यह कहा जा सकता है कि 'अवरोधन' में आंशिक अपव्यय सदैव निहित रहता है।

## प्राथमिक शिक्षा में अवरोधन

हमारे देश की प्राथमिक शिक्षा में 'अवरोधन' की समस्या का उतना ही विकराल रूप है, जितना कि 'अपव्यय' की समस्या का। हम अपने इस कथन की पुष्टि १६२७-२८ से १६४४-४५ तक के परीक्षा फलों के आँकड़े देकर कर रहे हैं :—

---

1. "The diminution is mainly due to two causes, which we shall term, 'wastage' and 'stagnation'. The figures taken by themselves do not indicate how far the excessive diminution in numbers from class to class is due to 'wastage' and how far is due to 'stagnation', but our enquiries show that by far the more important factor is 'wastage'. *Report of the Hartog Committee*, p. 47.

2. "By stagnation we mean the retention in a lower class of a child for a period of more than one year." *Ibid.*

## अवरोधन के कारण

जिन कारणों के फलस्वरूप प्राथमिक शिक्षा में अवरोधन की समस्या स्थित हो रही है, उन्हें हम नीचे उद्धृत कर रहे हैं :—

### १. बाल-विवाह

भारतीय समाज में आज भी बाल-विवाह का पर्याप्त प्रचल परिणामतः जिन बालकों का दस-बारह वर्ष की आयु में विवाह हो जात अपने पाठों की अपेक्षा अपनी नवीन जीवन-संगिनी की ओर अधिक अ होने लगते हैं। वे अपने परिवार में अपने से बड़े विवाहित व्यक्तियों का स्परिक व्यवहार तथा सम्बन्ध देखते हैं और मानव-स्वभाव के अनुसार अनुकरण करने लगते हैं। फलतः शिक्षा में उनकी रुचि दिन प्रतिदिन न्यू जाती है और वे एक वर्ष में एक कक्षा उत्तीर्ण नहीं कर पाते हैं।

### २. दूषित वातावरण

साधारणतः छात्रों को विद्यालयों और उनसे बाहर दूषित वाता अपना समय व्यतीत करना पड़ता है। किसी भी कक्षा में ऐसे बाल अभाव नहीं होता है, जिनकी आदतें, व्यवहार, बात-चीत का ढङ्ग औ रुचियाँ निन्दनीय न हों। इस प्रकार के विद्यार्थी प्रति वर्ष कक्षा में होने का कभी विचार ही नहीं करते हैं और अन्य छात्र भी उनके स आकर विद्याध्ययन से जी चुराने लगते हैं। फलस्वरूप वे भी एक कक्ष वर्ष से अधिक लगाने लगते हैं।

विद्यालयों से बाहर का वातावरण—विशेष रूप से नगरों में—प्रति होगया है। ध्वनिप्रसारक यन्त्रों पर सुनाये जाने वाले अश्लील गीत, चल उत्तेजक विज्ञापन, चित्ताकर्षक जलूस, खेल-तमाशे तथा सिनेमाघर, छात्रों के अध्ययन में बाधक सिद्ध हो रहे हैं। इतना ही नहीं, इस विदा वरण के फलस्वरूप बालापराधों की संख्या में भी वृद्धि होरही है स्थिति में शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्रों में अवरोधन की समस्या का में और अधिक विकराल रूप धारण कर लेना कोई आश्चर्य न होगी।

कुछ विद्यार्थी इस प्रकार के भी होते हैं जिनमें विद्या-देवी के

नहीं हो पाता है। यदि वे किसी निर्धन ग्रामीण परिवार के सदस्य हैं, पारिवारिक व्यय की पूर्ति करने में योग प्रदान करने के लिये प्रातः संकाल कोई कार्य करना पड़ता है। इन परिस्थितियों में उनको अपने ार करने का अवसर नहीं मिल पाता है, और उन्हें एक कक्षा में एक अधिक व्यतीत करना पड़ता है।

## त्रों की शारीरिक दुर्बलता

तथ्य अकाट्य है कि गत कुछ वर्षों से छात्रों की शारीरिक दुर्बलता है। विशुद्ध खाद्य-पदार्थों के विलोप, पौष्टिक भोजन के अभाव और प्रकोप ने भारतीयों और उनके बच्चों की जान निचोड़ ली है। "भारत सियों की निरन्तर अस्वस्थता के कारण देश की शक्ति क्षीण हो रही तक बच्चों का सम्बन्ध है उनमें से एक चौथाई एक वर्ष की आयु ने से पूर्व और प्रति दस बच्चों में से चार बच्चे पाँच वर्ष के होने से के ग्रास में पहुँच जाते हैं। जन्म लेने वाले बच्चों में से आधे कभी वर्ष की आयु को नहीं प्राप्त कर पाते हैं।"[1] ऐसी दशा में हमारे शारीरिक दुर्बलता का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। अस्वस्थ रहने के कारण वे अनवरत रूप से अध्ययन नहीं कर पाते लस्वरूप प्रायः एक वर्ष का पाठ्यक्रम दो या अधिक वर्षों में समाप्त

## य-विषयों की अधिकता एवं अरोचकता

मिक विद्यालयों के छात्रों को पाँच और बेसिक विद्यालयों के छात्रों भी अधिक विषयों का अध्ययन करना पड़ता है। इनमें से कुछ हैं, जिनमें विद्यार्थी सामान्यतः रुचि नहीं लेते हैं, उदाहरणार्थ— पि, विज्ञान, भूगोल तथा इतिहास। पाठ्य-विषयों की अधिकता कता का परिणाम यह होता है कि अधिकांश विद्यार्थी कुछ विषयों रह जाने के कारण ऊँची कक्षा में नहीं पहुँच पाते हैं।

---

lia's strength is sapped by the consant ill-health of people........ One quarter of all babies die before are one year old, and four out of every ten die before are five. Half the babies born never reach the age n."—James Hemming : *Mankind against the Killers.* i.

## ५. प्रभावहीन शिक्षण-पद्धति

अधिकांश प्राथमिक विद्यालयों मे शिक्षण-पद्धति प्राचीन तथा अमनोवैज्ञानिक होने के कारण छात्रों पर इच्छित प्रभाव नहीं डाल पाती है। शिक्षण-पद्धति की त्रुटि के लिये अयोग्य एवं अप्रशिक्षित अध्यापक, उचित शिक्षण-सामग्री का अभाव, स्थान की कमी, कक्षाओं मे छात्रों की अधिकता, जिसके फलस्वरूप पिछड़े हुए छात्रों की ओर विशेष ध्यान दिये जाने की असम्भावना और विशेष शिक्षा योग्य छात्रों की शिक्षा के प्रबन्ध की अविद्यमानता उत्तरदायी हैं। शिक्षण-पद्धति में समाविष्ट इन त्रुटियों के कारण उसका प्रभावहीन होना अनिवार्य है और फलस्वरूप छात्रों का उचित शिक्षा-स्तर तक पहुँचना कठिन हो जाता है। ऐसी परिस्थिति में कुछ छात्रों का अपनी कक्षा मे स्थिर हो जाना स्वाभाविक है।

अनेकों प्राथमिक विद्यालयों में एक ही शिक्षक है और सभी विद्यार्थियों को सभी विषयों की शिक्षा उसी के द्वारा दी जाती है। ऐसी दशा में शिक्षण उचित प्रकार से नहीं हो पाता है और शिक्षा का स्तर भी निम्न हो जाता है। यह कारण भी अवरोधन में योग प्रदान करता है।

## ६. विद्यालय-प्रवेश की अनियमितता

बालकों के विद्यालय प्रवेश के सम्बन्ध में कोई निश्चित नियम नहीं है। वे किसी भी आयु में किसी भी कक्षा में वर्ष में किसी भी समय विद्यालय में प्रवेश पा सकते हैं। ऐसी दशा मे वे बालक जो एक कक्षा में देर मे प्रविष्ट होते हैं अपना पाठ्य-क्रम पूर्ण नहीं कर पाते हैं और फलतः वार्षिक परीक्षा मे असफल हो जाते हैं। इसी प्रकार वे छात्र जो अल्प आयु में उच्च कक्षा मे प्रवेश ले लेते हैं, निर्धारित विषयों को समझने मे असमर्थ रहते हैं और उन्हें आगामी वर्ष भी उसी कक्षा में व्यतीत करना पड़ता है।

## ७. दोष-पूर्ण परीक्षा-प्रणाली

अवरोधन का एक प्रमुख कारण दोष-पूर्ण परीक्षा-प्रणाली है। जो आँकड़े हमने ऊपर दिये हैं उनसे सिद्ध हो जाता है कि लगभग ५० प्रतिशत छात्र परीक्षाओं मे अनुत्तीर्ण रहते हैं। इसके लिये दोषारोपण परीक्षा-प्रणाली पर किया जाता है, न कि विद्यार्थियों पर। विद्यार्थी एक वर्ष तक कक्षा मे जो कार्य करते हैं उस पर किसी प्रकार का भी विचार उनको उन्नति देने के समय नहीं किया जाता है, अपितु वार्षिक परीक्षा के आधार पर, जो मुख्य रूप से छात्रों की स्मरण अथवा उनकी रटने की शक्ति की कसौटी होती है, उनकी कक्षा-उन्नति का निर्णय किया जाता है।

### ३. छात्रों की स्वास्थ्य-उन्नति

छात्रों के स्वास्थ्य की उन्नति की ओर सरकार द्वारा विशेष ध्यान दिया जाना है। आज के बालक भविष्य के नागरिक हैं। आज जब कि संसार तृतीय विश्व-युद्ध के काले बादलों से आच्छादित हो रहा है, देश की सुरक्षा के लिये बलिष्ठ सैनिकों की आवश्यकता है। यह तभी सम्भव हो सकता है, जब बालकों के स्वास्थ्य के प्रति उनके बाल्यकाल से ही ध्यान दिया जाय। अतः सरकार पर यह दायित्व है कि वह उनके लिये पौष्टिक आहार की व्यवस्था करे। आज के सभी प्रगतिशील देशों ने छात्रों के लिये किसी न किसी रूप में पौष्टिक भोजन की व्यवस्था कर दी है। यदि भारत की निर्धन जनता के बच्चों के लिये कोई ऐसी योजना क्रियान्वित कर दी जाय, तो उनके स्वास्थ्य को अवश्य उन्नति होगी और इस कारक के फलस्वरूप होने वाला अवरोधन लुप्त हो जायगा।

### ४. पाठ्य-क्रम में परिवर्तन

पाठ्य-क्रम में विषयों को कम करना आवश्यक है। साथ ही उनमे ऐसे विषयों को स्थान दिया जाना चाहिये जो रोचक हों। यदि गणित, कृषि, विज्ञान आदि विषयों की शिक्षा प्रदान ही करनी है, तो उनके शिक्षण के लिये ऐसी व्यवस्था की जाय, जिससे वे छात्रों को आकर्षित कर सकें। ऐसी स्थिति में विद्यार्थियों को समस्त विषयों का समुचित ज्ञान प्राप्त हो जायगा, और सम्भवतः उन्हें एक कक्षा में एक वर्ष से अधिक समय नहीं व्यतीत करना पड़ेगा।

### ५. नवीन एवं मनोवैज्ञानिक शिक्षण-पद्धति

अवरोधन को समाप्त करने के लिये प्राथमिक विद्यालयों में नवीन एवं मनोवैज्ञानिक शिक्षण-पद्धति का प्रचलन अनिवार्य है। इसमें सफलता प्राप्त करने के लिये प्रशिक्षित अध्यापकों, इच्छित शिक्षा-उपकरणों, उत्तम विद्यालय-भवनों आदि की उपस्थिति आवश्यक है। इतने विशाल देश में अल्प समय में इन सब की व्यवस्था कर देना सम्भव नहीं प्रतीत होता है। परन्तु यदि सरकार और देश के उदार-हृदय धनी व्यक्ति शिक्षा के कार्य में पूर्ण हृदय से योग दें, तो कुछ ही वर्षों में इस कार्य को सफलता पूर्वक सम्पादित किया जा सकता है।

### ६. विद्यालय-प्रवेश पर प्रतिबन्ध

विद्यालय-प्रवेश की अनियमिता को शिक्षा-प्रशासकों तथा विद्यालय-निरीक्षकों के द्वारा समाप्त किया जा सकता है। यदि शिक्षा-विभाग विद्यालय-प्रवेश सम्बन्धी कुछ उपयुक्त नियम बना दें और प्रशासक तथा निरीक्षक कठोरता पूर्वक उनको क्रियान्वित करें, तो विद्यालय-प्रवेश की अनियमिता के कारण उत्पन्न होने वाले अवरोधन पर अंकुश लगाया जा सकता है।

**अपव्यय निवारण के उपाय**—अपव्यय-निवारण के लिये इन उपायों को अपनाया जा सकता है:—(१) शिक्षा-प्रशासन में सुधार, (२) शिक्षा-व्यवस्था में सुधार, (३) पाठ्य-क्रम में सुधार, (४) अभिभावकों की शिक्षा, (५) आर्थिक कठिनाइयों का निवारण, और (६) सामाजिक समस्याओं का समाधान।

**अवरोधन की परिभाषा**—अवरोधन से हमारा अभिप्राय है एक बच्चे का एक निम्न कक्षा में एक वर्ष से अधिक रोका जाना।

**प्राथमिक शिक्षा में अवरोधन**—प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों में से लगभग ४० प्रतिशत छात्रों को परीक्षा में अनुत्तीर्ण होने के कारण एक कक्षा में एक से अधिक वर्ष व्यतीत करने पड़ते हैं। कक्षा १ में लगभग आधे विद्यार्थी ही परीक्षा में सफल हो पाते हैं।

**अवरोधन के कारण**—अवरोधन के कारण ये हैं:—(१) बाल-विवाह, (२) दूषित वातावरण, (३) छात्रों की शारीरिक दुर्बलता, (४) पाठ्य-विषयों की अधिकता एवं अरोचकता, (५) प्रभावहीन शिक्षण-पद्धति, (६) विद्यालय-प्रवेश की अनियमितता और (७) दोषपूर्ण परीक्षा-प्रणाली।

**अवरोधन-निवारण के उपाय**—अवरोधन निवारण के उपाय अग्र-उल्लिखित हैं:—(१) बाल-विवाह-निषेध अधिनियम का पालन, (२) वातावरण में परिवर्तन, (३) छात्रों की स्वास्थ्य-उन्नति, (४) पाठ्य-क्रम में परिवर्तन, (५) नवीन एवं मनोवैज्ञानिक शिक्षण-पद्धति, (६) विद्यालय-प्रवेश पर प्रतिबन्ध और (७) परीक्षा-प्रणाली में परिवर्तन।

## सहायक पुस्तकों की सूची


1. *Report of the Hartog Commitee.*
2. *Education in India*, 1955-56.
3. *Report on Wastage and Stagnation in Primary Schools*, Bombay.
4. K. G. Saiyidain : *Compulsory Education in India.*
5. James Hemming : *Mankind against the Killers.*
6. *Literacy in India.*
7. द्वितीय पंचवर्षीय योजना
8. भारत (वार्षिक संदर्भ ग्रन्थ), १९६०

**अपव्यय निवारण के उपाय**—अपव्यय-निवारण के लिये इन उपायों को अपनाया जा सकता है:—(१) शिक्षा-प्रशासन में सुधार, (२) शिक्षा-व्यवस्था में सुधार, (३) पाठ्य-क्रम में सुधार, (४) अभिभावकों की शिक्षा, (५) आर्थिक कठिनाइयों का निवारण, और (६) सामाजिक समस्याओं का समाधान।

**अवरोधन की परिभाषा**—अवरोधन से हमारा अभिप्राय है एक बच्चे का एक निम्न कक्षा में एक वर्ष से अधिक रोका जाना।

**प्राथमिक शिक्षा में अवरोधन**— प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों में से लगभग ४० प्रतिशत छात्रों को परीक्षा में अनुत्तीर्ण होने के कारण एक कक्षा में एक से अधिक वर्ष व्यतीत करने पड़ते हैं। कक्षा १ में लगभग आधे विद्यार्थी ही परीक्षा में सफल हो पाते हैं।

**अवरोधन के कारण**—अवरोधन के कारण ये हैं:—(१) बाल-विवाह, (२) दूषित वातावरण, (३) छात्रों की शारीरिक दुर्बलता, (४) पाठ्य-विषयों की अधिकता एवं अरोचकता, (५) प्रभावहीन शिक्षण-पद्धति, (६) विद्यालय-प्रवेश की अनियमिता और (७) दोषपूर्ण परीक्षा-प्रणाली।

**अवरोधन-निवारण के उपाय**—अवरोधन निवारण के उपाय अग्र-उल्लिखित हैं:—(१) बाल-विवाह-निषेध अधिनियम का पालन, (२) वातावरण में परिवर्तन, (३) छात्रों की स्वास्थ्य-उन्नति, (४) पाठ्य-क्रम में परिवर्तन, (५) नवीन एवं मनोवैज्ञानिक शिक्षण-पद्धति, (६) विद्यालय-प्रवेश पर प्रतिबन्ध और (७) परीक्षा-प्रणाली में परिवर्तन।

## सहायक पुस्तकों की सूची


1. *Report of the Hartog Commitee.*
2. *Education in India*, 1955-56.
3. *Report on Wastage and Stagnation in Primary Schools*, Bombay.
4. K. G. Saiyidain : *Compulsory Education in India.*
5. James Hemming : *Mankind against the Killers.*
6. *Literacy in India.*
7. द्वितीय पंचवर्षीय योजना

## अध्याय ३ ४

# स्त्री-शिक्षा

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता" कहकर मनुस्मृति के रचयिता मनु ने नारी की अभ्यर्थना की है। मनु की इस उक्ति से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय विचारधारा नारी को कितना सम्मानीय एवं महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान करती है। परन्तु क्या नारी को वस्तुतः समाज द्वारा इतनी ही पूज्य और इतनी ही सम्मान्य समझ कर प्रारम्भ से लेकर आज तक शिक्षित करने का प्रयास किया गया है? इसका उत्तर खोजने के लिये जब हम प्राचीन काल से लेकर आज तक के समाज में नारी-शिक्षा का अवलोकन करते हैं, तब हमारा मस्तक लज्जा से झुक जाता है।

## हिन्दू-युग में स्त्री-शिक्षा

प्राचीन भारत में स्त्री-शिक्षा का कितना प्रसार था और उसका संगठन किस प्रकार का था, इन बातों का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने के लिये उपयुक्त साधन उपलब्ध नहीं हैं। निस्संदेह इस युग में मैत्रेयी, गार्गी, विश्ववरा एवं लीलावती के समान उच्च शिक्षा प्राप्त महिलायें थीं, परन्तु इनकी शिक्षा का विचार करके यह कथन तर्क रहित होगा कि उस समय स्त्री-शिक्षा का पर्याप्त प्रचलन था अथवा स्त्री-शिक्षा अपने संगठित रूप में विद्यमान थी। "क्योंकि ये सब महिलायें या तो स्वयं शिक्षित विद्वानों की पत्नियाँ अथवा पुत्रियाँ थीं, अतः सम्भवतः उनको अपने शिक्षित पतियों अथवा पिताओं द्वारा शिक्षा दी गई थी और यह सम्भव है कि इस युग में स्त्रियों के लिए शिक्षा की कोई संगठित

उपलब्ध नहीं हैं। तथापि इस युग की हिन्दू महिलाओं में मेवाड़ की मीराबाई, शिवाजी की माता जीजीबाई, इन्दौर की शासिका अहिल्याबाई एवं झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के नाम स्त्री-शिक्षा के जगत में आज भी स्मरणीय हैं।

## आधुनिक युग में स्त्री-शिक्षा

अंग्रेजों के आगमन के उपरान्त पाश्चात्य शिक्षा एवं संस्कृति के प्रसार के साथ-साथ नारी की सामाजिक स्थिति में क्रान्तिकारी परिवर्तन होने प्रारम्भ हुए। जो बन्धन अभी तक कठोर थे, वे शनैः शनैः ढीले होने लगे, जो स्वतन्त्रता उससे छीन ली गई थी, वह उसे प्राप्त होने लगी। नारी के सम्बन्ध में लोगों का दृष्टिकोण भी बदला, लोगों की मान्यतायें भी बदलीं और भोग्या नारी पूज्या बनने लगी। सारांश में, आधुनिक युग में पाश्चात्य प्रभाववश सभ्यता के नये प्रकाश में नारी जाति ने एक करवट ली, जागरूक पुरुषों ने नारी के वास्तविक महत्त्व को पहिचाना, नारी भी अपनी गिरी दशा के प्रति सचेष्ट हुई और इसका परिणाम यह हुआ कि आधुनिक युग नारी जागरण का का युग बन गया। के० नटराजन (K. Natrajan) ने लिखा है: "यदि एक व्यक्ति जिसकी सौ वर्ष पूर्व मृत्यु हो चुकी है, आज पुनर्जीवित हो जाय, तो सर्व प्रथम तथा सबसे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन जो वह देखेगा, स्त्रियों की स्थिति में क्रान्तिकारी परिवर्तन होगा।"[1] परन्तु इस क्रान्ति के बावजूद भी अत्याचारी पुरुष वर्ग नारी की महत्ता को नहीं स्वीकार करता है। वह विधवा विवाह पर रोक लगाकर गर्व का अनुभव करता है, भले ही समाज में व्यभिचार फैले; वह नारी की शिक्षा का विरोध कर अट्टहास करता है, भले ही उसकी सन्तान निरक्षर हो। उसी के विरोध के फलस्वरूप स्त्री-जगत में जागरण होते हुए भी स्त्री-शिक्षा का अति अल्प प्रसार हुआ है। १९५९ में एक सीमित सर्वेक्षण के अनुसार स्त्रियों की साक्षरता २८.८ प्रतिशत थी।[2] इससे स्वतः सिद्ध हो जाता है कि स्त्री-शिक्षा की प्रगति अति मन्द रही है, जिसका स्पष्टीकरण स्त्री-शिक्षा के विकास से हो जाता है।

---

1. "If a person who died a hundred years ago came to life to-day, the first and the most important change that would strike him is the revolution in the position of women."
*Indian Social Reformer*, September 25, 1937.

2. *Hindustan Year Book*, 1960, p. 385.

# स्त्री-शिक्षा का विकास

## म्पनी के शासन-काल में

ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन-काल में स्त्री-शिक्षा के प्रति अधिकारियों
ा रंच मात्र भी ध्यान नहीं दिया गया। इसका प्रमुख कारण यह था कि
पनी को अपने राजकीय तथा व्यावसायिक कार्यालयों मे कार्य करने के लिये
क्षित महिलाओं की आवश्यकता नही थी। मुनरो (Munro) के मद्रास के
ालयों तथा एडम (Adam) के बंगाल के शिक्षालयों के वर्णन से ज्ञात होता
कि इन प्रान्तों में जो प्राथमिक विद्यालय थे उनमे केवल बालक ही शिक्षा
त करते थे। "शिक्षा की समस्त स्थापित संस्थायें केवल पुरुषों के लाभ के
ये ही हैं, और सम्पूर्ण स्त्री-जगत को विधिपूर्वक अज्ञानता के अर्पण कर
ा जाता है।"[1]

कम्पनी के शासन-काल में स्त्री-शिक्षा का आन्दोलन प्रारम्भ करने का
य मिशनरियों को है। १८५१ में प्रोटेस्टेण्ट मिशनरियों द्वारा ३७१ बालिका-
ालय चलाये जा रहे थे, जिनमें ११,२९३ बालिकायें शिक्षा ग्रहण कर रही
।[2] इसी प्रकार कुछ बालिका-विद्यालयों का संचालन, रोमन कैथोलिक मिश-
यों के द्वारा भी किया जा रहा था। इन मिशनरियों के अतिरिक्त बम्बई मे
्षणी शिक्षा-समिति (Deccan Education Society) स्त्री-शिक्षा-प्रसार
कार्य में संलग्न थी। कुछ सरकारी तथा गैर-सरकारी व्यक्तियों ने भी
क्तिगत शिक्षा-संस्थाओं का शिलान्यास करके बालिकाओं की शिक्षा की
वस्था की। इस प्रकार की संस्थाओं में १८४९ में बंगाल की 'शिक्षा-परिषद्'
ouncil of Education) के प्रधान, जे० ई० डी० बेथ्यून (J. E. D.
thune) द्वारा स्थापित किया गया बालिका-विद्यालय विशेष रूप से उल्लेख-
य है। इस विद्यालय का समस्त व्यय-भार उन्होंने स्वयं वहन किया।

विदेशियों द्वारा बालिकाओं की शिक्षा को प्रोत्साहित किये जाने पर भी,
रतीय उसका घोर विरोध करते रहे। १८५७ मे कलकत्ता, बम्बई तथा
ास में विश्वविद्यालयों का शिलान्यास किया जा चुका था, परन्तु प्रारम्भ में
विश्वविद्यालयों ने स्त्रियों को परीक्षाओं में सम्मिलित होने की आज्ञा नहीं

---

"All the established native institutions of education exist for the benefit of the male sex only, and the whole of the female sex is systematically consigned to ignorance."
*Adam's Reports*, p. 452.

M. A. Sherring: *The History of Protestant Missions*, pp. 444-47.

दी। १८५७ मे बम्बई में एक पारसी बालिका को और १८५८ मे कलकत्ता में एक ईसाई बालिका को एन्ट्रेन्स परीक्षा में सम्मिलित नहीं होने दिया गया।[1]

### १८५८ से १८८२ तक

सत्ता हस्तान्तरण के उपरान्त ब्रिटिश सरकार ने भारत का शासन-सूत्र सम्हाला। १८५४ के घोषणा-पत्र के आदेशानुसार सरकार ने स्त्रियों की शिक्षा का भार अपने ऊपर ले लिया। नवनिर्मित शिक्षा-विभागों ने स्त्री-शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया और उपयुक्त स्थानों पर बालिका-विद्यालयों का निर्माण किया। फलस्वरूप स्त्री-शिक्षा की प्रगति प्रारम्भ हो गई। १८८२ तक स्त्रियों के लिये प्राथमिक, माध्यमिक, एवं उच्च शिक्षा तथा प्रशिक्षण की पर्याप्त सुविधायें प्रदान कर दी गई। उस वर्ष समस्त प्रकार के विद्यालयों की संख्या २,६९७ थी, जिनमें १,२७,०६६ छात्रायें शिक्षा प्राप्त कर रही थीं।

### १८८२ से १९०२ तक

१८८२ में भारतीय शिक्षा-आयोग (Indian Educatton Commission) ने तत्कालीन स्त्री-शिक्षा की दयनीय दशा पर अपने हृदयोद्गारो को व्यक्त करते हुए लिखा : "यह बात स्पष्ट है कि स्त्री-शिक्षा अभी तक अत्यधिक पिछड़ी हुई दशा में है। अतः इस बात की आवश्यकता है कि प्रत्येक सम्भव विधि से इसका पोषण किया जाय।"[2] आयोग ने स्त्री-शिक्षा के प्रायः सभी अंगों के सम्बन्ध में सुझाव दिये, परन्तु इनको महत्त्वपूर्ण नहीं कहा जा सकता है। आयोग ने न तो बालिकाओं की अनिवार्य शिक्षा के सम्बन्ध में कुछ कहा और न यह कहा कि उसे सरकार का संरक्षण प्रदान किया जाय। फलस्वरूप १८८२ से १९०२ तक स्त्री-शिक्षा की प्रगति मन्थर गति से हुई। १९०२ में बालिकाओं के लिये १२ कॉलिज, ४६७ माध्यमिक विद्यालय तथा ५,६२८ प्राथमिक विद्यालय थे, जिनमे शिक्षा ग्रहण करने वाली छात्राओं की संख्या ४४७, ४७० थी।

### १९०२ से १९२१ तक

विद्या-प्रेमी लार्ड कर्जन (Cuzron) ने स्त्री-शिक्षा की मृत-तुल्य दशा से

1. L. Mukherjee : *op. cit*, p. 261.
2. "It will have been seen that female education is still in an extremely backward condition, and that it needs to be fostered in every legitimate way". *Indian Education Commission Report.*

जिनमें २,६६७;५६८ बालिकायें अध्ययन कर रही थीं। इन आँकड़ों को देखकर हम कह सकते हैं कि इस काल में स्त्री-शिक्षा की प्रशंसनीय प्रगति हुई। परन्तु इसके बावजूद भी सम्पूर्ण जनसंख्या में से केवल ५·३८ प्रतिशत लड़कियाँ शिक्षा प्राप्त कर रही थीं और स्त्रियों की साक्षरता केवल ३ प्रतिशत थी।

### १६३७ से १६४७ तक

इस काल में स्त्री-शिक्षा की, विशेष रूप से उच्च शिक्षा की, अति तीव्र प्रगति हुई। विश्व-युद्ध के दौरान में भारत के विभिन्न सरकारी विभागों एवं व्यावसायिक कार्यालयों में शिक्षित व्यक्तियों की माँग बढ़ी। फलस्वरूप अनेकों स्त्रियाँ उनमें कार्य करने लगीं। नौकरी करने से स्त्रियों ने जिस आर्थिक स्वतंत्रता के आनन्द का उपभोग किया, उससे उन्हें शिक्षा ग्रहण करने की अधिक लालसा हुई। युद्ध-काल में मंहगाई अधिक हो जाने के कारण मध्य वर्ग के व्यक्ति आर्थिक संकट में थे। अतः उनमें से जो उदार विचार के थे, उन्होंने अपनी स्त्रियों को घर से बाहर जाकर नौकरी करने में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं की। इस परिवर्तित दृष्टिकोण ने स्त्री-शिक्षा के उन्नयन में अतिशय योग दिया। १६४७ में स्त्रियों के लिये सामान्य तथा विशिष्ट शिक्षा के लिये १६,६५१ संस्थायें थीं, जिनमें ३,५५०,५०३ लड़कियाँ शिक्षा से लाभ उठा रही थीं।[१]

### १६४७ से १६६० तक

१६४७ के उपरान्त स्त्री-शिक्षा का श्लाघनीय विकास हुआ है। १६५५-५६ में स्त्री-शिक्षा सम्बन्धी संस्थाओं की संख्या २४,८७६ थी और उनमें अध्ययन करने वाली बालिकाओं की ६,१८८,७०७।[२]

उपर्युक्त आँकड़ों के अवलोकन से स्पष्ट हो जाता है कि स्वतंत्र भारत में स्त्री-शिक्षा का विस्तार अति द्रुत गति से हो रहा है, परन्तु वास्तविकता यह ... बालिकाओं की शिक्षा अत्यधिक पिछड़ी हुई अवस्था ...ी बालिकाओं तथा बालकों का अनुपात प्राथमिक ... स्तर पर १ : ४, उच्च सामान्य शिक्षा के स्तर ... शिक्षा के स्तर पर १ : ७ है।

... हम निस्संकोच रूप से कह सकते हैं कि भारत में ...ो रहा है। आज किसी प्रकार की

भी शिक्षा-संस्था मे बालिकाओं के प्रवेश पर प्रतिबन्ध नहीं है। भारतीय संविधान के अनुच्छेदन १५ के अनुसार "राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान अथवा इनमें से किसी के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा।"[1] इस सिद्धान्त के अनुसार भारतीय स्त्रियों को पुरुषों के समान शैक्षिक तथा सामाजिक अधिकार प्राप्त हो गये हैं। सरकार छात्रवृत्तियाँ एवं अन्य प्रकार की आर्थिक सहायता प्रदान करके स्त्री-शिक्षा को प्रोत्साहन प्रदान कर रही है। स्त्री-शिक्षा के प्रति व्यक्तियों का पुरातन रूढ़िवादी दृष्टिकोण परिवर्तित हो रहा है। राष्ट्रीय जीवन में स्त्री-शिक्षा के महत्व को प्रायः प्रत्येक वर्ग के व्यक्तियों द्वारा स्वीकार किया जा रहा है। आज जो भी भारतीय नागरिक राष्ट्र के भविष्य के सम्बन्ध मे चिन्तित है, वह स्त्री-शिक्षा के तीव्र प्रसार का समर्थक है। इन सब बातों के बावजूद भी दुख का विषय यह है कि स्त्री-शिक्षा अबाध गति से अपने पथ पर अग्रसर नहीं हो रही है। इसके क्या कारण हैं, हम इन पर नीचे विचार करेंगे।

## स्त्री-शिक्षा की समस्यायें

आज स्त्री-शिक्षा के मार्ग को जिन कठिनाइयों अथवा समस्याओं ने अवरुद्ध कर रखा है, उनका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है :

### १, रूढ़िवादिता

प्रगति एवं मानसिक विकास के इस युग में भी असंख्यों भारतीय रूढ़िवादिता के शिकजे में जकड़े हुए हैं। वे अब भी प्राचीन विचारों तथा परम्पराओं के पोषक एवं समर्थक हैं। उनका विचार है कि स्त्रियों को विवाह करने के उपरान्त गृह मे निवास करना ही उचित है। अतः उनको किसी प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता नहीं है। इसके अतिरिक्त उनका यह भी विचार है कि बालिकायें शिक्षित होकर चरित्रहीन तथा स्वतंत्र हो जाती हैं। यह धारणा भी स्त्री-शिक्षा के प्रसार में बाधक सिद्ध हो रही है।

### २. अशिक्षा

१९५१ की जनगणना के अनुसार भारत की ८३·४ प्रतिशत जनसंख्या अशिक्षित थी। १९५६ में भारत सरकार द्वारा किये गये एक सीमित सर्वेक्षण

1. "The State shall not discriminate against any citizen on grounds only of religion, race, caste, sex, place of birth or any of them."—Article 15 of the *Constitution of Free India.*

से ज्ञात हुआ है कि शिक्षित व्यक्तियों की संख्या में श्लाघनीय वृद्धि है। इस सर्वेक्षण के अनुसार भारत में ५६·३ प्रतिशत व्यक्ति ही अशिक्षित रह गये हैं।[1] यदि इन आंकड़ों को समस्त भारत के लिये सत्य स्वीकार कर लिया जाय, तो यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि हमारा देश आज भी अशिक्षा के गर्त में डूबा हुआ है। जिस देश के लगभग आधे व्यक्तियों का मार्ग शिक्षा के प्रकाश से आलोकित नहीं है, वहाँ शिक्षा के महत्व का हृदयंगम किया जाना असम्भव है। यही कारण है कि भारतीय जनता शिक्षा के सांस्कृतिक तथा सामाजिक महत्व को समझने में पूर्णतया असमर्थ है। इन अशिक्षित व्यक्तियों को यह समझाना एक अति दुष्कर कार्य है कि शिक्षा से मस्तिष्क का विकास होता है, दृष्टिकोण विस्तृत होता है और व्यक्ति देश का उत्तम नागरिक बनता है। ऐसी स्थिति में जो नग्न सत्य अवलोकित होता है, वह यह है कि अधिकांश भारतीय, बालकों एवं बालिकाओं की शिक्षा को निरर्थक तथा समय का अपव्यय समझते हैं। इस प्रकार की परिस्थिति में स्त्री शिक्षा के प्रसार की आशा करना गगन-तारिकाओं को स्पर्श करने की इच्छा के समान है।

### ३. धार्मिक कट्टरता

शिक्षा के अभाव के कारण हमारा समाज धार्मिक कट्टरता तथा धार्मिक अन्धविश्वासों पर आधारित है। अशिक्षित हिन्दू एवं मुसलमानों को अपनी धार्मिक परम्पराओं में आज भी इतनी आस्था है कि किसी प्रकार के तर्क प्रस्तुत करके भी उनका परित्याग करने के लिये उनको उद्यत नहीं किया जा सकता है। प्रायः प्रत्येक अशिक्षित कट्टर हिन्दू का स्मृतिकारों के इस कथन मे पूर्ण विश्वास है : "दसवें वर्ष में कन्या के पहुँचने पर जो पिता उसका विवाह नहीं कर देता है, वह मानो प्रतिमास उसका रज पीता है।[2]" इसी प्रकार धार्मिक सिद्धान्तों के अनुसार आचरण करने वाले मुसलमान रजोदर्शन से पूर्व ही बालिकाओं का विवाह करने के लिये उत्कण्ठित रहते हैं क्योंकि उनके विचारानुसार प्रति मास का रजोदर्शन 'गुनाह' है।[3] दूसरे, भारतीय वयस्कता अधिनियम (Indian Majority Act) मुसलमानों पर विवाह इत्यादि के मामले में लागू नहीं होता है।[4] ऐसे हिन्दू तथा मुस्लिम समाज में अगणित

1. *Hindustan Year Book*, 1960, p. 385.
2. "प्राप्ते तु दशमे वर्षे यस्तु कन्यां न यच्छति।
   मासि मासि रजस्तस्याः पिता पिबति शोणितम्॥
3. 'Every month of menstruation is considered a period of *Gunah* by the Muslims".
4. रामबिहारीसिंह तोमर : भारतीय सामाजिक संस्थायें, पृष्ठ २११

बालिकाओं का विवाह अल्प आयु में ही सम्पन्न कर दिया जाता है। परिणा-
मतः उनकी शिक्षा का स्थगन स्वाभाविक है।

### ७. शिक्षा की अनुचित धारणा

ऐसे भारतीयों का अभाव नहीं है जिनमें स्त्री-शिक्षा की अनुचित धारणा
। उनके मतानुसार शिक्षा की प्राप्ति केवल व्यावसायिक तथा राजनीतिक
लाभ के लिये की जाती है। शिक्षा ग्रहण करने का प्रमुख ध्येय उत्तम राजपद
प्राप्त करना है। इस उद्देश्य से केवल बालकों को शिक्षित करना उचित है।
जहाँ तक बालिकाओं का प्रश्न है उनको केवल उत्तम वर प्राप्त करने के
विचार से शिक्षित किया जाना चाहिये। फलस्वरूप जैसे ही एक बालिका
की शिक्षा-योग्यता से आकर्षित होकर एक नवयुवक उसके सुकुमार करों द्वारा
वरमाला से अलंकृत होने के लिये उद्यत हो जाता है, उसकी शिक्षा समाप्त
कर दी जाती है। इस प्रकार जिन अभिभावकों को अपने लक्ष्य की प्राप्ति हो
जाती है वे अपनी बालिकाओं की शिक्षा के क्रम को अबाध रूप से चलते रहने
में कोई हित नहीं देखते हैं। अर्द्ध-शिक्षित समाज का यह दृष्टिकोण स्त्री-
शिक्षा पर भीषण प्रहार कर रहा है।

### विवाह की अनुचित धारणा

जिस प्रकार अनेकों व्यक्तियों की बालिका-शिक्षा की अनुचित धारणा है,
उसी प्रकार स्त्री-विवाह की भी है। प्रत्येक माता-पिता अपना यह पुनीत कर्त्तव्य
समझते हैं कि वे अपनी बालिकाओं का विवाह यथासमय सम्पन्न कर दें।
सामाजिक परिस्थितियाँ भी उनको इस दिशा में अग्रसर होने के लिये संकेत करती
हैं। यदि वे अपनी बालिकाओं का विवाह उस समय नहीं कर देते हैं, जब कि
वे यौवनावस्था में पदार्पण करती हैं, तो उन्हें समाज की टीका-टिप्पणी सुननी
पड़ती है और विविध प्रकार के उचित-अनुचित लांछनों का सामना करना
पड़ता है। अतः वे बालिकाओं की शिक्षा की अपेक्षा उनके विवाह पर अधिक
ध्यान देते हैं और साधारणतः यौवन के उषा-काल ही में उनका शिक्षा-संस्थाओं
से सम्बन्ध विच्छेद कर देते हैं। अभिभावकों का यह विचार-बिन्दु स्त्री-शिक्षा
के प्रसार के लिये घातक सिद्ध हो रहा है।

### बाल-विवाह एवं पर्दा-प्रथा

हिन्दू एवं मुस्लिम समाजों में आज भी बाल-विवाह तथा पर्दा-प्रथा किसी
न किसी रूप में विद्यमान है। कितने ही माता-पिता अल्प आयु में ही अपनी
पुत्री के विवाह-संस्कार से मुक्त हो जाते हैं। कितने ही व्यक्ति ऐसे हैं जो

पर्दा-प्रथा का अनुसरण करने के कारण अपनी बालिकाओं को उन विद्यालयों में शिक्षा ग्रहण करने के लिये नहीं भेजते हैं, जहाँ पर्दे की समुचित व्यवस्था नहीं होती है। इस प्रकार के शिक्षालयों की संख्या अति नगण्य है। फलतः अनेकों बालिकाओं को अपनी शिक्षा आकांक्षा का दमन कर देना पड़ता है।

## ७. ग्रामीण क्षेत्रों की अविकसित दशा

भारत के अधिकांश ग्रामीण क्षेत्र अविकसित दशा में हैं। उनमें जीवन की समस्त आवश्यक्ताओं की प्राप्ति दुर्लभ है। जहाँ तक विद्यालयों का प्रश्न है, ऐसे ग्राम दो-तिहाई हैं, जिनमें प्राथमिक विद्यालय भी नहीं हैं। फिर ध्यान देने की बात यह है कि भारत ग्राम-प्रधान देश है। यदि एक ग्राम-प्रधान देश के दो-तिहाई ग्रामों में शिक्षा की किसी प्रकार की सुविधा उपलब्ध नहीं है, तो बालकों तथा बालिकाओं को शिक्षित करने का विचार ही उपहासजनक है। सम्भव है कि भाग्यवश कुछ इने-गिने व्यक्ति अपनी संतान को शिक्षित करने के लिये किसी प्रकार की व्यक्तिगत व्यवस्था कर लेते हों, पर इस विधि को अपना कर शिक्षा-प्रसार की कल्पना करने मे कोई सार नही है। इन ग्रामो की जनता साधारणत. निर्धन है। अत: उनके समक्ष अपने बालकों अथवा बालिकाओं की शिक्षा का प्रश्न कभी भी उपस्थित नहीं होता है। वस्तुतः हमारे ग्रामीण क्षेत्रों की अविकसित दशा बालिकाओं को ही नहीं, अपितु बालकों को भी शिक्षा से वंचित रखने के लिये उत्तरदायी है।

## ८. सरकार की उदासीनता

यह स्वीकार करते हुए भी कि हमारा देश निर्धन है और सरकार के पास विकास-कार्यों में व्यय किये जाने के लिये धन का अभाव है, हम निस्संकोच रूप से कह सकते हैं कि स्त्री-शिक्षा के प्रति सरकार की उदासीनता इसके प्रसार में पर्याप्त मात्रा में बाधक रही है और अब भी है। विदेशी सरकार ने स्त्री-शिक्षा की स्पष्ट रूप से अवहेलना की और १९३५-३६ में भारत के अनेकों प्रान्तों मे स्त्रियो की शिक्षा पर व्यय किये जाने वाले धन को कम कर दिया।[1] दुख की बात यह है कि स्वतन्त्र भारत की सरकार भी विदेशियों के पद-चिह्नों पर चल रही है। एक ओर तो अपनी उदारता का परिचय देते हुए सरकार ने स्त्री-शिक्षा को प्रोत्साहन प्रदान करने की नीति की घोषणा की है, परन्तु दूसरी ओर बालिकाओं की शिक्षा पर बालकों की शिक्षा की अपेक्षा कम धन व्यय किया है। १९५५-५६ में राज्य सरकारों ने बालिका-विद्यालयो पर १९,३४-

1. *Education in India* (1935-36), p. 56.

रहता है। ऐसी स्थिति में एक स्थान पर बालिका-विद्यालय होते हुए भी उस अध्यापिकाओं को पर्याप्त संख्या उपलब्ध नहीं हो पाती है। फलतः बालिका उस विद्यालय से लाभ नहीं उठा पाती हैं।

## १३. दोषपूर्ण शिक्षा-प्रशासन

भारत में स्त्री-शिक्षा का प्रशासन अत्यधिक दोषपूर्ण है। उत्तर प्रदेश पंजाब, बिहार, बंगाल, हैदराबाद और दिल्ली के अतिरिक्त समस्त राज्यों में स्त्री-शिक्षा के प्रशासन का भार पुरुष अधिकारी वर्ग पर है। यह वर्ग न तो स्त्री-शिक्षा की समस्याओं से पूर्ण रूप से अवगत ही होता है और न उनमें पर्याप्त रुचि ही लेता है। फलस्वरूप न तो उनके द्वारा स्त्री-शिक्षा में होने वाला अपव्यय रोका जा सकता है और न वे स्त्री-शिक्षा के समुचित विकास में योग ही दे सकते हैं।

## १४. अनुपयुक्त पाठ्य-क्रम

स्त्री-शिक्षा की सर्व-प्रधान समस्या पाठ्य-क्रम की अनुपयुक्तता है। शिक्षा के समस्त स्तरों पर लड़को तथा लड़कियों का पाठ्य-क्रम समान है। इतना अवश्य है कि लड़कियों को गृह-विज्ञान, संगीत आदि वैकल्पिक विषयों के अध्ययन की सुविधा प्राप्त है, परन्तु इससे उनका कोई विशेष हित नही होता है। कारण यह है कि माध्यमिक तथा विश्वविद्यालय शिक्षा के स्तर पर लड़कों तथा लड़कियों के लिये समान पाठ्य-क्रम की व्यवस्था है, क्योंकि दोनों के लिये परीक्षाएँ एक ही हैं। पाठ्य-पुस्तकें भी समान हैं। भारतीय जनता लड़कियों के लिये इस प्रकार की शिक्षा की विरोधी है। उसका कहना है कि बालिकाओं को जो शिक्षा प्रदान की जाती है वह सामाजिक तथा पारिवारिक दृष्टि से उनके लिये हितकर नहीं है। जिन विषयों का विद्यालयों में शिक्षण किया जाता है वे गार्हस्थ्य जीवन के लिये उपयोगी नहीं हैं। विद्यालयों तथा कॉलेजों मे प्रदान की जाने वाली शिक्षा महिलाओं को भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता से विमुख करके पाश्चात्य संस्कृति तथा सभ्यता की अनुगामिनी बना देती है, जिससे देश का महान् अनर्थ हो रहा है। यह शिक्षा ज्ञान-प्रधान, पुस्तक-प्रधान एवं अव्यावहारिक होने के कारण लड़कियों में सामाजिक आवश्यकताओं के अनुकूल सामर्थ्य का विकास नहीं करती है। प्रचलित शिक्षा प्राप्त करके महिलाओं के मस्तिष्क पर जो पाश्चात्य मुलम्मा चढ़ जाता है, उसके फलस्वरूप भारतीय परिवार का अति त्वरित गति से विघटन हो रहा है।

## समस्याओं का समाधान

हमने स्त्री-शिक्षा की जिन समस्याओं की ओर ऊपर संकेत किया है,

उनके समाधान में तीन तत्व सहायक हो सकते हैं। ये तत्व हैं—सरकार, जनता और स्त्रियाँ। यदि ये तीनों अपने कर्त्तव्यों का पालन करें, तो शीघ्रातिशीघ्र इन समस्त समस्याओं का समाधान सम्भव हो सकता है। इनके क्या कर्तव्य हैं, इसका हम विस्तृत रूप से नीचे अध्ययन करेंगे।

## सरकार के कर्त्तव्य

स्त्री-शिक्षा की अधिकांश समस्याओं का समाधान केवल सरकार द्वारा ही किया जा सकता है। जब तक देश की सरकार दत्तचित्त होकर बालिकाओं के शिक्षा-प्रसार की दिशा में सक्रिय पग नहीं उठायेगी, तब तक देश की जनता अथवा किन्हीं भी सार्वजनिक संस्थाओं द्वारा हिमालय पर्वत से कुमारी अन्तरीप तक फैली हुई तथा अशिक्षा के नीड़ में अति दीर्घकाल से शयन करने वाली स्त्री-जाति का अधिक उद्धार नहीं हो सकेगा। अतः यह वांछनीय ही नहीं अपितु अनिवार्य भी है कि सरकार स्त्री-शिक्षा के अपने कर्त्तव्य के प्रति जागरूक हो और अपने सतत प्रयास के द्वारा उसका विस्तार, विकास तथा प्रचार करे। जब सरकार ने संविधान में महिलाओं को पुरुषों के समान समस्त अधिकार प्रदान कर दिये हैं, तब यह और भी आवश्यक है कि सरकार उनको अशिक्षा की चिर निद्रा से जागृत करके अपने अधिकारों का उपभोग करने की सामर्थ्य प्रदान करे। इन उद्देश्यों को अपने समक्ष रख कर सरकार जिन बहुमुखी योजनाओं को क्रियान्वित कर सकती है, वे निम्नांकित हैं:

### १. ग्रामीण जनता का उत्थान

भारत ग्राम-प्रधान देश है और यहाँ की ८२·७ प्रतिशत जनता ग्रामों में निवास करती है।[१] इन ग्रामों की अधिकांश जनता कितने आर्थिक संकट में है, यह सर्वविदित है। अपनी आर्थिक असमर्थता के कारण ही अभिभावक अपनी लड़कियों के लिये शिक्षा के साधन को जुटाने की बात का कभी विचार ही नहीं करते हैं। यह हर्ष का विषय है कि सरकार ग्रामोद्योगों के विकास, कृषि की उन्नति, परिवहन की व्यवस्था एवं इसी प्रकार के अन्य कार्यों द्वारा ग्रामीणों के आर्थिक स्तर को ऊँचा उठाने की चेष्टा कर रही है। समाज-शिक्षा द्वारा उनके दृष्टिकोण को विस्तृत कर रही है एवं अन्य विविध विधियों द्वारा उनके उत्थान की योजनायें बना रही है। परन्तु जिस बात का अभाव खटक रहा है, वह यह है कि सरकार की विकास योजनाओं ने भारत के समस्त ग्रामों को, विशेष रूप से उनको जो नागरिक क्षेत्रों से अत्यधिक दूर हैं, अभी

१. भारत, १९६०, पृष्ठ १३

तक स्पर्श नहीं किया है। साथ ही सरकार द्वारा कोई इस प्रकार का संग
आन्दोलन नहीं किया जा रहा है, जिससे ग्राम निवासियों की रूढ़िवादि
धार्मिक कट्टरता एवं स्त्री-शिक्षा, बाल-विवाह तथा विवाह की अनुचित धा
णाओं में आमूल-चूल परिवर्तन हो जाय। जब तक सरकार इस दिशा में प
नहीं उठायेगी, तब तक विकास-योजनाओं द्वारा ग्रामीणों का आर्थिक स्तर उन्न
करके भी कोई विशेष लाभ नहीं होगा। अतः सरकार का यह कर्तव्य है कि
वह उचित कार्य-क्रमों का निर्माण करके ग्राम-निवासियों की आर्थिक उन्नति के
साथ-साथ उनकी सामाजिक, सांस्कृतिक तथा नैतिक प्रगति की ओर भी विशेष
ध्यान दे। ग्रामीणों की सर्वतोमुखी उन्नति करके ही स्त्री-शिक्षा के प्रति उनके
संकुचित दृष्टिकोण को परिवर्तित किया सकता है।

## २. बालिका-विद्यालयों की व्यवस्था

हम ऊपर संकेत कर चुके हैं कि सरकार बालिकाओं की शिक्षा के प्रति उदासीन है और बालकों की शिक्षा की अपेक्षा उनकी शिक्षा पर कम धन व्यय कर रही है। इससे बालिकाओं की शिक्षा पर प्रबल वज्र-प्रहार हुआ है। धनाभाव के कारण उनकी शिक्षा के लिये समुचित व्यवस्था नहीं की जा सकी है, जिसके फलस्वरूप मान्यता प्राप्त बालिका-विद्यालयों में बालिकाओं की संख्या में केवल ८·५ प्रतिशत वृद्धि हुई है[1] परन्तु अमान्यता-प्राप्त विद्यालयों तथा उनमें शिक्षा प्राप्त करने वाली बालिकाओं की संख्या में ह्रास हो गया है। १९५४-५५ में इन विद्यालयों की संख्या २,३८,६८५ थी। परन्तु १९५५-५६ में यह संख्या घटकर २,२४,५८३ हो गई और इनमें शिक्षा ग्रहण करने वाली बालिकाओं की संख्या में ५·६ प्रतिशत का ह्रास हो गया।[2] यदि सरकार अमान्यता प्राप्त विद्यालयों को मान्यता प्रदान करके और उनको आर्थिक सहायता प्रदान करके अपनी उदारता का परिचय देती, तो निश्चय है कि बालिका-विद्यालयों और बालिकाओं की संख्या में ह्रास नहीं होता। धनाभाव के कारण इन विद्यालयों को अपना शैक्षिक कार्य स्थगित करना पड़ा, जिसके फलस्वरूप कितनी ही लड़कियाँ उनसे लाभ प्राप्त न कर सकीं।

बालिका-विद्यालयों के अभाव का एक स्पष्ट परिणाम यह है कि बालिकाओं को सह-शिक्षा ग्रहण करने के लिये बाध्य होना पड़ता है और यदि उनके अभिभावक संकीर्ण विचारों के हैं, तो उनको शिक्षा से अपना सम्बन्ध विच्छेद करना पड़ता है। शिक्षाविदों ने सह-शिक्षा की प्रशंसा नहीं की है।

1. *Education in India*, (1955-56), p. 26,
2. *Ibid*, p. 27.

सह-शिक्षा के विद्यालयों में बालकों तथा बालिकाओं का सामीप्य उनकी काम-वासनाओं को उत्तेजित करता है।[1] यौवनावस्था का खुमार उन्हें भला-बुरा सोचने का अवसर नहीं देता है, जिसका परिणाम यह होता है कि वे पथ-भ्रष्ट हो जाते हैं और मर्यादा का अतिक्रमण कर वासना-पूर्ति में लिप्त हो जाते हैं। प्राथमिक स्तर पर तो नहीं, परन्तु माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा के स्तर पर सह-शिक्षा का यह दोष विशेष रूप से परिलक्षित होता है। फिर बालिकाओं की अभिरूचियाँ तथा आवश्यकताएं बालकों से भिन्न होती हैं। इसलिए भी सह-शिक्षा से बालिकाओं के लाभ की आशा नहीं की जा सकती है।

सह-शिक्षा के विरुद्ध इन तथा इनके अतिरिक्त और जिन अन्य अनेकों कारणों को प्रस्तुत किया जाता है, उनके आधार पर यह नितान्त आवश्यक है कि बालिकाओं के लिए माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा के स्तर पर पृथक् विद्यालयों की स्थापना की जाय। हम अपने इस विचार की पुष्टि में माध्यमिक शिक्षा आयोग के इन शब्दों को उद्धृत कर सकते हैं: "हमारा मत है कि जहाँ सम्भव हो वहाँ बालिकाओं के लिए पृथक् विद्यालय स्थापित किए जायँ, क्योंकि ऐसे विद्यालय सह-शिक्षा के विद्यालयों की अपेक्षा शारीरिक, सामाजिक तथा मानसिक विकास के लिए सम्भवतः अधिक उत्तम अवसर प्रदान करते हैं और समस्त राज्यों को इस प्रकार के विद्यालय पर्याप्त संख्या में स्थापित करने चाहिए।"[2]

खेद का विषय है कि राज्य-सरकारों ने माध्यमिक शिक्षा-आयोग की इस सिफ़ारिश की ओर इतना लम्बा समय व्यतीत हो जाने पर भी कोई ध्यान नहीं दिया है। इस बात की परम आवश्यकता है कि बालिकाओं के लिये कम से कम माध्यमिक शिक्षा के स्तर पर पृथक् विद्यालयों का निर्माण किया जाय। ये विद्यालय केवल [illegible] ही नहीं, अपितु ग्रामों में भी हों। निस्सन्देह इस [illegible] धन व्यय करना पड़ेगा, परन्तु शिक्षा का उत्तर- [illegible]र वह इस [illegible] से उन्मुक्त नहीं हो सकती

[1] [illegible] हितोपदेश

[2] [illegible] is possible separate [illegible]ied as they are likely [illegible] to deve- [illegible] and all [illegible]" [illegible], p. 59.

हमारी सरकार द्वारा मनन किये गये ये विचार अभिनन्दनीय हैं, परन्तु इनके अतिरिक्त कतिपय अन्य विधियों को भी क्रियान्वित किया जा सकता है, जो अग्रांकित हैं। प्रथम, सरकार द्वारा अधिक वेतन देकर स्त्रियों को अध्यापन वृत्ति की ओर आकृष्ट किया जाय। द्वितीय, अध्यापकों की शिक्षित पत्नियों को अध्यापन-वृत्ति अपनाने के लिये प्रोत्साहित किया जाय। उनको इस बात की सुविधा दी जाय कि वे उसी स्थान के बालिका-विद्यालयों में कार्य करें, जहाँ उनके पति बालक-विद्यालयों में नियुक्त हैं। तृतीय, विद्यालय-भवन की सीमा के अन्तर्गत अथवा उसके अधिक से अधिक निकट अध्यापिकाओं के लिये निःशुल्क आवास की व्यवस्था की जाय। चतुर्थ, शिक्षा-विभाग द्वारा स्त्रियों की नियुक्ति की आयु का प्रतिबन्ध हटा दिया जाय। चालीस वर्ष की आयु तक की महिलाओं को शिक्षा-विभाग द्वारा नियुक्त किया जाय। पंचम, जब तक उपयुक्त शिक्षा-योग्यता वाली महिलायें उपलब्ध न हो जायें, तब तक नितान्त आवश्यक शिक्षा-योग्यता वाली स्त्रियों को नियुक्त किया जाय, और उन्हें अपनी शिक्षा-योग्यता में वृद्धि करने के लिये प्रोत्साहित किया जाय तथा उन्हें इस कार्य के लिये सभी प्रकार की सुविधायें प्रदान की जायें। षष्ठम्, जो बालिकायें अध्यापन-वृत्ति को अङ्गीकार करना चाहती हैं, उन्हें शिक्षा प्राप्त करने के लिये आर्थिक सहायता दी जाय। सप्तम्, महिलाओं के लिये प्रशिक्षण विद्यालयों की स्थापना की जाय, जिनमें उन्हें निःशुल्क शिक्षा के साथ शिक्षा-वृत्ति भी प्रदान की जाय। अन्तिम, महिलाओं के लिये अल्प-सामयिक प्रशिक्षण पाठ्य-क्रमों एवं अभिनवन पाठ्य-क्रमों (Short-term training courses and refresher courses) की व्यवस्था की जाय।

उपर्युक्त समस्त विधियों द्वारा बालिका-विद्यालयों में अध्यापिकाओं की वांछित संख्या की पूर्ति की जा सकती है।

## ४. पाठ्यक्रम में परिवर्तन

स्त्री-शिक्षा का प्रसार केवल अध्यापिकाओं की पूर्ति से नहीं हो जायगा, अपितु बालिकाओं के शिक्षा पाठ्य-क्रम में भी परिवर्तन करना होगा। इस समय यद्यपि बालिकाओं को कतिपय वैकल्पिक विषयों का निर्वाचन करने की सुविधा उपलब्ध है, परन्तु उनके लिये वही पाठ्य-क्रम है, जो बालकों के लिये है। दूसरे शब्दों में, बालिकाओं के लिये ऐसी कोई विशेष व्यवस्था नहीं है, जिससे वे बालकों के पाठ्य-क्रम से विभिन्न पाठ्य-क्रम से लाभान्वित हो सकें। परिणामस्वरूप बालिकाओं की शिक्षा में भी वही दोष प्रकट होने लगे हैं, जो बालकों की शिक्षा में हैं। इनमें से एक प्रमुख दोष बेरोजगारी के रूप में व्यक्त

हो रहा है। जब बेरोजगारी पुरुषों के लिये इतनी हानिकारक है, तो यह स्त्रियों के लिये कितनी हो सकती है, इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।[1] अतः यह आवश्यक है कि सरकार बालिकाओं के पाठ्य-क्रम पर अपने ध्यान को केन्द्रित करे और उनके लिये एक पृथक् पाठ्य-क्रम निर्धारित करे।

इस पाठ्य-क्रम को देश की सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक परिस्थितियों को ध्यान में रखकर निर्धारित किया जाना चाहिये। यदि स्त्री-शिक्षा इन परिस्थितियों के अनुकूल नहीं होगी, तो उसका उद्देश्य-विहीन हो जाना अवश्यम्भावी है। भारत की सामाजिक तथा सांस्कृतिक परम्पराओं के अनुसार स्त्री-शिक्षा का उद्देश्य रोजगार प्राप्ति नहीं है। इसके विपरीत स्त्री-शिक्षा का प्रमुख ध्येय हमारे देश में नहीं अपितु समस्त देशों में स्त्री को माता के रूप में पुरुष के चरित्र का निर्माण करने की शिक्षा प्रदान करना है। महान् सेनानायक नेपोलियन (Napoleon) का कथन है : "बालक का भावी भविष्य सदैव उसकी माता के द्वारा निर्मित किया जाता है।"[2] राष्ट्रपति लिंकन (Lincoln) ने स्वीकार किया है . "मैं जो कुछ भी हूँ और जो कुछ होने की आशा करता हूँ, उसके लिये मैं अपनी माता का कृतज्ञ हूँ।"[3] प्रायः ऐसे ही विचार हमारे राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद ने कन्या महाविद्यालय, जलन्धर, के समावर्तन समारोह के अवसर पर १९५२ में व्यक्त किये थे : "प्रकृति और ईश्वर ने मानव-जाति को स्थिर बनाए रखने का भार स्त्री पर रखा है और ... का सृजन पुरुष नहीं, अपितु स्त्रियाँ ही कर सकती हैं। इस गौरवपूर्ण ... विशिष्ट अधिकार को स्त्रियों और समाज को समझ लेना चाहिये और चाहे ... की शिक्षा-पद्धति हो उसमें इसकी गरिमा या अनिवार्यता को ध्यान में रखना ... है। यह आवश्यक नहीं है कि स्त्री और पुरुष दोनों सभी काम करें"।

[1] "Practically, there is no special provision for teaching the ... girls anything outside the boy's curriculum. The result ... that some of the objectionable features of boys' education are slowly developing in the education of girls ... Unemployment among men is bad enough; ... employment among women will be terrible."—S. N. ... Education in India, Today and Tomorrow, ... 247-248.

[2] "The future destiny of the child is always the work of ... mother."

[3] "What I am and hope to be, I owe to my mother.

प्रकृति ने ऐसी व्यवस्था नहीं की। इसलिये उन्हें अपने सबसे बड़े उत्तरदायित्व 'मानवमात्र के सृजन' को सबसे पहिले सभालना चाहिये। यह सृजन का काम सन्तानोत्पत्ति के साथ समाप्त नहीं होता। यह तो जब तक स्त्री जीती-जागती रहती है, मनुष्य को उन्नत बनाने मे चलता ही रहता है। हमको महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व का पालन करने के लिये विद्यालयों मे लड़कियों को सुशिक्षित करके अपने देश के सर्वाङ्गीण विकास मे उचित रीति से सहायक सिद्ध होना चाहिये।"[1]

उपरिलिखित समस्त विचारो से यह सिद्ध हो जाता है कि बालिकाओं के लिये बालको से पृथक् पाठ्य-क्रम होना अति आवश्यक है। प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर तो बालिकाओं के लिये वही पाठ्य-क्रम हो सकता है, जो बालकों के लिये है, परन्तु माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा के स्तरो पर उसमें आवश्यक रूप से परिवर्तन कर देना चाहिये। माध्यमिक स्तर पर भोजन शास्त्र, धुलाई, सिलाई-कटाई, गृह-विज्ञान, शिशु-संरक्षण आदि विषयो की विशेष रूप से शिक्षा दी जानी चाहिये और उच्च शिक्षा के स्तर पर कला का इतिहास, चित्रकारी, संगीत, गृह अर्थशास्त्र, मातृत्व-कला (Mother Craft), गृह-प्रबन्ध (Household Management) और गृह परिचर्या (Home Nursing) आदि विषयों का समावेश किया जाना चाहिये।

माध्यमिक शिक्षा-आयोग ने गृह-विज्ञान की शिक्षा पर बल देते हुए और उसकी उपादेयता का वर्णन करते हुए लिखा है : "यदि गृह-विज्ञान पर अधिक ध्यान दिया जाय, और प्रतिदिन की आवश्यकताओं तथा समस्याओं पर विशेष बल दिया जाय, तो इससे विद्यालय तथा गृह के जीवन और समाज में जो अन्तर है उसको समाप्त करने में सहायता प्राप्त होगी, और इससे विद्यालय के उपरान्त के बालिका-जीवन के लिये अधिक उत्तम तैयारी की जा सकेगी, जिसमे गृह-प्रबन्ध का विशेष रूप से महत्वपूर्ण स्थान होगा। एक शिक्षित बालिका जो अपने साधनों के अन्तर्गत अपने गृह का सुचारू रूप से तथा कुशलता पूर्वक प्रबन्ध नहीं कर सकती है, वह अपने परिवार के सुख तथा समृद्धि में अथवा अपने देश के सामाजिक स्तरणों को ऊँचा उठाने मे उपयुक्त योग नहीं प्रदान कर सकती है।"[2]

---

1. राजेन्द्रप्रसाद ; संकलित "भारतीय-शिक्षा" पृष्ठ ६०-६१
2. "If greater attention is given to Home Science, with special emphasis on practical work of every day needs and problems, it will help to bridge the gulf between the school and the life of the home, and the community, and be a

यदि हमारी सरकार उपरोक्त विचार बिन्दुओं को ध्यान में रखकर स्त्री-शिक्षा के पाठ्य-क्रम का संगठन करे, तो इससे सम्बन्धित समस्या का समाधान निश्चय रूप से सम्भव हो सकता है।

## ५. शिक्षा-प्रशासन में सुधार

हम इस बात का उल्लेख कर चुके हैं कि स्त्री-शिक्षा का प्रशासन स्त्रियों द्वारा न किये जाने के कारण दोष-पूर्ण है और इसके फलस्वरूप स्त्री-शिक्षा मे होने वाला अपव्यय रोकना सम्भव नहीं प्रतीत होता है। अतः यह आवश्यक है कि स्त्री-शिक्षा के प्रशासन का सूत्र पुरुषों को न दिया जाकर स्त्रियों को दिया जाय। इस दृष्टिकोण को ध्यान मे रखकर यह अनिवार्य हो जाता है कि सरकार प्रत्येक राज्य मे एक शिक्षा-उपसंचालिका तथा उसकी अधीनता मे विद्यालय-निरीक्षिकाओं की नियुक्ति करे। इन्ही महिलाओं के द्वारा बालिका-विद्यालयो का निरीक्षण किया जाय और बालिकाओं की शिक्षा-नीति का निर्धारण किया जाय। स्त्रियाँ होने के नाते वे स्त्रियो की समस्याओ को सरलतापूर्वक समझ सकेंगी और उनके समाधान के उपायों को भी सहज ही खोज सकेंगी। अतः स्त्री-शिक्षा द्रुत गति से अपने उन्नति के पथ पर अग्रसर हो सकेगी।

## ६. वयस्क-शिक्षा की व्यवस्था

वयस्क शिक्षा के जिन कार्य-क्रमों का सरकार द्वारा कार्यान्वित किया जा रहा है, उनमे वयस्क स्त्रियों की शिक्षा को प्रमुख स्थान प्रदान किया जाना चाहिये। इस समय केवल २८·८ प्रतिशत भारतीय स्त्रियाँ शिक्षित हैं।[1] इनमें अधिकांश स्त्रियाँ नगरों में निवास करती हैं। ग्रामों में शिक्षित स्त्रियों का प्रतिशत अत्यधिक न्यून है। अतः सरकार को ग्रामीण स्त्रियों की शिक्षा पर ...ना ध्यान एकाग्र करके उनको शीघ्रातिशीघ्र शिक्षित बनाने का प्रयास ...ना चाहिये। जब वयस्क स्त्रियाँ स्वयं शिक्षित हो जायेंगी तभी वे शिक्षा के

---

...better preparation for a girl's life after school, in which home-making will necessarily play an important part. An educated girl who cannot run her home smoothly and ...ficiently, within her resources can make no worthwhile contribution to the happiness and the well-being of her ...mily or to raising the social standards in her country." *...port of the Secondary Education Commission*, p. 58.

...*ndustan Year Book*, 1960, p. 385.

सांस्कृतिक एवं सामाजिक महत्व को हृदयंगम कर सकेंगी और तभी वे अपनी कन्याओं को शिक्षित करने की दिशा में प्रयत्नशील हो सकेंगी।

### ७. पथ प्रदर्शन की व्यवस्था

बालिकाओं को शिक्षा के सम्बन्ध में किसी प्रकार का पथ-प्रदर्शन उपलब्ध नहीं है। वे यह नहीं जानती हैं कि उनके लिये किस प्रकार की शिक्षा उपयोगी सिद्ध हो सकती है। अतः वे अपनी तथा अपने माता पिता की इच्छानुसार किसी भी पाठ्य-क्रम का अनुसरण करती रहती हैं। जब उन्हें पर्याप्त ज्ञान तथा अनुभव प्राप्त हो जाता है, तब उन्हें आभास होता है कि उनके द्वारा चयन किया गया पाठ्य-क्रम सर्वथा त्रुटिपूर्ण है, परन्तु उस समय उन्हें इतना विलम्ब हो जाता है कि वे न तो पीछे हट सकती हैं और न शिक्षा के किसी अन्य पाठ्य-क्रम का अनुसरण कर सकती हैं। ऐसी स्थिति में उन्हें प्रायः निराशा का ही आलिंगन करना पड़ता है। बालिकाओं को इस संकटपूर्ण स्थिति से मुक्त करने का एक-मात्र उपाय यही है कि सरकार द्वारा प्रत्येक बालिका-विद्यालय अथवा बालिका-विद्यालयों के एक समूह में शिक्षित एवं अनुभवी व्यक्तियों की नियुक्ति की जाय, जिनके ऊपर बालिकाओं का उचित पथ-प्रदर्शन करने का भार रखा जाय।

### ८. आर्थिक सहायता

सरकार का अन्तिम तथा प्रमुख कर्त्तव्य यह है कि वह अपने विकास के कार्य-क्रमों में स्त्री-शिक्षा को प्रमुख स्थान प्रदान करे और स्त्री-शिक्षा के प्रसार के लिये अधिक से अधिक धन व्यय करने का दृढ़ संकल्प करे। ऐसी स्थिति में ही अशिक्षित स्त्रियों तथा बालिकाओं का कल्याण हो सकेगा और वे शिक्षा ग्रहण करके देश की सामाजिक संरचना में अपना उपयुक्त स्थान ग्रहण कर सकेंगी। स्त्री शिक्षा की राष्ट्रीय समिति ( National Committee of *Women's Education*) ने इस बात को स्वीकार किया है कि सरकार द्वारा स्त्री-शिक्षा पर अधिक धन व्यय किया जाना चाहिये। अतः समिति ने सिफ़ारिश की है कि तृतीय पंच-वर्षीय योजना में स्त्री-शिक्षा पर व्यय की जाने वाली धन-राशि १०० करोड़ रुपए से कदापि कम न हो।[1]

---

1. "The Committee recommended that a sum of not less than Rs. 100 crores should be allocated for that purpose during the period 1961 - 66"—*Times of India*, July 12,1959.

## जनता के कर्त्तव्य

स्त्री-शिक्षा की समस्याओं के समाधान एवं प्रसार के प्रति सरकार के कर्त्तव्य एवं उत्तरदायित्व तो हैं ही, पर उनसे भी अधिक जनता के हैं। सरकार की योजनाएं कितनी ही सुन्दर क्यों न हों, उनका निर्माण एवं कार्यान्वित कितना ही कुशल तथा विचारपूर्ण क्यों न हो, पर यदि उनको जनता का सहयोग नहीं प्राप्त होगा, तो उनकी सफलता की आशा करना उसी प्रकार व्यर्थ होगा जिस पर एकाकी प्रयास एवं परिश्रम से एक विशाल मरुस्थल को लहलहाते उद्यान मे परिणत करने की आशा। अतः जनता का कर्त्तव्य है कि वह न केवल स्त्री-शिक्षा-प्रसार की सरकारी योजनाओं को पूर्ण एवं हार्दिक सहयोग प्रदान करे, अपितु भारतीय शिक्षा के इस अवयव को, जिसे अभी तक अधूरा एवं उपेक्षित छोड़ दिया गया है, पुष्ट करने की स्वयं भी प्राणप्रण से चेष्टा करे।

भारत में नारी जाति शताब्दियों से पुरुष द्वारा उपेक्षित रही है। महात्मा [गां]धी के इस कथन में पूर्ण सत्य है : "किसी न किसी प्रकार पुरुष युगों से [ना]री पर शासन करता आ रहा है और इसलिए नारी ने निम्न होने की भावना [वि]कसित करली है। उसने पुरुष की इस स्वार्थपूर्ण शिक्षा में विश्वास कर [लि]या है कि वह उससे निम्नतर है।"[1] पुरुष वर्ग ने उसे उसके श्रेष्ठ पद से ... गिराकर अति महान् दुष्कर्म किया है जिसका परिणाम आज देश को ...ना पड़ रहा है। जिस देश की नारी परतन्त्र है, वह देश मृत हो जाता ... [ना]री राष्ट्र की प्रगति की सूत्रधार है, वह उसकी सचालिका है और यदि ...[पर]वश हुई तो राष्ट्र किस बल पर प्रगति करेगा। "एक फ्रांसीसी ने एक ...[लि]खा कि एक राष्ट्र की स्थिति का उचित ज्ञान प्राप्त करने का सर्वोत्तम ...[उ]स राष्ट्र की स्त्रियों की स्थिति का ज्ञान प्राप्त करना है। मेरे विचारा... ठीक है। अतीत में अनेकों श्रेष्ठ उदाहरणों के बावजूद भी, मेरा ... कि यह कहना सत्य होगा कि सहस्रों वर्षों से भारत में स्त्रियों का ... स्थिति उत्तम नहीं रही है।"[2] इसका उत्तरदायित्व पुरुष-वर्ग पर

---

...chow or other man has dominated woman for ages ...nd so woman has developed an inefriority complex. ...s believed in the truth of man's interested teaching ...e is inferior to him."—*Harijan* of 25th February,

...chman once wrote that the best way to judge the ...of a nation was to find out the status of its wo... ...think this is correct. In spite of many brilliant

है। उसने स्त्री को उसके श्रेष्ठ पद से च्युत करके और उसको अपमानजनक स्थान प्रदान करने में ही अपने कर्त्तव्यों की इति समझी है।

यदि पुरुष-वर्ग अपने राष्ट्र की प्रगति चाहता है, उसका उन्नयन करना चाहता है, तो उसे नारी को उसका सम्मानजनक स्थान पुनः प्रदान करना पड़ेगा और उसकी शिक्षा-दीक्षा की समुचित व्यवस्था करनी होगी। इस समय जब कि विश्व के सभी देश प्रगति के पथ पर अग्रणी बनने की प्राण-प्रण से चेष्टा कर रहे हैं, तब हमारे देश की जनता को स्त्री-शिक्षा का विरोध करके समय नष्ट नहीं करना चाहिये। जनता का यह परम पुनीत कर्त्तव्य है कि वह इसी क्षण से स्त्री-शिक्षा के आन्दोलन में जुट जाय और उसमें स्फूर्ति का संचार कर दे। परन्तु जनता इस कार्य को सफलता पूर्वक तभी सम्पन्न कर सकेगी, जब वह पुरानी परिपाटियों का आँख मूँद कर अनुसरण करना समाप्त कर दे। उसे स्त्री-शिक्षा के प्रति चिर-काल से विरासत में प्राप्त होने वाले अपने संकुचित दृष्टिकोण को पूर्णतया परिवर्तित कर देना चाहिये। उसे अपनी रूढ़िवादिता, धार्मिक कट्टरता तथा बालिकाओं की शिक्षा एवं विवाह की अनुचित धारणा को समूल उखाड़ फेंकना चाहिये। उसे यह समझ लेना चाहिये कि बालिकाओं की शिक्षा का भार उसी के कंधों पर है। उसे अपने मानस-पटल पर यह बात स्पष्ट शब्दों में अंकित कर लेनी चाहिये कि प्रजातंत्र की मांग और उसकी चुनौती को स्वीकार करने के लिये स्त्रियों को कम से कम सम्भव समय में शिक्षित कर देना चाहिये।

स्वतंत्र भारत में स्त्रियों को पुरुषों के समान सभी अधिकार प्राप्त हो गये हैं। आज राष्ट्र को सफल बनाने के लिये उनके ऊपर उतना ही दायित्व है जितना कि पुरुषों पर। इस बात को ध्यान में रख कर जनता को स्त्री-शिक्षा के प्रति एक नवीन दृष्टिकोण विकसित करना चाहिये जिससे कि सरकार द्वारा स्त्री-शिक्षा के विस्तार के लिये किये जाने वाले प्रयासों पर कुठाराघात न हो। उसे स्त्री-शिक्षा के प्रति अपनी उदासीनता एवं विरक्तता को परित्यक्त कर देना चाहिये। उसे अपनी रूढ़िवादिता, धार्मिक संकीर्णता एवं कट्टरता से उन्मुक्त होकर शिक्षा के द्वारा नारी का परित्राण करने का बीड़ा उठा लेना चाहिये। उसे यह बात गाँठ बाँध लेनी चाहिये कि वह युग जब नारी को घरों की दीवारों

examples in the past, I think it would be true to say that the position and status of women in India for hundreds of years has not been a good one."—Jawahar Lal Nehru's Foreword in *Women of India*, edited by Tara Ali Baig, p. vii.

के अन्दर आजीवन बन्दी रखा जाता था, अब व्यतीत हो चुका है। उसे यह बात समझ लेनी चाहिये कि परिवर्तन ही नियति का नियम है और प्राचीन परम्पराएं सदैव परिवर्तित होकर नवीन परम्पराओं को स्थान देती हैं। आधुनिक भारत की परिवर्तित परिस्थितियों में उसे यह बात अपने ध्यान में रखनी चाहिये कि भारतीय नारियों के निर्बल कन्धों पर जो भार आ पड़ा है, उसको वे शिक्षा के अभाव में वहन नहीं कर सकती हैं। सारांश में यह आवश्यक है कि जनता सरकार की उन समस्त योजनाओं में तन, मन, धन से योग दे, जिन्हें सरकार स्त्री-शिक्षा की प्रगति के लिये कार्यान्वित कर रही है। जिन व्यक्तियों पर कुबेर की कृपा है, उन्हें उदार हृदय से स्त्री-शिक्षा का प्रसार करने के लिये धन द्वारा सहायता करनी चाहिये। जो व्यक्ति इस स्थिति में नहीं हैं, उन्हें अन्य प्रकार से स्त्री-शिक्षा की लोकप्रियता में वृद्धि करने का अनवरत प्रयास करना चाहिये। यदि भारत की सम्पूर्ण जनता स्त्री-शिक्षा के आन्दोलन में संलग्न हो जाय, तो हम निस्संकोच कह सकते हैं कि अल्प समय में ही देश का कोना-कोना स्त्री-शिक्षा से आलोकित हो जायगा।

## स्त्रियों के कर्त्तव्य

यह तथ्य अकाट्य है कि स्त्री-शिक्षा के प्रसार का उत्तरदायित्व सरकार एवं जनता पर है, परन्तु यह तथ्य भी निर्विवाद है कि जितना उत्तरदायित्व इन दोनों पर है उससे अनेकों गुना अधिक स्वयं स्त्रियों पर है। स्वतंत्र भारत के संविधान ने स्त्रियों को [illegible] का अन्त कर दिया है। प्रगतिशील विचार वाला पुरुष-वर्ग उनके साथ है। यही कारण है कि बीसवीं शताब्दी में सभी क्रान्तियों के मध्य शताब्दियों से पीड़ित नारी ने एक जबरदस्त अंगड़ाई ली है और उसकी दासता की बेड़ियों के जोड़ चटक-चटक कर टूट रहे हैं। घर की चहार-दीवारी के अन्दर घुट-घुट कर जीने वाली अशिक्षित घूँघट की गुड़िया अब शिक्षित महिला के रूप में बाहर [illegible] है। आज की शिक्षित नारी, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष से होड़ ले रही है। राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक—सभी क्षेत्रों में वह [illegible] रही है और [illegible] पुरुष का [illegible] कर लिया है। [illegible] पुरुष के [illegible] नारी का [illegible] नहीं [illegible] सकता। [illegible] इस [illegible] को [illegible] कर सकते हैं : [illegible] है कि [illegible] की [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] है कि स्त्री का

गृह का परित्याग करने के लिये और गृह की रक्षा करने के लिये, बन्दूक का प्रयोग करने के लिये कहा अथवा प्रलोभित किया जाय। यह पुनः बर्बरता को प्राप्त करना और सभ्यता के अन्त का प्रथम चिन्ह होगा। उस अश्व पर आरूढ़ होने का प्रयास करके जिस पर पुरुष आरोहण करता है, वह स्वयं अपना और उसका भी पतन करेगी।"[1]

राष्ट्रपिता के इन शब्दों में अनन्त सत्य की झलक मिलती है। पुरुषों को तो इन शब्दों का मनन करना ही चाहिये, परन्तु स्त्रियों को उनसे भी अधिक करना चाहिये क्योंकि स्त्रियों की जिस शिक्षा की ओर महात्मा गांधी ने संकेत किया है, उसी के अनुसार स्त्री-शिक्षा की रूप-रेखा का निर्माण करके स्त्रियों और उनके साथ पुरुषों के परित्राण की आशा की जा सकती है। पुरुषों द्वारा प्रदर्शित शिक्षा के पथ पर अग्रसर न होकर स्वयं स्त्रियों को अपने लिये उचित एवं वाञ्छित शिक्षा की व्यवस्था की मांग करनी चाहिये। अतः यह आवश्यक है कि उन्हें पाश्चात्य शिक्षा की कट्टर उपासिका न बनकर भारतीय आदर्शों एवं संस्कृति पर आधारित शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। उन्हें यह समझ लेना चाहिये कि पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाववश आधुनिक शिक्षित नारी पर्याप्त उच्छृङ्खल हो गई है। उन्हें यह समझने में भूल नहीं करनी चाहिये कि आज की शिक्षित नारी पाश्चात्य स्त्री-जाति का अन्धानुकरण कर अपने आदर्शों को सर्वथा विस्मृत कर चुकी है। पुरुष के साथ प्रतिस्पर्द्धा करने में उसने अपने जीवन की सबसे पवित्र थाती 'नारीत्व' तक को तिलाञ्जलि दे दी है। आज कृत्रिम साधनों से अपने को सब प्रकार से सजाये-सँवारे कामिनी या मोहिनी बनकर पुरुष को रिझाने की, और उसके लिये रंग-बिरंगे वस्त्रों व आभूषणों से सुशोभित होने की दुर्बलता उसे घुन के समान खा रही है। यदि स्त्रियों ने पाश्चात्य शिक्षा, सभ्यता तथा संस्कृति के आवरण को दूर फेंककर अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन नहीं किया, तो उन्हें पुरुषों के विरुद्ध क्रान्ति करके

1. "Whilst both are fundamentally one, it is also equally true that in the form there is a vital difference between the two. Hence the vocations of the two must also be different. In my opinion it is degrading both for man and woman that woman should be called upon or induced to forsake the hearth and shoulder the rifle for the protection of that hearth. It is a reversion to barbarity and the beginning of the end. In trying to ride the horse that man rides, she brings herself and him down."-*Harijan* of 25th February, 1940.

स्वतंत्र स्थिति पर पहुँच कर जो गुणवत्ता प्राप्त हुआ है, वह स्थायी रूप न धारण कर सकता।

सारांश यह है कि भारतीय स्त्रियों को शिक्षा के प्रति अपने दृष्टिकोण को पूर्णतया परिवर्तित करना चाहिये। उन्हें एक स्वस्थ मार्ग की ओर मुड़ना चाहिए और पाश्चात्य शिक्षा का अन्धानुकरण अपना ध्येय नहीं बनाना चाहिये। म्यूरियल वासी ( Muriel Wasi ) के इन शब्दों में पूर्ण सत्य है : "स्त्रियों के निश्चय, दृढ़ता, सद्विवेक एवं कार्य-कुशलता पर ही भारत में उनकी शिक्षा का भविष्य निर्भर है।"[1]

## सारांश

**हिन्दू-युग में स्त्री-शिक्षा**— इस बात का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने के लिये उपयुक्त साधन उपलब्ध नहीं है कि प्राचीन भारत में स्त्री-शिक्षा का कित प्रसार था। उस युग की जिन शिक्षित महिलाओं के उदाहरण हमें प्रा होते हैं, उन्हें सम्भवतः अपने पतियों अथवा पिताओं द्वारा शिक्षा दं गई थी।

**मुस्लिम-युग में स्त्री-शिक्षा**—मुस्लिम-युग में पर्दा एवं बाल-विवाह की प्रथाओं के कारण जन-साधारण की बालिकाओं में शिक्षा का प्रचार न हो सका। मुस्लिम राजकुमारियों को अवश्य व्यक्तिगत रूप से शिक्षा प्राप्त करने की सुविधा थी।

**आधुनिक युग में स्त्री-शिक्षा**—कम्पनी के अधिकारियों ने स्त्री-शिक्षा के प्रति रंचमात्र भी ध्यान नहीं दिया। इस युग में स्त्री-शिक्षा का आन्दोलन प्रारम्भ करने का श्रेय मिशनरियों को प्राप्त है। उन्होंने ३७१ बालिका-विद्यालय स्थापित किये। कम्पनी के शासन-काल में सरकार ने स्त्रियों के लिये प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा तथा प्रशिक्षण की पर्याप्त सुविधायें प्रदान कीं। १८५८ से १८८२ तक ब्रिटिश अवश्य हुई, परन्तु उसकी गति मन्थर थी। १८८२ से १९०२ तक स्त्री-शिक्षा की प्रगति तो के प्रत्येक स्तर पर प्रगति हुई। १९०२ से १९२१ तक स्त्री-शिक्षा लयों की स्थापना हुई। इस काल में कतिपय विशिष्ट महिला-विद्या- १९२१ से १९३७ तक राष्ट्रीय आन्दोलन के

1. "Upon their determination, compactness, good sense and efficiency rests the future of education of women in I ia."—Tara Ali Baig, ed. *Women of India*, p. 160.

फलस्वरूप स्त्री-शिक्षा का बहुमुखी विकास हुआ। इस युग में सह-शिक्षा के प्रति किसी प्रकार का विरोध न रहा। १६३७ से १६४७ तक उच्च शिक्षा की विशेष रूप से प्रगति हुई। १६४७ से १६६० तक स्त्री-शिक्षा का श्लाघनीय विकास हुआ है। परन्तु बालकों की संख्या के अनुपात में बालिकाओं की संख्या बहुत कम है।

**स्त्री-शिक्षा की समस्यायें**—स्त्री-शिक्षा की प्रमुख समस्यायें अग्रलिखित हैं :—(१) रूढ़िवादिता, (२) अशिक्षा, (३) धार्मिक कट्टरता, (४) शिक्षा की अनुचित धारणा, (५) विवाह की अनुचित धारणा, (६) बाल-विवाह एवं पर्दा-प्रथा, (७) ग्रामीण क्षेत्रों की अविकसित दशा, (८) सरकार की उदासीनता, (६) जनता की निर्धनता, (१०) बालिका विद्यालयों का अभाव, (११) शिक्षा में अपव्यय, (१२) अध्यापिकाओं का अभाव, (१३) दोष-पूर्ण शिक्षा-प्रशासन, एवं (१४) अनुपयुक्त पाठ्यक्रम।

**समस्याओं का समाधान**—समस्याओं के समाधान में तीन तत्व सहायक हो सकते हैं—सरकार, जनता तथा स्त्रियाँ।

**सरकार के कर्त्तव्य**—सरकार के कर्त्तव्य अग्रलिखित हैं :—(१) ग्रामीण जनता का उत्थान, (२) बालिका-विद्यालयों की व्यवस्था, (३) अध्यापिकाओं की पूर्ति, (४) पाठ्य-क्रम में परिवर्तन, (५) शिक्षा-प्रशासन में सुधार, (६) वयस्क शिक्षा की व्यवस्था, (७) पथ-प्रदर्शन की व्यवस्था, एवं (८) आर्थिक सहायता।

**जनता के कर्त्तव्य**—जनता के कर्त्तव्य अग्रलिखित हैं :—स्त्री-शिक्षा के सरकारी कार्य-क्रमों में योग देना; स्त्री-शिक्षा का विरोध न करना; पुरानी परिपाटियों का अनुसरण न करना; संकुचित दृष्टिकोण को परिवर्तित करना; रूढ़िवादिता, धार्मिक कट्टरता तथा बाल-विवाह का अन्त करना; एवं धन द्वारा सहायता करना।

**स्त्रियों के कर्त्तव्य**—स्त्रियों के कर्त्तव्य इस प्रकार हैं :—शिक्षा के प्रति अपना दृष्टिकोण परिवर्तित करना, पाश्चात्य शिक्षा का अन्धानुकरण न करना तथा भारतीय संस्कृति एवं आदर्शों के अनुकूल शिक्षा की माँग करना।

## सहायक पुस्तकों की सूची

1. L. Mukherjee : *Problems of Administration of Education in India.*
2. M. A. Sherring : *The History of Protestant Missions.*
3. S. N. Mukerjee : *Education in India, Today and Tomorrow.*

4. Tara Ali Beg, ed *Women of India.*
5. *Indian Education Commission Report.*
6. *Report of the Secondary Education Commission.*
7. *Seven Years of Freedom.*
8. *Education in India*, 1935-36.
9. *Education in India*, 1955-56.
10. *Constitution of Free India.*
11. *Hindustan Year Book*, 1960.
12. *Adam's Report.*
१३. राजेन्द्र प्रसाद : संकलित "भारतीय-शिक्षा"
१४. रामबिहारीसिंह तोमर : "भारतीय सामाजिक संस्थायें"
१५. द्वितीय पंचवर्षीय योजना
१६. भारत, १९६०

## TEST QUESTIONS

1. Give a bird's eye-view of women's education during the Hindu and Muslim periods.
2. Trace in brief the development of women's education during the twentieth century.
3. Enumerate the causes of the backwardness of women's education in India. What measures should the Government and the people take to remove these causes ?
4. What are the major problems of women's education in India ? Give your suggestions for solving them ?
5. Mention the difficulties that have been experienced in the expansion af women's education. What measures, in your opinion, should be adopted to overcome them ?

अध्याय ४

# समाज-शिक्षा ✓

## राष्ट्रीय जीवन में समाज-शिक्षा का स्थान

के० जी० सैयदेन ने लिखा है : "हम राष्ट्रीय जीवन के एक ऐसे नवीन युग में प्रवेश कर रहे हैं जो सम्भवतः आगामी अनेकों शताब्दियों के लिये हमारे देश की भावी व्यवस्था की रूप-रेखा निर्धारित कर देगा। हमारे राष्ट्रीय जीवन को विषाक्त करने वाले पारस्परिक संगीन झगड़ों की घनघोर घटायें भी विनाश की बदली के समान छंट जायेंगी और हम फिर न्याय तथा स्वतन्त्रता और समझदारी के प्रकाशमय वातावरण में पहुँच जायेंगे। यदि आप मुझे एक स्वतः स्पष्ट सत्य को दोहराने की अनुमति दें तो मैं कहूँगा कि केवल राजनीतिक स्वतन्त्रता किसी भी समाज या राष्ट्र के लिये 'उत्तम जीवन' ( Good Life ) का आश्वासन नहीं दे सकती है। हम भली प्रकार जानते हैं कि अनेकों राष्ट्र राजनीतिक दृष्टि से स्वतन्त्र होते हुए भी अन्य शृङ्खलाओं से आबद्ध हैं, जो उन्हें 'उत्तम जीवन' की ओर अग्रसर नहीं होने देती हैं, क्योंकि इस प्रकार का जीवन कठिन परिश्रम तथा समाजोपयोगी कार्य द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। वास्तव में जब तक जनता निरन्तर सतर्कता ( Eternal Vigilance ) के रूप में अपनी राजनीतिक स्वतन्त्रता का मूल्य चुकाने के लिये तैयार न हो, तब तक वह इस स्वतन्त्रता को भी सुरक्षित नहीं रख सकती है और इस सतर्कता के लिये उचित नागरिक तथा सामाजिक शिक्षा की आवश्यकता है। यदि हमारा लक्ष्य ऊँचा है और हम अपनी राजनीतिक स्वतन्त्रता के सहारे सामाजिक स्वतन्त्रता तथा आर्थिक लोकतन्त्र के लक्ष्य तक पहुँचना चाहते हैं, तो

स्पष्टतः हमें जनसाधारण के लिये कहीं अधिक उच्च-स्तर की शिक्षा की आवश्यकता होगी। नहीं तो सदैव इस बात का भय रहेगा कि चतुर परन्तु बेईमान दल अथवा व्यक्ति अपने निकृष्ट उद्देश्यों की पूर्ति के लिये तथाकथित "स्वतन्त्रता" का अनुचित लाभ उठावेंगे। इसी बात को मैं तत्काल तथा बड़े पैमाने पर प्रौढ़-शिक्षा (Adult Education) का आन्दोलन प्रारम्भ करने के राजनीतिक औचित्य का आधार कहूँगा।"[१]

इन शब्दों में शिक्षा-महारथी सैयदैन ने राष्ट्रीय जीवन में समाज-शिक्षा के स्थान तथा महत्व को अंकित किया है। उन्होंने राजनीतिक स्वतन्त्रता की सुरक्षा के लिये 'निरन्तर सतर्कता' की और सामाजिक तथा आर्थिक लोकतन्त्र के लक्ष्य तक पहुँचने के लिये जनसाधारण की उच्च शिक्षा को आवश्यक शर्तें बताया है एवं इन शर्तों को पूर्ण करने के लिये प्रौढ़-शिक्षा के आन्दोलन पर बल दिया है। भारत में प्रौढ़-शिक्षा का यह आन्दोलन किस प्रकार किया जा रहा है, इस आन्दोलन की सफलता की कितनी आशा है, इन सफलताओं के मार्ग में कौन-सी कठिनाई हैं, इन कठिनाइयों को किस प्रकार दूर किया जा सकता है—इन्हीं तथा इनसे सम्बन्धित बातों पर विचार करना ही प्रस्तुत पाठ की विषय-सामग्री है। परन्तु इस सामग्री के प्रस्तुतिकरण से पूर्व 'प्रौढ़-शिक्षा' तथा 'समाज-शिक्षा' शब्दों के अर्थ का स्पष्टीकरण करना अधिक युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

## प्रौढ़-शिक्षा का अर्थ एवं परिभाषा

'प्रौढ़-शिक्षा' के अर्थ की विभिन्न प्रकार से व्याख्या की गई है। जैसा कि 'प्रौढ़-शिक्षा' शब्द से व्यक्त होता है, इसका अर्थ है निरक्षर प्रौढ़ों को पढ़ना सिखाना अर्थात् कुछ लिखित चिह्नों को उनकी ध्वनि तथा अर्थ के रूप में पहिचानना सिखाना। परन्तु वास्तविकता में 'प्रौढ़-शिक्षा' का अर्थ इससे कहीं अधिक व्यापक है। इसको स्पष्ट करते हुए एस० एन० मुकर्जी ने लिखा है: "प्रौढ़-शिक्षा में मोटे तौर पर वह सभी औपचारिक तथा अनौपचारिक शिक्षा सम्मिलित है जो प्रौढ़ों को दी जाती है। भारत में प्रौढ़-शिक्षा के दो पहलू हैं: (१) प्रौढ़ साक्षरता, अर्थात् उन प्रौढ़ों की शिक्षा जिनको विद्यालयों में कभी भी किसी प्रकार की शिक्षा प्राप्त नहीं हुई है, और (२) साक्षर प्रौढ़ों की अनवरत

---

1. K. G. Saiyidain : *Problems of Educational Reconstruction*, pp. 206-207.

शिक्षा।"[1] सैयदैन के मतानुसार : "प्रौढ़-शिक्षा में राजनीतिक और नागरिक तथा नैतिक शिक्षायें भी सम्मिलित हैं।"[2]

## प्रौढ़-शिक्षा की नवीन धारणा

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बहुत समय पूर्व ही भारत में प्रौढ़-शिक्षा का आन्दोलन प्रारम्भ हो चुका था। परन्तु स्वतन्त्रता प्राप्त होने के उपरान्त देश के नेताओं ने राष्ट्रीय जीवन में प्रौढ़-शिक्षा के महत्व को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया। उन्हें यह पूर्ण रूप से आभास हो गया कि यदि इस महान् तथा प्राचीन देश को जीवित रहना है, तो इस देश के निरक्षर वयस्कों को केवल साक्षर ही नहीं बनाना है, अपितु उनका बौद्धिक, सांस्कृतिक, सामाजिक तथा नैतिक उत्थान भी करना है। इसी विचारधारा से अनुप्राणित होकर देश के राजनीतिक कर्णधारों ने प्रौढ़-शिक्षा को एक नवीन रूप प्रदान करके उसको अधिक व्यापक बनाया और उसको समाज-शिक्षा का नया जामा पहिनाया। जनवरी, १९४९ में इलाहाबाद में होने वाले 'केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड' (Central Advisory Board of Education) के पन्द्रहवें अधिवेशन में भाषण देते हुए मौलाना अबुल कलाम आज़ाद ने प्रौढ़-शिक्षा के प्रति भारत-सरकार के नवीन दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया। उन्होंने कहा कि प्रौढ़ शिक्षा का उद्देश्य केवल वयस्कों को साक्षर बनाने तक ही सीमित नहीं रहना चाहिये, अपितु इसके अन्तर्गत उस शिक्षा को भी समाविष्ट कर देना चाहिये जो भारत के प्रत्येक नागरिक को लोकतान्त्रिक व्यवस्था का विवेकपूर्ण सदस्य बना दे। उसी समय से प्रौढ़-शिक्षा की धारणा में परिवर्तन हुआ और उसे 'समाज-शिक्षा' के नाम से पुकारा जाने लगा।

---

1 "Adult education may be defined very broadly so as to include all instruction, formal or informal, imparted to adults. In India, adult education has two aspects: (1) Adult literacy, i. e. education of those adults who never had any schooling, and (2) continuation education of the literate."—S. N. Mukerji: *Education in India Today and Tomorrow*, pp. 344-45.

2. "Adult education ........includes political and civic as well as moral education,"—K. G. Saiyidain : *op. cit*, p. 243.

## प्रौढ़-शिक्षा तथा समाज-शिक्षा में अन्तर

प्रौढ़-शिक्षा तथा समाज-शिक्षा के अन्तर को इस प्रकार स्पष्ट किया सकता है : "प्रौढ़-शिक्षा की सङ्कल्पना में आज बहुत बड़ा परिवर्तन हो गय है । साक्षरता के अपने छोटे दायरे से निकल कर यह सामाजिक शिक्षा का व्यापक रूप ग्रहण कर चुकी है । पहिले उसका आयोजन केवल औपचारिक था और व्यक्ति को साक्षर बनाकर और उसके लिये थोड़ा-बहुत पढ़ने-लिखने का प्रबन्ध कर वह अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ लेती थी । अब उसका लक्ष्य प्रौढ़ों को इस प्रकार की शिक्षा देना हो गया है जिससे वे व्यक्ति के रूप में और समाज के एक अङ्ग के रूप में अपनी अभाव ग्रस्त दशा से ऊपर उठकर पहिले से अधिक सम्पन्न और प्रसन्न जीवन व्यतीत कर सकें ।"[1]

## समाज-शिक्षा का अर्थ एवं परिभाषा

समाज-शास्त्र के अर्थ को स्पष्ट करते हुए मौलाना अबुल कलाम आजाद ने इसकी परिभाषा इन शब्दों में की है : "समाज-शिक्षा से हमारा तात्पर्य है पूर्ण मानव की शिक्षा । यह उसको साक्षरता प्रदान करेगी जिससे कि विश्व का ज्ञान उसे उपलब्ध हो सके । यह उसको बतायेगी कि वह अपने आपका पर्या-वरण से अनुकूलन किस प्रकार करे और जिन प्राकृतिक दशाओं में वह निवास करता है, उनका सर्वोत्तम प्रयोग किस प्रकार करे । इसका अभिप्राय उसे उत्तम कला-कौशलों तथा उत्पादन की विधियों की शिक्षा देना है, जिससे कि वह अधिक उत्तम आर्थिक स्थिति को प्राप्त कर सके । इसका उद्देश्य उसे व्यक्ति तथा समाज दोनों के लिए स्वास्थ्य विज्ञान के प्राथमिक सिद्धान्तों की शिक्षा देना भी है, जिससे कि हमारा गृहस्थ जीवन स्वस्थ तथा समृद्ध हो सके । इस शिक्षा को उसे नागरिकता का पाठ पढ़ाना चाहिये जिससे कि उसे संसार की बातों का कुछ ज्ञान प्राप्त हो जाय और वह अपनी सरकार को उन निर्णयों के

---

1. बंशीधर श्रीवास्तव, प्रधानाचार्य, राजकीय जूनियर बेसिक ट्रेनिंग कॉलेज, इलाहाबाद, नवसाक्षरोपयोगी साहित्य निर्माण गोष्ठी की आख्या, १९५८ शिक्षा-विभाग, उत्तरप्रदेश, पृष्ठ ५४-५५

निर्माण में सहायता दे सके जो शान्ति तथा प्रगति में योग प्रदान करें।"[1]

समाज-शिक्षा की परिभाषा करते हुए हुमायूँ कबीर ने लिखा है: 'समाज शिक्षा को अध्ययन के एक प्रकार के पाठ्य-क्रम के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जिसका उद्देश्य व्यक्तियों में नागरिकता की चेतना का उदय और उनमें सामाजिक समेकय की उन्नति करता है। समाज-शिक्षा निरक्षर वयस्कों में साक्षरता का प्रसार करके संतुष्ट नहीं होती है, अपितु जन साधारण में शिक्षित मस्तिष्क के निर्माण को अपना लक्ष्य बनाती है। स्वाभाविक उपलक्ष्य के रूप में समाज-शिक्षा व्यक्तियों में व्यक्तिगत तथा समाज के सदस्यों के रूप में नागरिकता के अधिकारों तथा कर्त्तव्यों की तीव्र भावना का समावेश करने का प्रयास करती है।"[2]

---

1. "By Social Education we mean an education for the complete man. It will give him literacy so that knowledge of the world may become accessible to him It will teach him how to harmonise himself with his environment and make the best use of the physical condition in which he subsists. It is intended to teach him improved crafts and modes of productiun so that he can achieve economic betterment. It also aims at teaching him the rudiments of hygiene both for the individual and the community so that our domestic life may be healthy and prosperous. The last, but not the least, this education should give him training in citizenship so that he obtains some insight into the affairs of the world and can help his Government to tak decisions which will make for peace and progress."—Abul Kalam Azad's Inaugural Address to the UNESCO Seminar on Rural Adult Education held in December, 1949 in Mysore.
2. 'Social education may be defined as a course of study directed towards the production of consciousness of citizenship among the people and the promotion of social solidarity among them. It is not content with the introduction of literacy among the grown-up illiterates but aims at the production of an educated mind among the masses. As a natural corollary, it seeks to inculcate in them a lively sense of rights and duties of citizenship both as individuals and members of the community."
—Humayun Kabir: *Education in New India*, p. 82.

उपरिलिखित परिभाषाओं के आधार पर हम समाज-शिक्षा के अर्थ संक्षिप्त रूप में इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं। समाज-शिक्षा एक निर्दि अनुभव है जो व्यक्तियों को सामूहिक कार्यों में भाग लेने की क्षमता प्र करता है। समाज शिक्षा नागरिकता का उचित मूल्यांकन करने की चेतना ए भावना को जन्म देती है, व्यक्तियों के कर्तव्यों तथा अधिकारों का स्पष्टीकरण करती है और यह शिक्षा देती है कि वे अपने सीमित साधनों पर अवलम्बित होते हुए भी किस विधि का अनुसरण करके अपनी आय में वृद्धि कर सकते हैं।

## समाज-शिक्षा का कार्य-क्रम

भारत-सरकार द्वारा समाज-शिक्षा की नवीन धारणा के अन्तर्गत न केवल साक्षरता के महत्त्व को स्वीकार किया गया है, अपितु यह भी स्वीकार किया गया है कि वयस्क की विभिन्न अभिरुचियों को विकसित करने का प्रयास किया जाय। अतः सरकार ने समाज-शिक्षा के निम्नांकित 'पंचमुखी कार्य-क्रम' (Five Point Programme) का निर्माण किया है[२] :—

१. साक्षरता का प्रसार।
२. स्वास्थ्य तथा स्वास्थ्य विज्ञान के नियमों की शिक्षा।
३. वयस्कों की आर्थिक उन्नति के लिये उद्योग-धन्धों की शिक्षा।
४. वयस्कों में अधिकारों एवं कर्तव्यों के प्रति पर्याप्त जागरूकता के साथ-साथ नागरिकता की भावना का विकास।
५. व्यक्ति एवं समाज की आवश्यकताओं के अनुकूल मनोरंजन के स्वस्थ साधनों की व्यवस्था।

समाज-शिक्षा का यह पंचमुखी कार्यक्रम अति विस्तृत तथा व्यापक है। इसके अन्तर्गत न केवल वयस्कों को साक्षर बनाया जायगा, अपितु उनका शारीरिक, मानसिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक विकास भी किया जायगा, और इस प्रकार उनके जीवन का सर्वांगीण विकास किया जायगा जिससे भारतीय मानवता विकसित होकर अपनी सम्पूर्णता पर पहुँच जाय।

## समाज-शिक्षा के उद्देश्य[१]

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय से ही यह अनुभव किया जाने लगा कि भारत

---

.2 *India.*, 1958, p. 110.
.1 Aims of Social Education.

में लोकतंत्र की स्थापना तथा स्थिरता के लिये जनता को शिक्षित किया जाना अति आवश्यक है। अतः स्वतंत्र भारत के नवनिर्मित तथा प्रथम शिक्षा-मंत्रालय ने वयस्कों की शिक्षा को अपने कार्य-क्रम में प्रमुख स्थान दिया। अतः १९४९ में श्री मोहन लाल सक्सेना की अध्यक्षता में एक समिति का निर्माण किया गया और उसे वयस्क-शिक्षा के प्रसार पर परामर्श देने का आदेश दिया गया। समिति ने वयस्क-शिक्षा के उद्देश्यों को अति संकुचित पाकर सरकार को यह परामर्श दिया कि इस शिक्षा को समाज-शिक्षा की संज्ञा दे दी जाय। सरकार द्वारा समिति का यह परामर्श स्वीकार कर लिया गया। इस समिति ने समाज शिक्षा के निम्नांकित उद्देश्य निर्धारित किये :—

१. नागरिकों को उनके अधिकारों तथा कर्त्तव्यों के प्रति जागरूक करना और उनमे समाज-सेवा की भावना का विकास करना।
२. उनमे जनतन्त्र के प्रति प्रेम उत्पन्न करना तथा उन्हे जनतन्त्रीय सरकार की शासन-विधि की शिक्षा देना।
३. उनको देश तथा विश्व के समक्ष उपस्थित समस्याओं से अवगत कराना।
४. उनमें इतिहास, भूगोल तथा सांस्कृतिक शिक्षा के द्वारा भारतीय संस्कृति के प्रति गौरव की भावना उत्पन्न करना।
५. उनको गायन, नृत्य, कविता तथा नाटक के द्वारा सांस्कृतिक परिचय तथा आनन्द के अवसर प्रदान करना।
६. उनको सामूहिक वाद-विवाद तथा पठन-पाठन के माध्यम से विशिष्ट नैतिक मूल्यों से अवगत कराना।
७. उनको लिखने-पढ़ने तथा साधारण गणित का उपयुक्त ज्ञान प्रदान करना एवं ज्ञान के प्रसार के प्रति प्रोत्साहन देना।
८. उनको दस्तकारी का आवश्यक प्रशिक्षण देकर उन्हें अपने अवकाश का अपनी आर्थिक प्रगति के लिये उपयोग करने की शिक्षा देना।
९. उनमें पुस्तकालयों, विवाद-गोष्ठियों, शिक्षा-समितियों तथा जनता महाविद्यालयों द्वारा शिक्षा के क्रम को बनाये रखना।
१०. उनमें सहयोग की भावना का विकास करना।

## समाज-शिक्षा के लक्ष्य[1]

समाज-शिक्षा के लक्ष्यों का सरकार द्वारा दो स्पष्ट वर्गों में विभाजन किया

1. [illegible]s of Social Education

रहा है—(अ) व्यक्तिगत (Individual) तथा (ब) सामाजिक (Social)।[1]

## व्यक्तिगत पक्ष

वयस्क-शिक्षा का प्रारम्भ १९ वीं शताब्दी के मध्य में हुआ। यह वह समय था जब वैज्ञानिक आविष्कारों तथा उद्योगधन्धों के कारण जीवन की परिस्थितियों में क्रान्तिकारी परिवर्तन होने लगे थे। इन परिस्थितियों ने विचार, व्यवहार के ढंग, विश्व भर में उनके भी नयों में विकास करते थे, एक ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी थी जिसका सामना करने के लिए उपयुक्त शिक्षा की आवश्यकता थी। इस अवसर पर सरकार ने वयस्क-शिक्षा की योजना का कार्यक्रम निर्मित करके उसको व्यवहार में उतारने के लिए एक नई दिशा में कदम उठाया। समय की गति के साथ वयस्क-शिक्षा की धारणा अधिक से अधिक व्यापक होती चली गई और आज समाज-शिक्षा के रूप में यह वयस्कों के मानसिक विकास तथा आर्थिक क्षमता में वृद्धि करके एवं उनको उत्तम सांस्कृतिक जीवन व्यतीत करने की सुविधा प्रदान करके उनके व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करने की चेष्टा करती है। अतः व्यक्ति के दृष्टिकोण से समाज-शिक्षा निम्नलिखित लक्ष्यों की प्राप्ति का प्रयास करती है :

### १. वयस्कों का मानसिक विकास

जो वयस्क अपनी पारिवारिक तथा आर्थिक परिस्थितियों के कारण किसी प्रकार की औपचारिक शिक्षा नहीं ग्रहण कर सके हैं, उनके लिये शिक्षा की व्यवस्था करके उनका मानसिक विकास करना।

### २. वयस्कों की व्यावसायिक (Professional) क्षमता का विकास

वयस्कों की व्यावसायिक क्षमता का विकास करने के लिये, नागरिक क्षेत्रों में व्यावसायिक तथा टेकनिकल शिक्षा तथा ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि एवं कुटीर उद्योग-धन्धों की व्यवस्था करना।

### ३. वयस्कों का शारीरिक विकास

वयस्कों का शारीरिक विकास करने के लिये स्वास्थ्य के आधारभूत सिद्धान्तों, बाल स्वास्थ्य, अस्वस्थता से बचने के उपायों, विशिष्ट क्षेत्रों में फैलने वाले प्रमुख रोगों को रोकने और पोषक आहार की समस्याओं को हल करने के लिये प्रशिक्षण का समुचित प्रबन्ध करना।

---

1. *Teachers' Handbook of Social Education*, p. 21.

### ४. वयस्कों की सामाजिक कुशलता (Social skill) का विकास

वयस्कों की सामाजिक कुशलता का विकास करने के लिये उन्हें अपने साथियों के मध्य निवास करने, जीवन में प्रगति करने, पारिवारिक जीवन को सुखी बनाने और आधुनिक जटिल संसार में अपने अधिकारों तथा कर्त्तव्यों की शिक्षा प्रदान करना।

### ५. वयस्कों का सांस्कृतिक विकास

वयस्कों का सांस्कृतिक विकास करने के लिये तथा उन्हें अपने देश के प्राचीन तथा प्रचलित सांस्कृतिक कार्यों से अवगत कराने के लिये मनोरंजन, नृत्य तथा लोक-नृत्य, गीत तथा लोक-गीत, व्याख्यान भाषाओं आदि की उपयुक्त व्यवस्था करना।

### ६. वयस्कों का आत्म-विकास (Self-development)

वयस्कों का आत्म-विकास करने के लिये उनकी परिस्थितियों तथा आवश्यकताओं के अनुकूल किसी विशिष्ट ज्ञान की प्राप्ति, जीवन सिद्धान्तों के निर्माण अथवा किसी कला के अनुसरण के लिये सुविधा प्रदान करना।

## समाजगत लक्ष्य

हम ऊपर संकेत कर चुके हैं कि वयस्क-शिक्षा की प्राचीन धारणा में महत्वपूर्ण परिवर्त्तन हो गया है और उसको समाज-शिक्षा की संज्ञा दे दी गई है। यद्यपि समाज-शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य व्यक्ति की सर्वांगीण उन्नति करना है, परन्तु इसके साथ ही उसे समाज का बुद्धिमान तथा लाभप्रद सदस्य भी बनाना है जिससे कि न केवल उसका अपितु उसके सहयोग से समाज का भी उत्थान हो सके। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये समाज-शिक्षा "व्यक्तियों के समक्ष विभिन्न समूहों की आवश्यकताओं तथा समस्याओं को प्रस्तुत करती है। यह उनको विचार करने की विधियों तथा समूहों में सामान्य समस्याओं के समाधान की शिक्षा देती है। यह उनको इस बात को समझने की शिक्षा देती है कि ये समूह महान् परिवार अर्थात् भारत और उससे भी महान् परिवार अर्थात् विश्व का निर्माण करने के लिये किस प्रकार परस्पर आबद्ध हैं और उनके समक्ष भारत के भाग्य-निर्माण तथा विश्व-सेवा के लिये अनवरत प्रयास एवं कार्य करने का आदर्श उपस्थित करती है।"[1]

1. "It places before the people the needs and problems of various groups. It teaches them the way of thinking and solving the common problems in groups. It teaches them to see how these groups are knit together to form

समाज-शिक्षा की इस व्याख्या के आधार पर समाज-शिक्षा के उद्देश्य हैं :—

## १. सामाजिक एकता का विकास[1]

आधुनिक समाज की एक प्रमुख विशेषता है व्यक्तियों के हितों का पारस्परिक संघर्ष। समाज को इस संघर्ष से सुरक्षित रखने के लिये सामान्य बन्धनों के निर्माण की आवश्यकता होती है। यह न केवल वर्गों के पारस्परिक द्वंद्वों को दूर करने के लिये, अपितु व्यक्तियों तथा व्यक्तियों और समूहों तथा समूहों के मध्य निरन्तर बढ़ती हुई पृथकता का, जो हमारे नागरिक तथा हमारे ग्रामीण समाज का भी एक विशेष लक्षण है, अन्त करने के लिये भी आवश्यक है। किसी विद्वान् ने इस पृथकता को 'एकान्तता' कहकर परिभाषित किया है। इस प्रकार की 'एकान्तता' (Solitude) विभिन्न भाषा-भाषी समूहों, धार्मिक समूहों, ग्रामीण तथा नगरीय समूहों, शिक्षितों तथा अशिक्षितों, प्रतिष्ठित तथा सामान्य व्यक्तियों, पूँजीपतियों तथा श्रमिकों, देशवासियों तथा विदेशियों, युवकों तथा वृद्धों, धनी तथा निर्धन व्यक्तियों के मध्य विद्यमान है। "समाज-शिक्षा का लक्ष्य है इस एकान्तता को यथासम्भव कम करना और एक सामान्य संस्कृति का निर्माण करना जिसमें देश के समस्त राष्ट्रीय तत्व भाग ले सकें।"[2]

## २. राष्ट्रीय साधनों की सुरक्षा तथा उन्नति[3]

समाज-शिक्षा व्यक्तियों को यह पाठ सिखाती है कि वे भारत को प्रकृति द्वारा दिये गए उपहारों तथा यहाँ के निवासियों को ऐसे साधन समझें जिनकी सहायता से इस देश के समस्त प्राणियों के लिए जीवन के एक उचित स्तर का निर्माण करना सम्भव है। ये साधन दो प्रकार के हैं—भौतिक तथा मानवीय।

पिछड़े हुए राष्ट्रों के समक्ष एक कठिनतम कार्य है, अपने प्राकृतिक साधनों

---

the great family, that is, India and the greater family, that is, world, and holds before them the ideal of sustained effort and work as their offering to the destiny of India and the service of the world." *Teachers' Handbook of Social Education*, p. 21-22.

1. Promoting Social Cohesion.
2. "It is the purpose of Social Education to reduce these solitudes as far as possible and to create a common culture in which all national elements can participate." *Teachers' Handbook of Social Education*, p. 22.
3. Conservation and Improvement of National Resources.

की सुरक्षा तथा उन्नति । उदाहरणार्थ, भारत में हमारे समक्ष हमारी भूमि तथा वनों के क्षय की समस्याएँ हैं । यह आवश्यक है कि हमारे देश का प्रत्येक नागरिक इन समस्याओं से अवगत हो और वह न केवल उनकी सुरक्षा अपितु उनकी उन्नति में भी अपना योग प्रदान करे ।

प्राकृतिक साधनों से अधिक महत्वपूर्ण मानवीय साधन हैं । हमारे विद्यालयों तथा शिक्षा की उच्च संस्थाओं का कर्त्तव्य है कि वे इन मानवीय साधनों की उन्नति करें । हमारे देश की अधिकांश जनता को विद्यालयों में शिक्षा ग्रहण करने का अवसर नहीं प्राप्त हुआ है और इसलिए वे साहित्यिक तथा अन्य आवश्यक योग्यताओं का विकास नहीं कर सके हैं । यही कारण है कि समाज-शिक्षा ने हमारे देश के निवासियों का साक्षरता तथा उत्पादक योग्यताओं के समान आधारभूत कुशलताओं की शिक्षा प्रदान करने का भार अपने ऊपर लिया है ।

लेनिन (Lenin) का मत था कि निरक्षर जनता के आधार पर समाजवाद (Socialism) का निर्माण केवल इसलिए नहीं किया जा सकता है क्योंकि एक निरक्षर मनुष्य राजनीति के क्षेत्र से बाहर होता है । यही बात किसी भी वास्तविक जनतांत्रिक समाज के सम्बन्ध में कही जा सकती है । एक अशिक्षित व्यक्ति में दृष्टिकोण तथा मस्तिष्क की वह विशालता नहीं होती है, जो स्वस्थ राजनीतिक जीवन के विकास के लिए आवश्यक है ।

अन्त में, हमारी एक प्रमुख आवश्यकता है व्यक्तियों की उत्पादन शक्ति में वृद्धि करना, और इस कार्य को तब तक सम्पन्न नहीं किया जा सकता है, जब तक जनता अशिक्षित है । साक्षरता तथा शिक्षा के अभाव में उत्पादन में एक निश्चित सीमा तक ही वृद्धि की जा सकती है, उसके आगे नहीं ।

### ३. सहकारी समुदायों तथा संस्थाओं का संगठन[1]

विभिन्न समूहों की 'एकान्तता' को कम करना और राष्ट्रीय साधनों की सुरक्षा तथा उन्नति प्रारम्भिक कार्य हैं । "समाज-शिक्षा को मनुष्यों को ऐसी कुशलताओं की शिक्षा देनी है जो ऐसे समूहों के निर्माण के लिए आवश्यक हैं, जो इन साधनों का सभी के हित के लिये प्रयोग करने के लिये योग्य तथा इच्छुक हों ।"[2] इन कुशलताओं के अन्तर्गत तीन बातों का समावेश है :

---

1. Building Co-operative Groups and Institutions.
2. "Social education has to lead on to teach men the skills which are necessary for building up groups qualified and willing to use these resources for the good of all." *Teachers' Handbook of Social Education*, p. 23.

समूहो के समक्ष उपस्थित समस्याओ का सामूहिक अध्ययन, उनका स
करने के लिये सामूहिक तथा सहकारी कार्य, और इन कार्यों के परिणामो
सामूहिक मूल्यांकन। अत: समाज-शिक्षा का लक्ष्य है—उन विधियों
निर्माण करना जिनसे उपरिलिखित समूहो का निर्माण इस प्रकार किया
कि व्यक्ति अपनी स्वतन्त्रता तथा सम्मान से वंचित न हो सकें, जिससे नेत
लोग बिना बल का प्रयोग किए समूहो का नेतृत्व कर सकें, जिससे अधिकत
व्यक्तिगत सुख का सामाजिक प्रगति से सामंजस्य स्थापित किया जा सके,
जिससे उन आधारभूत संस्थाओ की स्थापना की जा सके जो व्यक्ति के कल्याण
का सबके कल्याण के साथ सामंजस्य स्थापित करन के लिए आवश्यक हैं और
जिससे प्रत्येक व्यक्ति इन संस्थाओ के विकास तथा स्थायित्व मे योग दे सके।

४. **सामाजिक आदर्श का समावेश**[1]

'समाज-शिक्षा का एक प्रधान कर्त्तव्य है—लोगो को अपने व्यक्तिगत कल्याण को अपने समूह, अपने समाज और अपने देश के कल्याण के लिए अर्पित करने के लिए और इस कार्य को प्रसन्नता पूर्वक करने के लिए उद्यत करना।"[2] इस दृष्टिकोण को एक अग्रेज लेखक के प्रसिद्ध शब्दो मे इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है : 'यदि इंगलैण्ड जीवित है तो अन्त किसका है, यदि इंगलैण्ड का अन्त होता है, तो जीवित कौन है।"[3] समाज के जीवन मे महानतम् व्यक्ति का योग भी सीमित होता है। फिर भी उसके जीवन का महत्व इस बात से आंका जाता है कि उसने मानवजाति की प्रगति मे क्या योग प्रदान किया है। समाज-शिक्षा का लक्ष्य है निम्नतम भारतीय मे इस भावना का समावेश कर देना कि वह मानव-जाति की प्रगति मे योग प्रदान करने के कार्य को अपना आदर्श समझे।

## समाज-शिक्षा की आवश्यकता

समाज-शिक्षा के उपरिवर्णित उद्देश्यो तथा लक्ष्यो का निर्धारण किसी आकस्मिक घटना के परिणामस्वरूप न होकर, व्यक्ति, समाज तथा देश की

---

1. Inculcating Social Ideology.
2. 'One of the most important functions of Social Education is to prepare the people to subordinate their private welfare to the welfare of their group community and their country and to do this joyfully." *Teachers' Handbook of Social Education*, p. 25.
3. "Who dies if England lives, who lives if England dies"

कतिपय आवश्यकताओं पर गम्भीर विचार करने के उपरान्त किया गया है। इन्हीं आवश्यकताओं के फलस्वरूप समाज-शिक्षा की आवश्यकता का अनुभव किया गया। हम इनका संक्षिप्त विवरण नीचे प्रस्तुत कर रहे हैं।

### १. अशिक्षित वयस्कों की आवश्यकता

हमारे देश मे अभी तक अनिवार्य-शिक्षा का पूर्णरूप से प्रसार नही हो पाया है। फलस्वरूप अनेकों बच्चे शिक्षा के लाभ से वंचित रह जाते हैं। वयस्क होने पर भी उन्हें लिखने, पढ़ने तथा सामान्य गणित का कोई ज्ञान नहीं होता है, जिससे उनका मानसिक विकास सदैव के लिये अवरुद्ध हो जाता है। उनका स्थान समाज मे निम्नतर होता है और शिक्षित व्यक्तियों द्वारा उनका अनेक प्रकार से शोषण किया जाता है। भारतीय संविधान ने देश के सभी नागरिको को समानता तथा स्वतन्त्रता के समान अधिकार प्रदान किये है, परन्तु अशिक्षित वयस्क उनका उपभोग नहीं कर पाते हैं। अशिक्षित वयस्कों की इन सभी आवश्यकताओं को ध्यान मे रखकर समाज-शिक्षा की व्यवस्था की गई है, जिसका प्रमुख उद्देश्य निरक्षर वयस्को को साक्षर बनाना है।

### २. अर्द्ध शिक्षित वयस्कों की आवश्यकता

भारत में अनेकों वयस्क ऐसे भी हैं, जिन्हें बाल्यकाल में आर्थिक कठिनाई तथा अन्य किसी कारणवश अपनी शिक्षा को स्थगित करना पड़ा था। अतः यह आवश्यक समझा गया कि इन अर्द्ध शिक्षित वयस्कों को शिक्षित करके उनके मानसिक दृष्टिकोण को विस्तृत किया जाय जिससे कि वे देश के उत्तम नागरिक बन सकें और साथ ही अपने व्यवसाय मे अधिक सफल हो सकें।

### ३. पूर्ण शिक्षा की आवश्यकता

विद्यालयों तथा उच्च शिक्षा-संस्थाओं मे जो शिक्षा प्रदान की जाती है, उसको पूर्ण नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यह व्यक्तियों को जीवन के समस्त क्षेत्रो में सफलतापूर्वक कार्य करने की योग्यता नहीं प्रदान करती है। हमारे शिक्षालयों की शिक्षा के प्रमुख दोष ये हैं कि वह स्वास्थ्य, पारिवारिक जीवन तथा अवकाश के सदुपयोग के सम्बन्ध मे किसी प्रकार का प्रशिक्षण नहीं देती है। जीवन में प्रवेश करने पर व्यक्ति अनुभव करता है कि उसे इस प्रकार के प्रशिक्षण की आवश्यकता है। समाज-शिक्षा व्यक्तियों की इस आवश्यकता को पूर्ण करती है।

### ४. मनोरंजन की आवश्यकता

आधुनिक युग में अन्य देशवासियों के समान भारतीयों की आवश्यकताओं

में भी वृद्धि हो गई है। वे इन आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिये
से लेकर सायंकाल तक किसी न किसी विधि से धन का अर्जन करने
रहते हैं। दिन भर के कठिन परिश्रम के उपरान्त व्यक्तियों में किसी
मनोरंजन द्वारा स्वयं को आनन्दित करने की इच्छा का उदय होना स्वा
है। जहाँ तक नगरों का प्रश्न है, वहाँ मनोरंजन के साधनों का अभाव
खटकता है, परन्तु ग्रामों में उनका सर्वथा अभाव है। समाज-शिक्षा ने
वासियों के लिये विविध प्रकार के मनोरंजनों की व्यवस्था करने का भार अप
ऊपर लिया है।

५. राजनीतिक आवश्यकता

"आज का समय हमारे देश के लिये पुनर्नियोजन एवं पुनर्निर्माण का, उत्थान एवं विकास का समय है। हमने अपने देश में धर्म निरपेक्ष कल्याणकारी लोकतन्त्र की स्थापना की है। हमें उसे सुदृढ़ एवं शक्तिशाली बनाना है, किन्तु यह सब तब तक सम्भव नहीं हो सकता, जब तक कि उसकी आधारशिला ही सुदृढ़ एवं शक्तिशाली न हो। और यह आधार-शिला है इस देश की वह समस्त जनता जिसके ऊपर कि आज राज्य-सरकारों का सुयोग्य निर्वाचन निर्भर है तथा सम्पूर्ण राष्ट्र के मंगलमय स्वरूप का निर्धारण अवलम्बित है। इस उद्देश्य के लिये आवश्यक है उस दिशा की ओर अग्रसर करने वाली जन-जन को उपयुक्त शिक्षा एवं उपयुक्त साहित्य। अतएव जिस प्रकार हम अपने बालक-बालिकाओं तथा युवक-युवतियों की शिक्षा-दीक्षा, उनके निमित्त साहित्य की आवश्यकता एवं साहित्य के व्यवस्थित निर्माण पर बल देते हैं, उसी प्रकार हमें आज प्रौढ़ भाई-बहिनों की शिक्षा-दीक्षा एवम् उनके लिये उपयुक्त एवं व्यवस्थित विधि से साहित्य के सृजन की चिन्ता भी करनी होगी।"[1] वस्तुतः इस चिन्ता का भार समाज-शिक्षा ने पूर्ण रूप से अपने ऊपर ले लिया है।

६. सामाजिक आवश्यकता

"समाज तुलनात्मक दृष्टि से सब से अधिक स्थायी समूह है, जो कि सामान्य स्वार्थ, सामान्य भूभाग, सामान्य प्रकार का रहन-सहन और सामान्य पारस्परिक सहयोग या अपनत्व की भावना रखता है।"[2] समाज की इन

---

1. माननीय शिक्षा मन्त्री [illegible], "जनसाधारणोपयोगी साहित्य निर्माण-गोष्ठी की व्याख्या" के "प्राक्कथन" से, शिक्षा-विभाग राजस्थान, [illegible]
2. "Society is the largest relatively permanent group who share common interests, common territory, a common mode of life and a common sense of belonging to[illegible]."—J. Gillin : The Ways of Men, p. 340.

परिभाषा से स्पष्ट हो जाता है कि समाज का एक आवश्यक तत्व सहयोग है। समाज का सम्पूर्ण ढांचा सहयोग की नींव पर ही खड़ा है। इस सहयोग से ही समाज की रक्षा हो सकती है और उसका निर्माण हो सकता है। समाज में जितनी भी संस्थायें, समितियाँ और संगठन होते हैं, उन सभी का अस्तित्व सहयोग पर निर्भर है। सहयोग प्राप्त करके ही वे समाज को प्रगतिशील बनाने में सफल हो सकते हैं। भारतीय समाज में सहयोग की भावना पूर्ण रूप से अनुपस्थित है। विभिन्न समूहों, संस्थाओं और वर्गों में महान् संघर्ष है; जातीय तथा धार्मिक द्वेष हैं। फलस्वरूप हमारा समाज जड़ तक हिल गया है। ऐसे समाज को एकता के सूत्र में आबद्ध करने की आवश्यकता का अनुभव करके ही समाज-शिक्षा के कार्य-क्रम को क्रियान्वित किया जा रहा है।

### ७. आर्थिक आवश्यकता

भारत की अधिकांश जनता निर्धन है। नगर-निवासियों की अपेक्षा ग्राम-वासियों की दशा अधिक दयनीय है। उन्हें तन ढकने के लिये पर्याप्त वस्त्र और पेट भरने के लिये पर्याप्त भोजन भी नहीं नसीब होता है। हमारे देश के मस्तक पर निर्धनता की जो कलंक कालिमा लगी हुई है, उसको बिना धोए हम प्रगति-शील कहलाने के अधिकारी नहीं हैं। इसी विचार से उत्प्रेरित होकर भारत-सरकार ने करोड़ों निर्धन देशवासियों की आर्थिक उन्नति की ओर ध्यान दिया है और इसी आवश्यकता को ध्यान में रखकर समाज-शिक्षा द्वारा उनको विविध प्रकार के कार्यों में प्रशिक्षित करके उनके आर्थिक स्तर को ऊँचा उठाने का निश्चय किया है।

### ८. देश की आवश्यकता

यदि एक देश के व्यक्ति शिक्षित नहीं हैं, तो उस देश की क्रियात्मक शक्ति का पूर्ण रूप से उपयोग किया जाना सम्भव नहीं है। शक्ति-संचय तथा शक्ति के पूर्ण उपयोग के लिये शिक्षा की महान् आवश्यकता है। एक अशिक्षित व्यक्ति को इस बात का ध्यान नहीं होता है कि उसमें कौन सी शक्तियाँ निहित हैं, और वह उनका उपयोग किस प्रकार कर सकता है। भारत के सम्बन्ध में यह बात अक्षरशः सत्य है। इस विशाल देश की जन-शक्ति का उचित उप-योग नहीं हो रहा है। इसी आवश्यकता को ध्यान में रखकर समाज शिक्षा का आयोजन किया गया है।

समाज-शिक्षा द्वारा हमारे देशवासियों तथा देश का जो कल्याण होगा उसको हुमायूँ कबीर के इन शब्दों में अंकित किया जा सकता है: "शिक्षित श्रमिक अधिक उत्पादन में योग देंगे और इस प्रकार उद्योग तथा व्यवसाय

दोनों की अधिक उन्नति होगी। यह उन्नति केवल व्यवसाय तक ही
नहीं रहेगी। अधिक शिक्षा के फलस्वरूप राष्ट्रीय सम्पत्ति में वृद्धि होगी
आवश्यक समाज सेवाओं का विस्तार होगा। केवल शिक्षा ही हमारे देशवा
के जीवन के स्तर में उन्नति करने के लिये वास्तविक आधार का निर्माण
सकती है। शिक्षा ही मस्तिष्क तथा चरित्र के प्रशिक्षण की, जिससे व्यक्ति
अपने अवकाश का निर्माणकारी प्रयोग कर सकेंगे, आवश्यक शर्त है। इस
प्रकार केवल समाज-शिक्षा ही वह आधार है, जिस पर स्वतंत्र भारत कल्याण-
कारी राज्य का निर्माण कर सकता है, जो वैयक्तिक स्वतंत्रता तथा सामाजिक
सुरक्षा की माँगो को स्वीकार करेगा।"[1]

## समाज-शिक्षा की समस्यायें

समाज-शिक्षा की समस्यायें शिक्षा के अन्य अवयवों की समस्याओं से अधिक जटिल और अधिक सरल भी हैं। वे अधिक जटिल इसीलिये हैं क्योंकि समाज-शिक्षा का उद्देश्य उन वयस्क पुरुषों तथा स्त्रियों को शिक्षित करना है जो शिक्षा प्राप्त करने की आयु को पार कर चुके हैं। वे अधिक सरल इसलिये हैं क्योंकि हमें इनको बालकों की अपेक्षा कम शिक्षा देनी है।

भारत में समाज-शिक्षा की समस्यायें प्रगतिशील देशों की समस्याओं से भिन्न हैं। अन्य देशों में उन वयस्कों के लिए शिक्षा की योजनायें कार्यान्वित की जाती हैं, जो अपने बाल्यकाल में अनिवार्य शिक्षा से लाभ उठा कर कुछ शिक्षा ग्रहण कर चुके हैं। भारत में मुख्य रूप से उन वयस्कों को शिक्षित किया जाना है जो किसी प्रकार की भी शिक्षा प्राप्त न करने के कारण पूर्ण रूप से निर-

---

1. "Educated workers would make for increased production and thus make for increased properity for both industry and trade. The benefits would not, however, be confined to business alone. Increased educatian would lead to an addition in the national wealth and create the basis for an expansion of necessary, social services. Education alone can create the material basis for an improvement in the standard of life of our people. It is also the necessary condition for the training of mind and character which will permit the people to make a creative use of their liesure Social education is thus the foundation on which alone free India can build up a Welfare State which will recognize the claims of both individual freedom and social security."— Humayun Kabir ; *op. cit.*, p. 96.

क्षर हैं। इसके अतिरिक्त भारत में जो एक विचित्र विशेषता पाई जाती है, वह यह है कि यहाँ के वयस्क निरक्षर होते हुए भी अशिक्षित नहीं हैं। "यद्यपि भारतीय ग्रामवासी निरक्षर है, पर इसलिये वह अशिक्षित नहीं है। वह एक अर्थ में शिक्षित है। उसकी स्मृति विलक्षण है जिसमें उसने अपने देश के प्राचीन ज्ञान का संचय कर रखा है।"[1]

उपर्युक्त तत्वों की उपस्थिति के परिणाम स्वरूप समाज-शिक्षा के क्षेत्र में कतिपय असाधारण समस्याओं का परिगणन किया जा सकता है, जिनका संक्षिप्त वर्णन निम्नांकित है :

## १. निरक्षरता की समस्या

संसार के सबसे घनी जनसंख्या वाले देशों में भारत का स्थान दूसरा है। सन् १९९१ की जनगणना के अनुसार, भारत की कुल जनसंख्या ३५,६८,७९,३९४ थी।[2] इस विशाल जनसंख्या के केवल १६.६ प्रतिशत व्यक्ति साक्षर हैं। पुरुषों में साक्षरता का प्रतिशत २४.९ और स्त्रियों में साक्षरता का प्रतिशत ७.९ है। नागरिक क्षेत्रों में साक्षरता ३४.६ प्रतिशत है, परन्तु ग्रामीण क्षेत्रों में यह साक्षरता केवल १२.१ प्रतिशत है।[3]

इन आंकड़ों से सिद्ध हो जाता है कि हमारे देश में ८३.४ प्रतिशत व्यक्ति अज्ञानता के अन्धकार में अपना मार्ग टटोल रहे हैं। इस अज्ञानता की उपस्थिति में किसी प्रकार की सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक प्रगति की आशा करना बालू की दीवारों पर गगन-चुम्बी अट्टालिका का निर्माण करने के समान है। इस विशाल जनसंख्या को किस प्रकार शिक्षा के आलोक में लाया जाय, यह एक ऐसी जटिल समस्या है, जो किसी भी देश के कुशल राजनीतिज्ञों तथा प्रकाण्ड विद्वानों के हौसले पस्त कर सकती है। इस समस्या का भयावह चित्र पी० एन० चटर्जी (P. N. Chatterjee) के इन शब्दों को पढ़ कर हमारे मानस-पटल पर अंकित हो जाता है: "विश्व के निरक्षर वयस्कों

---

1. "Although the Indian village is illitrate, he is not, there fore, uneducated. He is educated in a sense. He has a tremendous memory, in which he carries a vast amount of folk-lore."—N. A. Toothi : *The Vaishnavas of Gujarat*, p. 180

की सम्पूर्ण संख्या के आधे से अधिक भारत में निवास करते हैं। उ
के अल्प प्रकाश में भी लाने का कार्य अति विशाल है।"[1]

२. **पाठ्य-क्रम की समस्या**

समाज-शिक्षा की दूसरी समस्या है—पाठ्य-क्रम की। वयस्कों के उपर्युक्त पाठ्य-क्रम न होने के कारण समाज-शिक्षा के कार्य में भारी बा पड़ रही है। अभी तक इस बात पर मतैक्यता नहीं हो सकी है कि वयस्कों लिये किस प्रकार का पाठ्य-क्रम सबसे अधिक उपयोगी होगा। जिस पाठ्य क्रम को बालकों की शिक्षा के लिये प्रयोग किया जाता है, उसे प्रौढ़ों के लिये प्रयोग नहीं किया जा सकता है, क्योंकि उनकी अभिरुचियाँ, आवश्यकतायें और जीवन के प्रति उनके दृष्टिकोण नितान्त भिन्न हैं। फिर समस्त प्रौढ़ों के लिये भी समान पाठ्य-क्रम निर्धारित नहीं किया जा सकता है, क्योंकि उनमें कुछ बिल्कुल निरक्षर हैं, जिनके लिये पहिले अक्षर-ज्ञान की व्यवस्था आवश्यक है; कुछ अर्द्धशिक्षित वयस्क हैं, जिनके लिये कुछ विशिष्ट विषयों के शिक्षण की आवश्यकता है और कुछ नवसाक्षर (Neo-literate) प्रौढ़ हैं, जो थोड़ा-सा पढ़ना-लिखना जानते हैं तथा जिनमें नागरिकता की भावना का विकास करने के लिये "सभ्यता, संस्कृति, इतिहास, भूगोल, नागरिक शास्त्र आदि विषयों का ज्ञान आवश्यक हो जाता है।"[2]

इन कठिनाइयों के अतिरिक्त पाठ्य-क्रम के निर्धारण में एक कठिनाई भी है कि वयस्कों के प्राथमिक स्तर को ऊँचा उठाने के लिये पाठ्य-क्रम उद्देश्य केवल प्रौढ़ों को बौद्धिक ज्ञान प्रदान करना ही नहीं होना चाहिये, अपितु उन्हें किसी कला या कौशल का भी प्रशिक्षण देना चाहिये जिससे कि वे अवकाश का सदुपयोग कर सकें और धन का भी उपार्जन कर सकें।

पाठ्य-क्रम के निर्माण में अन्तिम कठिनाई यह है कि वयस्कों में सभी आयु के पुरुष और स्त्रियाँ हैं। हमारे देश में उन बच्चों तथा युवकों को भी प्रौढ़ों की श्रेणी में रखा गया है, जिनकी आयु १२ से १८ वर्ष की है। मोटे तौर पर वय के अनुसार प्रौढ़ों को इस क्रम में रखा गया है :—(१) १२ वर्ष से १८ वर्ष तक के प्रौढ़, (२) १८ वर्ष से ३५ वर्ष तक के प्रौढ़, और (३) ३५ वर्ष से अधिक आयु के प्रौढ़। स्पष्ट है कि इन तीनों वय-वर्ग के प्रौढ़ों

1. "More than half the total number of adult illiterates in the world live in India. The work of bringing some light to them is one of tremendous magnitude."
२. कौशल्या भटनागर : प्रौढ़ शिक्षा प्रसार, पृष्ठ १८

मानसिक प्रवृत्तियों, बौद्धिक-स्तरों, अभिरुचियों एवं रुझानों में अन्तर होगा। अतः सभी के लिये समान पाठ्य-क्रम निर्धारित किया जाना उचित न होगा।

इन सब कठिनाइयों ने वयस्कों के लिये पाठ्य-क्रम के संगठन-कार्य को एक जटिल समस्या का रूप दे दिया है।

## ३. शिक्षण-पद्धति की समस्या

वयस्कों के लिये उपयुक्त शिक्षण-पद्धति का निर्धारण भी कुछ कम जटिल समस्या नहीं है। इसका कारण यह है कि जीवन तथा संसार के प्रति वयस्कों का दृष्टिकोण समान नहीं होता है। इस बात में वे बच्चों से भिन्न होते हैं। अल्प आयु में दृष्टिकोण का विकास अधिक न होने के कारण प्रायः सभी बच्चों के लिये समान शिक्षण-पद्धति का अनुसरण किया जा सकता है। वयस्कों के लिये ऐसा करना न तो सम्भव ही है और न उचित ही। वयस्कों में 'अहम्' की भावना पर्याप्त रूप से विकसित हो जाती है। वे अधिक सामाजिक स्वतंत्रता का उपभोग करते हैं। उनके अपने कुछ सिद्धान्त होते हैं, उनकी अपनी आदतें होती हैं, जिनके विरुद्ध वे काम नहीं करना चाहते हैं। इन सभी बातों के कारण प्रौढ़ों के लिये उपयोगी शिक्षण-पद्धति का सरलता पूर्वक निश्चय करना सम्भव नहीं है। यदि शिक्षण-पद्धति में कोई भी ऐसा तत्व है, जो उनको अरुचिकर प्रतीत होता है अथवा जो उनकी 'अहम्' की भावना, स्वतंत्रता, सिद्धान्तों तथा आदतों से टकराता है, तो शिक्षण-पद्धति का असफल होना अवश्यम्भावी है। यही कारण है कि अभी तक किसी एक पद्धति को वयस्कों के लिये निश्चय नहीं किया जा सका है।

## ४. अध्यापकों की समस्या

प्रौढ़-शिक्षा के अध्यापकों की समस्या समाज-शिक्षा के विस्तार में अड़ंगा डाले हुए है। प्रौढ़-विद्यालयों के लिये उपयुक्त शिक्षकों का अभाव है। जिन अध्यापकों को वयस्क-विद्यालयों में नियुक्त किया जाता है, वे साधारणतया प्राथमिक-विद्यालयों के शिक्षक होते हैं। उनमें प्रौढ़ों को शिक्षा देने की आवश्यक योग्यता नहीं होती है। वे प्रौढ़ों के मनोविज्ञान से अनभिज्ञ होते हैं। वे प्रौढ़ों के लिये उपयुक्त शिक्षण-पद्धतियों में अप्रशिक्षित होते हैं। वे समाज-शिक्षा के उद्देश्यों, लक्ष्यों, आवश्यक साहित्य तथा शिक्षा के उपयोगी साधनों से अवगत नहीं होते हैं। अतः जब उनको प्रौढ़-शिक्षा का भार सौंप दिया जाता है, तब वे उसका दक्षता-पूर्वक संचालन करने में अपने आप को असमर्थ पाते हैं। फलस्वरूप वयस्क-शिक्षा का प्रवाह निर्बाध गति से नहीं हो पाता है।

वयस्क-विद्यालयों के लिये उपयुक्त शिक्षकों के अभाव की समस्या
पर इससे भी गुरुतर समस्या यह है कि अध्यापकों की वांछित संख्या
है। निरक्षर वयस्कों की अधिकांश संख्या भारतीय ग्रामों में निवास
शिक्षकों को ग्रामों में जीवन की आवश्यक वस्तुओं की उपलब्धि, आवास,
रंजन के साधनों आदि की कठिनाइयों का सदैव सामना करना पड़ता है;
वे ग्रामों में स्थित प्रौढ़-विद्यालयों में अध्यापन कार्य करने के लिये उद्यत
होते हैं। इन विद्यालयों मे अध्यापिकाओं का और भी अधिक अभाव है क्योंकि
वे अपने निवास-स्थानो से दूर अपरिचित स्त्रियों के मध्य में, जिन्हे वे स्वयं
शिक्षित होने के कारण असभ्य और गंवार समझती हैं, अपने जीवन तथा समय
को नष्ट नहीं करना चाहती हैं।

## ५. साहित्य की समस्या

समाज-शिक्षा का उत्तरदायित्व केवल वयस्कों को साक्षर बनाकर समाप्त नहीं हो जाता है। प्रौढ़ों को केवल लिखना, पढ़ना तथा साधारण गणित की शिक्षा दे देना पर्याप्त नहीं है। यदि इस प्रकार की शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त, वे शिक्षा ग्रहण करने का कार्य समाप्त कर दें, तो वे कुछ समय के पश्चात् फिर निरक्षर हो जायेंगे। अतः यह आवश्यक है कि प्रारम्भिक ज्ञान उपलब्ध करने के बाद भी नवसाक्षरों के लिये साहित्य हो। "यदि हमारी लागत सीख भी लें, तो उससे उसे क्या फायदा होगा? इससे समाचार-पत्रों में तथा सार्वजनिक मंच पर लफ्फ़ाजी करने वालों को उन्हें बेवकूफ बनाने का उतना ही ज्यादा मसाला और मिल जायगा। इससे न तो उनके मानदण्ड ऊँचे होंगे, न उनकी रुचियों में सुधार होगा और न उनका जीवन ही समृद्ध बनेगा, उनकी सहानुभूति या समझ या सामाजिक चेतना मे कोई गहराई नहीं पैदा होगी।"[1] इसलिये नवसाक्षरो के लिये एक ऐसे साहित्य की आवश्यकता है जो उनमें चीजों को परखने की क्षमता, आलोचनात्मक शक्ति तथा सामाजिक भावना का विकास करने में योग दे, जिससे कि "वे कला के क्षेत्र में उत्कृष्ट तथा निकृष्ट के बीच, ज्ञान के क्षेत्र मे सच और झूठ के बीच और आचरण के क्षेत्र में भले और बुरे के बीच अन्तर ला सकें।"[2] इस प्रकार के साहित्य का निर्माण एक समस्या है।

---

१. के० जी० सैयदैन : शिक्षा की पुनर्रचना, पृ० २११
२. वही

### ६. शिक्षा-साधनों की समस्या

"समाज-शिक्षा के साधनों से तात्पर्य है वे समूह अथवा संस्थायें जो समाज-शिक्षा प्राप्त करने वाले व्यक्तियों से सम्पर्क रखती हैं, उन्हें ज्ञान प्रदान करती हैं तथा उनकी आवश्यकताओं को संतुष्ट करती हैं।"[१] प्रौढ़-शिक्षा के इन साधनों के चयन में विशेष सतर्कता की आवश्यकता है, क्योंकि यदि ये साधन वयस्कों को ज्ञान के प्रति आकृष्ट करने में असफल रहते हैं, तो वे पूर्णतया निरर्थक हो जाते हैं। इन साधनों का विवेकपूर्ण चयन सरल कार्य नहीं है। यही कारण है कि प्रौढ़-मनोविज्ञान में दक्ष व्यक्ति साधनों की समस्याओं को सुलझाने में व्यस्त हैं।

### ७. धन की समस्या

१९५१ की जनगणना के अनुसार भारत मे १२ वर्ष से अधिक आयु के प्रौढ़ों की संख्या लगभग १८·५ करोड़ है। इतने प्रौढ़ो को साक्षर बनाने में कितने धन की आवश्यकता होगी, इसका कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। मान लीजिये कि एक अध्यापक ३० प्रौढ़ों को ६ मास में साक्षर बना सकता है। इस प्रकार वह ६० प्रौढ़ों को १ वर्ष में पढ़ना-लिखना सिखा सकता है। इस हिसाब से १८·५ करोड़ वयस्कों को १ वर्ष में साक्षर बनाने के लिये ३० लाख से अधिक अध्यापकों तथा प्रौढ़-विद्यालयों की आवश्यकता होगी। यदि एक प्रौढ़-विद्यालय का कम से कम व्यय २५० रुपया वार्षिक मान लिया जाय, तो ३० लाख प्रौढ़-विद्यालयों के लिये ७·५ करोड़ रुपये की आवश्यकता होगी। सन् १९५६-५७ में भारत की राष्ट्रीय आय ११·३१० करोड़ रुपये आंकी गई थी।[२] अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रौढ़ों को साक्षर बनाने के लिये धन की एक महान् समस्या है।

### ८ उत्तरदायित्व की समस्या

समाज-शिक्षा की अन्तिम समस्या यह है कि समाज-शिक्षा का उत्तरदायित्व किस पर होना चाहिये—केन्द्रीय सरकार पर, राज्य-सरकारों पर, शिक्षा-विभागों पर, जिला परिषदों पर अथवा सार्वजनिक शिक्षा-संस्थाओं पर। केन्द्रीय सरकार ने इस उत्तरदायित्व को राज्य-सरकारों पर रखा है और इस प्रकार

1. "By agencies of social education is meant the bodies or institutions which 'deliver the goods' which contact the 'consumers' of social education and satisfy their needs." *Teachers' Handbook of Social Education*, p. 66.
2. भारत १९६०, पृ० १३१

अपने को समाज-शिक्षा के भार से मुक्त रखने का प्रयास किया है। पर इससे समाज-शिक्षा की महान् समस्या का समाधान होना सम्भव नहीं प्रतीत होता है।

## समस्याओं का समाधान

समाज-शिक्षा की जिन समस्याओं का उल्लेख किया गया है, उनके समाधान के लिये कुछ महत्वपूर्ण सुझाव नीचे दिये जा रहे हैं :

### १. निरक्षरता का उन्मूलन

यद्यपि ८३·४ प्रतिशत वयस्कों की निरक्षरता का उन्मूलन कोई सरल कार्य नहीं है, फिर भी कुछ उपायों का सहारा लेकर सफलता प्राप्त की जा सकती है। हम इस समस्या पर विजय तभी प्राप्त कर सकते हैं जब कि हम उनको संस्कृति तथा मानवता के उच्च शिखर पर आसीन करने के स्वर्णिम स्वप्नों को देखना बन्द कर दें और इस बात के लिये कटिबद्ध हो जायें कि हमें अल्प से अल्प समय में उनको साक्षर बनाना है। साथ ही हमें केवल उनके अक्षर ज्ञान पर अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहिये, न कि उनके लिखने तथा साधारण गणित की योग्यता पर। "लिखने-पढ़ने और साधारण गणित के आधारभूत तत्वों में भी पढ़ने का स्थान सर्वोपरि है।"[1] वयस्कों में पढ़ने का ज्ञान उत्पन्न करने के लिये हमारे लिये यह आवश्यक नहीं है कि हम किसी ऐसी विधि का प्रयोग करें जो वैज्ञानिक दृष्टि से पूर्ण हो, अपितु हमें ऐसी विधि को अपनाना चाहिये जिससे शीघ्र ही उत्तम परिणाम प्राप्त हो सकें।

इस प्रकार की एक विधि की खोज अमेरिका के एक मिशनरी, डाक्टर फ्रैंक लॉबक (Dr. Frank Laubach) ने फिलिपाइन द्वीप समूह के मोरो (Moros) के लोगों को शिक्षित करने के लिये अपनाई थी। उन्होंने पहिले उन पाँच या छः शब्दों को चुना जो कि निरन्तर प्रयोग किए जाते थे। फिर उन्होंने कुछ शब्द और लिये और उनसे [illegible] का निर्माण किया। इस प्रकार उन्होंने [illegible] को [illegible] के प्रत्येक [illegible] को एक दिन में [illegible] का ज्ञान करा दिया। प्रत्येक वयस्क को [illegible] लेकर अपने परिवार के सदस्यों तथा पड़ोसियों को पढ़ाने के लिए कहा गया। [illegible] वर्ष में लानाओ (Lanao) प्रान्त के १२०,००० वयस्कों में से [illegible],०००

1. "Reading is the first commandment even among the [illegible] three R's."—Quoted from Dr. [illegible] Laubach's Speech at the [illegible] Educational Conference held at [illegible] on 2[illegible] & 30 October, 19[illegible].

को न केवल पढ़ने अपितु लिखने का भी ज्ञान करा दिया गया।[१]

डा० लॉबक् ने १६३५, १६३७ तथा १६३८ में भारत पधार कर मराठी, तैलगू, बंगला, हिन्दी, तामिल और गुजराती भाषाओं की अपनी विधि के द्वारा शिक्षा देने के मार्ग का प्रदर्शन किया। पंजाब में मोगा के मिशनरियों ने इस विधि को अपना कर पर्याप्त सफलता प्राप्त की। दुख है कि इस विधि का परीक्षण भारत के अन्य भागों में नहीं किया गया। हमें विश्वास है कि यदि भारत-सरकार डा० लॉबक् द्वारा निर्मित विधि का अनुसरण करे, तो अल्प समय में ही भारत के जन-जन को साक्षर बनाया जा सकता है।

अभी तक सरकार ने वयस्कों की शिक्षा के प्रसार की दिशा में कोई ठोस क़दम नहीं उठाया है। सैयदैन (Saiyidain) ने उचित ही लिखा है: "जो कुछ हम अभी तक नहीं कर पाये हैं, उसमें सबसे पहिले तो यह स्पष्ट सत्य हमारे सामने है कि मात्रा की दृष्टि से अभी तक जो कुछ किया गया है, वह बहुत ही थोड़ा है। हमारे लगभग ८५% देशवासी न तो छपी हुई पुस्तक का एक भी पृष्ठ पढ़ सकते हैं, न वे मतदान को पर्चों पर समझदारी के साथ निशान लगा सकते हैं और न ही रोजमर्रा के छोटे-छोटे हिसाब लगा सकते हैं। अगर संसार का एक ऐसा मानचित्र बनाया जाय, जिसमें साक्षरता की स्थिति दिखाई जाय और पृथ्वी के निरक्षर इलाकों को काला रंगा जाय, तो भारत उस मानचित्र में एक अन्धकार पूर्ण महाद्वीप जैसा दिखाई देगा और यह हमारे लिये बड़ी लज्जा की बात है।[२]" स्पष्ट रूप से निरक्षरता का उन्मूलन करने का दायित्व सरकार पर है। अतः यह आवश्यक है कि सरकार या तो डा० लॉबक् की सफल विधि को अथवा किसी अन्य उपाय को अपनाकर देश की जनता को निरक्षरता केगर्त्त से निकाले।

## २. उपयुक्त पाठ्यक्रम का निर्धारण

उपयुक्त पाठ्य-क्रम का निर्धारण, निरक्षर, अर्द्ध-साक्षर तथा नवसाक्षर प्रौढ़ों और विभिन्न वय-वर्ग के वयस्कों की आवश्यकताओं का सूक्ष्म अध्ययन करने के उपरान्त ही किया जा सकता है, क्योंकि समाज-शिक्षा का उद्देश्य केवल साक्षरता का प्रसार करना ही नहीं है, अपितु वयस्कों का सर्वांगीण विकास भी करना है। अतः पाठ्य-क्रम में उन समस्त विषयों को स्थान देना होगा, जिनसे कि उनका राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक विकास भी हो सके। विषयों को निर्धारित करते समय वयस्कों की अभिरुचियों

1. T. N. Siqueria: *Modern Indian Education*, p. 162.
२. के० जी० सैयदैन: शिक्षा की पुनर्रचना, पृष्ठ १८५

मानसिक प्रवृत्तियो, बौद्धिक स्तरों तथा पर्यावरण को आवश्यकताओं के अनुसार एक नही अपितु अनेक पाठ्य-क्रमों का संगठन करना पड़ेगा, जिससे कि सभी वर्गों के वयस्कों के जीवन का पूर्ण विकास किया जा सके। यद्यपि पाठ्य-क्रम विभिन्न होंगे, पर उनके विषय साधारणतः समान होंगे और वयस्को के बौद्धिक विकास के आधार पर उनका अल्प, गहन अथवा विस्तृत अध्ययन आवश्यक होगा।

उपरिकथित तत्वों को ध्यान मे रखकर किस प्रकार पाठ्य-क्रम का निर्माण किया जाय और उसमे किन विषयो को स्थान दिया जाय, यहाँ इस बात पर विचार कर लेना युक्तिसंगत होगा।

उचित तो यह होगा कि पाठ्य-क्रम के निर्माणकर्त्ता किसी ऐसे देश के पाठ्य-क्रम को अपना आदर्श मान लें, जिसमे निवास करने वाले वयस्क प्रायः उन्हीं परिस्थितियो मे हो, जिनमे भारतीय हैं। इस दृष्टि से दो देशों के पाठ्य-क्रमो को आदर्श रूप मे स्वीकार किया जा सकता है—डेन्मार्क और चीन।

डेन्मार्क के 'पीपुल्स हाई स्कूल'(People's High School in Denmar[illegible]) का पाठ्य-क्रम भारत के लिये उपयुक्त होगा, क्योंकि हमारा देश डेन्मार्क [illegible] समान एक निर्धन तथा कृषि-प्रधान देश है। वहाँ पुरुषों को शीत ऋतु के पाँच मासों मे और स्त्रियों को ग्रीष्म ऋतु के तीन मासो मे शिक्षा दी जाती है। उन्हें अध्ययन समाप्त करने पर किसी परीक्षा म सम्मिलित नहीं होना पड़ता है। प्रत्येक कक्षा म अध्यापन का कार्य किसी परम्परागत गीत से प्रारम्भ होता है। इस गीत का प्रमुख उद्देश्य वयस्कों को राष्ट्रीय आदर्शों से ओत-प्रोत करना होता है। प्रथम वर्ष में इतिहास का शिक्षण व्यावहारिक रूप से, न कि [illegible] ढंग से किया जाता है। इस विषय का शिक्षण करते समय छात्रों की आवश्यकताओं तथा देश की परम्पराओं का उल्लेख किया जाता है। [illegible] होती है। तीसरे वर्ष में विद्यार्थी [illegible] है और वह उनके [illegible] देता है। [illegible] पर पड़ता है। [illegible] साहित्य, [illegible] कथाओं और [illegible] विज्ञान [illegible] किये जाते हैं। फिर आधुनिक [illegible], [illegible] पर [illegible], [illegible]-रचना और [illegible] का शिक्षण किया जाता है।[1]

चीन का पाठ्य-क्रम भारत के लिए और भी अधिक उपयुक्त होगा, [illegible] देशों की [illegible] समान है। [illegible] पाठ्य-क्रम में [illegible] विषयों को स्थान दिया गया है वे हैं—[illegible]

---

[1] T. A. [illegible]

ज्ञान, पढ़ना लिखना, नागरिक शास्त्र, गणित, संगीत, चित्रकला, इतिहास, भूगोल, स्वास्थ्य विज्ञान, कृषि, इंजिनियरिंग, वाणिज्य तथा राष्ट्रीयता, प्रजातन्त्र और सामाजिक न्याय। इनके अतिरिक्त प्रौढ़-विद्यालयों में स्व-शासन, वृक्षारोपण, सड़क-निर्माण, बाँध निर्माण, सहकारी समितियों की स्थापना तथा व्यायाम की भी शिक्षा प्रदान की जाती है। "इस प्रकार चीन में प्रौढ़-शिक्षा, प्राथमिक शिक्षा से सम्बद्ध तथा उसको पूर्ण करने वाली ही नहीं हो गई है, अपितु सामाजिक तथा राष्ट्रीय पुनरुत्थान का साधन भी हो गई है।"[1] प्रौढ़-शिक्षा का ऐसा पाठ्य-क्रम भारत के लिये भी हितकर सिद्ध हो सकता है।

यदि किन्हीं कारणों वश हमारे देश के नेता तथा शिक्षा-विद्‌ डेन्मार्क एवं चीन के पाठ्य-क्रमों को आदर्श मान कर भारतीय वयस्कों के लिये पाठ्य-क्रम का संगठन करने के लिये उद्यत नहीं है, तो एक अन्य उपयुक्त पाठ्य-क्रम का सुझाव प्रस्तुत किया जा सकता है। परन्तु यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि केवल साक्षरता को पाठ्य-क्रम का ध्येय निर्धारित न किया। "साक्षरता न तो शिक्षा का अन्त है, और न प्रारम्भ; यह केवल एक साधन है जिसके द्वारा मनुष्यों तथा स्त्रियों को शिक्षित किया जा सकता है।"[2]

वयस्क-शिक्षा के पाठ्य-क्रम में सर्व प्रथम स्थान पढ़ने और लिखने को दिया जाय। जब वयस्क इनका पर्याप्त ज्ञान उपलब्ध कर लें, तब उनके लिए मातृ-भाषा, गणित, इतिहास, नागरिक शास्त्र, अर्थ-शास्त्र, भूगोल, कृषि, पशु-पालन सामान्य विज्ञान, स्वास्थ्य विज्ञान, साहित्य, प्रारम्भिक चिकित्सा तथा व्यायाम की शिक्षा की व्यवस्था की जाय। स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार इन विषयों के अतिरिक्त कुछ अन्य विषयों की भी शिक्षा दी जाय। वयस्कों के लाभार्थ सुशिक्षित व्यक्तियों द्वारा प्रौढ़-विद्यालयों में व्यस्कों के व्यवसायों तथा उनके लिये लाभप्रद विषयों पर व्याख्यानों की आयोजना की जाय। प्रत्येक वयस्क को किसी कला-कौशल में अवश्य प्रशिक्षित कर दिया जिससे कि वह उसको अपनी आय-वृद्धि का साधन बना सके।

---

1. "Adult education in China has thus become not only a continuation and completion of elementary education but also a means of social and national regeneration." T. N. Siqueria : *op. cit*, p. 166.

2. "Literacy is not the end of education, nor even the beginning. It is only one of the means wherby men and women can be educated." Mahatma Gnandhi's Article in *Harijan*, 31 July, 1937.

## ३. उपयुक्त शिक्षण-पद्धति का निर्धारण

वयस्कों के लिये उपयुक्त शिक्षण-पद्धति का निर्धारण करने के लिये उनके मनोविज्ञान का सूक्ष्म अध्ययन किया जाना आवश्यक है। शिक्षण-पद्धति ऐसी हो जो उन्हें रुचिकर प्रतीत हो तथा उनको शिक्षा-ग्रहण करने के लिये आकर्षित कर सके। हमारे देश के शिक्षा-विशारद इस दिशा में यथेष्ट रूप से सक्रिय हैं और उन्होंने कुछ उपयुक्त शिक्षण-पद्धतियों की खोज भी निकाला है। इनका तथा कुछ अन्य पद्धतियों का विवरण निम्नाङ्कित पंक्तियों में दे रहे।

(१) वर्ण-परिचय पद्धति—इस पद्धति में सबसे पहिले अक्षरों का ज्ञा कराया जाता है। हमारे प्राथमिक विद्यालयों में इसी पद्धति का प्रचलन है।

(२) वाक्य-पद्धति—इस पद्धति मे पहिले दो शब्दों का ज्ञान एक साथ कराया जाता है और फिर उनको संयुक्त करके विभिन्न वाक्यों का रूप दिया जाता है; उदाहरण के लिये 'आ' और 'मा' शब्दों को ले लीजिये। इनसे बनने वाले वाक्य इस प्रकार हो सकते हैं—"आ मा, मा आ, आ मा आ, मा मा मामा आ, मा मामा आ।"

(३) लॉबक् (Laubach) की पद्धति —लॉबक नामक एक अमरीकी मिशनरी ने विश्व के समक्ष एक नवीन वाक्य-पद्धति प्रस्तुत की है। इसमें साधारण बोल-चाल के कुछ शब्दों को लेकर चार्टों की सहायता से सम्पूर्ण वाक्यों की शिक्षा दी जाती है। ( देखिये 'निरक्षरता का उन्मूलन')।

(४) कहानी-पद्धति—इस पद्धति को निकालने का श्रेय श्री संगमलाल अग्रवाल को है। इसमें अक्षरों की बनावट पर कुछ कहानियाँ लिखकर अक्षर-ज्ञान कराया जाता है।

(५) सरस शब्द-पद्धति—यह पद्धति श्री 'पथिक' की है। इसमे गीतो को प्रधानता दी गई है। पहिले उनको गाया जाता है और फिर चार्ट में देखकर उनको पहिचाना और याद किया जाता है। उदाहरणार्थ, "कलम से पढ़ेंगे, कलम से लिखेंगे, कलम से जियेंगे, कलम से बढ़ेंगे।"

सभी इन पद्धतियों के समर्थक हैं और सभी इन पद्धतियों को प्रौढ़ों के लिये उपयुक्त बताते हैं। परन्तु इनमे से किसी भी पद्धति को अपनाते समय यह आवश्यक है कि भारतीय भाषाओं के अक्षरों को कुछ सरल बना दिया जाय जिससे कि वयस्कों को उन्हें पहिचानने, समझने और लिखने में सुविधा हो। एक अन्य सुझाव यह भी है कि सभी भारतीय भाषाओं के लिये रोमन अक्षरों का प्रयोग किया जाय। इससे हमारे देश के निवासी अपनी भाषाओं के साथ-साथ योरोपीय भाषाओं का भी ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे और भाषाओं की भिन्नता के कारण देश की एकता में जो बाधा उपस्थित हो रही है, उसका भी

अन्त हो जायगा। कमाल अतातुर्क (Kemal Ataturk) ने टर्की में रोमन अक्षरों का प्रयोग करके अपने देशवासियों की अज्ञानता का निवारण किया था तथा उनको एकता के सूत्र में आबद्ध किया था।

## ४. अध्यापकों की पूर्ति

आवश्यक योग्यताओं-युक्त अध्यापकों की वाञ्छित संख्या प्राप्त करने की समस्या वस्तुतः कठिन है, पर निरन्तर तथा दृढ़ प्रयास द्वारा इस समस्या पर विजय प्राप्त की जा सकती है। इस दिशा में सर्वप्रथम कार्य यह है कि प्रौढ़-विद्यालयों में नियुक्त किये जाने वाले अध्यापकों को प्रौढ़-शिक्षा की विधियों और प्रौढ़ों के मनोविज्ञान में पूर्ण रूप से प्रशिक्षित किया जाय। इसके अतिरिक्त ग्रामों के प्रौढ़-विद्यालयों में नियुक्त किये जाने वाले शिक्षकों को कृषि, पशु-पालन, कुटीर उद्योगों, प्रारम्भिक चिकित्सा, स्वास्थ्य-विज्ञान, कताई और बुनाई का समुचित ज्ञान करा दिया जाय ताकि ग्रामीण वयस्क उस ज्ञान से लाभान्वित किये जा सकें।

प्रौढ़-विद्यालयों के लिये उपयुक्त शिक्षकों की पूर्ति करने में समय लगेगा। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि जब तक उपयुक्त शिक्षकों की आवश्यक संख्या उपलब्ध न हो जाय, तब तक समाज-शिक्षा के कार्य को स्थगित कर दिया जाय। ऐसा करना वयस्कों और देश के लिये हितकर न होगा। अतः इस अन्तःकालीन समय में स्वयं सेवकों को प्रौढ़-विद्यालयों में अध्यापन-कार्य करने के लिये आमंत्रित किया जाय। महात्मा गांधी के पथ-प्रदर्शन में चम्पारन जिले के ग्रामीण बच्चों को शिक्षा देने का कार्य स्वयं सेवकों द्वारा सुचारु रूप से सम्पन्न किया गया था।[१] उस आदर्श को प्रौढ़ों को शिक्षा देने के लिये भी अपनाया जा सकता है। यदि शिक्षा-संस्थाओं के अध्यापक तथा विद्यार्थी, कार्यालयों के कर्मचारी, एन० सी० सी० तथा ए० सी० सी० के सदस्य, बालचर तथा बालचारिकायें और अन्य निस्स्वार्थ समाज-सेवी राष्ट्रपिता और उनके स्वयं सेवकों के उदाहरण से अनुप्राणित होकर "हर एक पढ़ाये एक" (Each one, Teach one) को अपना सिद्धान्त बना लें, तो प्रौढ़-विद्यालयों के लिये अन्तरिम काल में शिक्षक भी उपलब्ध हो जायेंगे, और अज्ञानान्धकार की जो धारा वयस्कों के मध्य से होकर प्रवाहित हो रही है, उसका रूप भी सरलता पूर्वक परिवर्तित किया जा सकेगा।

१. महात्मा गांधी : 'सत्य के प्रयोग और आत्मकथा', अनुवादक हरिभाऊ उपाध्याय, पृष्ठ ५२१-५२८

सुझाव प्रस्तुत किये जा सकते हैं। इस सम्बन्ध में उत्तर प्रदेश की "नवसाक्षरोपयोगी साहित्य निर्माण-गोष्ठी" ने जो सुझाव दिये हैं, वे अग्रांकित हैं—(१) वर्णन-प्रधान गद्य, (२) काव्य, लोकगीत एवं पहेलियाँ, (३) नाटक, प्रहसन तथा संवाद, (४) कथा-कहानी, (५) पत्र तथा दैनिकी, (६) विनोद वार्ता, (७) वचन।

उपरिलिखित शिक्षा-साधनों की उपादेयता पर शंका नहीं की जा सकती है, परन्तु हमें स्वीकार करना पड़ेगा कि इन साधनों का प्रमुख उद्देश्य केवल वयस्कों का बौद्धिक विकास करना है। यदि समाज-शिक्षा का कार्य यहीं तक सीमित रहेगा, तो वयस्कों के जीवन का सर्वाङ्गीण विकास करना सम्भव नहीं होगा और सर्वाङ्गीण विकास करना ही समाज-शिक्षा का प्रधान लक्ष्य है। अतः वयस्कों को शिक्षा देने के लिये अन्य साधनों को भी प्रयोग करना होगा। इनमें से जो पर्याप्त रूप से प्रभावोत्पादक सिद्ध हो सकते हैं, वे अग्रलिखित हैं—श्रव्य-दृश्य साधन (Audio-Visual Aids), रेडियो, सिनेमा, ग्रामोफ़ोन, नाटक, सामूहिक गीत तथा नृत्य, साहित्यिक तथा वाद-विवाद गोष्ठियाँ, ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक कार्य-क्रम इत्यादि। केन्द्रीय शिक्षा-मंत्रालय ने श्रव्य-दृश्य साधनों के प्रयोग को विशेष रूप से अपनाया है।

### ७. धनाभाव केवल एक बहाना

प्रायः यह तर्क प्रस्तुत किया जाता है कि हमारे निर्धन देश के पास निरक्षर वयस्कों की १८·५ करोड़ की विशाल संख्या को साक्षर बनाने के लिये धन नहीं उपलब्ध हो सकता है। के० जी० सैयदैन इस तर्क को तिरस्कृत करते हुए लिखते हैं : "वास्तव में केवल एक ही प्रकार की दरिद्रता होती है जिसका कोई इलाज नहीं होता है और वह होती है 'उत्साह की दरिद्रता', यदि हम गम्भीरतापूर्वक प्रयत्न करें तो अन्य सभी प्रकार की दरिद्रतायें दूर की जा सकती हैं। यह एक बहुत घिसी-पिटी बात है, फिर भी मैं उसे दोहराना चाहूँगा कि इसी 'निर्धन' देश ने एक ऐसे युद्ध के लिये जिसे छेड़ने में उसका कोई हाथ नहीं था, करोड़ों रुपये खर्च कर दिये थे। इन परिस्थितियों को देखते हुए इस बात का क्या कारण हो सकता है कि शिक्षा के क्षेत्र में भी, जो शान्ति और मानवीय गुणों का मूल आधार है, इतना ही बड़ा प्रयास न किया जा सके ? मेरा विश्वास है कि राष्ट्र के पुनर्निर्माण की बड़ी-बड़ी समस्याओं को सङ्कुचित वित्तीय दृष्टिकोण से नहीं देखना चाहिये। मेरी राय में समस्या पर विचार करने का सही तरीका यह नहीं है कि हम एक अच्छी शिक्षा-व्यवस्था का या एक अच्छी स्वास्थ्य नीति चलाने का खर्च बर्दाश्त नहीं कर सकते बल्कि हमें इस तरह सोचना चाहिये कि इन 'चीज़ों' के *बिना क्या* हमारा काम चल सकता है।'

## ५. उपयुक्त साहित्य का निर्माण

उपयुक्त साहित्य के अभाव के कारण समाज-शिक्षा का कार्य साक्षरता के स्तर पर और अपने व्यापक अर्थ में अति मन्द गति से चल रहा है। अतः इस बात की आवश्यकता है कि ऐसी पुस्तकों, चार्टों, समाचार-पत्रों, मासिक तथा साप्ताहिक पत्रिकाओं, चित्रों आदि की व्यवस्था की जाय, जो वयस्कों की रुचि के अनुकूल हों।[1] इस कार्य को विद्वान् लेखकों की सहायता से पूर्ण किया जा सकता है। इस हेतु उन्हें वयस्कों के लिये उपयुक्त पुस्तकों तथा पुस्तिकाओं की रचना करने के लिये प्रत्येक सम्भव विधि से प्रोत्साहित किया जाय। चित्र-पूर्ण समाचार-पत्र एवं पत्रिकायें प्रकाशित की जायें। एक ऐसी मासिक पत्रिका का प्रकाशन किया जाय, जिसमें खेल, स्वास्थ्य, कृषि तथा विश्व से सम्बन्धित समाचार हों, क्योंकि नवसाक्षरों के लिये इस प्रकार की पत्रिका की अत्यधिक आवश्यकता है। हमारे देश की प्रायः सभी राज्य सरकारें इस दिशा में क्रियाशील हैं।[2]

प्रौढ़ों तथा नवसाक्षरों के लिये साहित्य के निर्माण के सम्बन्ध में उत्तर-प्रदेश की "नवसाक्षरोपयोगी साहित्य निर्माण गोष्ठी की आख्या"[3] में कुछ महत्वपूर्ण सुझाव दिये गये हैं। उसमें उल्लेख किया गया है कि इस साहित्य का निर्माण करते समय पाँच बातों का ध्यान रखा जाय—(१) समाज-शिक्षा के उद्देश्य, (२) आयु-भेद, (३) लिंग-भेद, (४) क्षेत्र-भेद, और (५) भाषा तथा आवश्यकता।

## ६. शिक्षा के उपयुक्त साधन

प्रौढ़ों को ज्ञान प्रदान करने के लिए विविध प्रकार के उपयुक्त साधन हैं

---

1. "The work of Social Education is greatly handicapped—both at its Literacy stage and in its wider sense—by the paucity of suitable reading materials, graded to appeal to the adults. There is urgent need for producing large number of booklets, folders, charts, journals, newspapers, wall papers and other illustrated materials which will capture the adults' interest."—K. G. Saiyidain, *Proceedings of the 16th Meeting of the Central Advisory Board of Education in India*, Appendix C (4)
2. *Teachers' Handbook of Social Education*, p. 14.
3. *Report of the Literary Workshop on the Production of Literature for Neoliterates*, [illegible].

सुझाव प्रस्तुत किये जा सकते हैं। इस सम्बन्ध में उत्तर प्रदेश की "नवसाक्षरोपयोगी साहित्य निर्माण-गोष्ठी" ने जो सुझाव दिये हैं, वे अग्रांकित हैं—(१) वर्णन-प्रधान गद्य, (२) काव्य, लोकगीत एवं पहेलियाँ, (३) नाटक, प्रहसन तथा संवाद, (४) कथा-कहानी, (५) पत्र तथा दैनिकी, (६) विनोद वार्ता, (७) वचन।

उपरिलिखित शिक्षा-साधनों की उपादेयता पर शंका नहीं की जा सकती है, परन्तु हमें स्वीकार करना पड़ेगा कि इन साधनों का प्रमुख उद्देश्य केवल वयस्कों का बौद्धिक विकास करना है। यदि समाज-शिक्षा का कार्य यहीं तक सीमित रहेगा, तो वयस्कों के जीवन का सर्वाङ्गीण विकास करना सम्भव नहीं होगा और सर्वाङ्गीण विकास करना ही समाज-शिक्षा का प्रधान लक्ष्य है। अतः वयस्कों को शिक्षा देने के लिये अन्य साधनों को भी प्रयोग करना होगा। इनमें से जो पर्याप्त रूप से प्रभावोत्पादक सिद्ध हो सकते हैं, वे अग्रलिखित हैं—श्रव्य-दृश्य साधन (Audio-Visual Aids), रेडियो, सिनेमा, ग्रामोफ़ोन, नाटक, सामूहिक गीत तथा नृत्य, साहित्यिक तथा वाद-विवाद गोष्ठियाँ, ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक कार्य-क्रम इत्यादि। केन्द्रीय शिक्षा-मंत्रालय ने श्रव्य-दृश्य साधनों के प्रयोग को विशेष रूप से अपनाया है।

### ७. धनाभाव केवल एक बहाना

प्रायः यह तर्क प्रस्तुत किया जाता है कि हमारे निर्धन देश के पास निरक्षर वयस्कों की १८·५ करोड़ की विशाल संख्या को साक्षर बनाने के लिये धन नहीं उपलब्ध हो सकता है। के० जी० सैयदैन इस तर्क का तिरस्कृत करते हुए लिखते हैं: "वास्तव में केवल एक ही प्रकार की दरिद्रता होती है जिसका कोई इलाज नहीं होता है और वह होती है 'उत्साह की दरिद्रता', यदि हम गम्भीरतापूर्वक प्रयत्न करें तो अन्य सभी प्रकार की दरिद्रतायें दूर की जा सकती हैं। यह एक बहुत घिसी-पिटी बात है, फिर भी मैं उसे दोहराना चाहूँगा कि इसी 'निर्धन' देश ने एक ऐसे युद्ध के लिये जिसे छेड़ने में उसका कोई हाथ नहीं था, करोड़ों रुपये खर्च कर दिये थे। इन परिस्थितियों को देखते हुए इस बात का क्या कारण हो सकता है कि शिक्षा के क्षेत्र में भी, जो शान्ति और मानवीय गुणों का मूल आधार है, इतना ही बड़ा प्रयास न किया जा सके? मेरा विश्वास है कि राष्ट्र के पुनर्निर्माण की बड़ी-बड़ी समस्याओं को संकुचित वित्तीय दृष्टिकोण से नहीं देखना चाहिये। मेरी राय में समस्या पर विचार करने का सही तरीका यह नहीं है कि हम एक अच्छी शिक्षा-व्यवस्था या एक अच्छी स्वास्थ्य-नीति चलाने का खर्च बर्दाश्त नहीं कर सकते बल्कि हमें इस तरह सोचना चाहिये कि इन 'चीज़ों' के बिना क्या हमारा काम चल सकता है।'

यदि इस बात को स्वीकार किया जाता है कि कोई भी देश बहुत बड़ी हद तक अस्वस्थ और जाहिल और सांस्कृतिक दृष्टि से दरिद्र नहीं रह सकता है, तो इसके लिये धन जुटाना सरकार, वित्त-विभाग और राष्ट्रीय अर्थतंत्र की योजना बनाने वालों की ज़िम्मेदारी है।''[१]

## ८. संयुक्त उत्तरदायित्व

समाज-शिक्षा की महान् समस्या का उत्तरदायित्व केन्द्रीय सरकार, राज्य-सरकारों अथवा किसी अन्य संस्था पर नहीं रखा जा सकता है। इसका उत्तरदायित्व तो राज्य, विभिन्न संस्थाओं तथा इस देश के निवासियों को संयुक्त रूप से अपने ऊपर लेना पड़ेगा। तभी इस समस्या का समाधान किया जा सकेगा। ''प्रत्यक्ष रूप से यह एक ऐसा उत्तरदायित्व है, जिसे न तो शिक्षा-विभाग ही पूर्ण कर सकता है और न सम्पूर्ण शासन-व्यवस्था ही। इसके लिये सरकारी एवं गैरसरकारी सभी संस्थाओं तथा सद्भावना और सामाजिक चेतन रखने वाले उन सभी व्यक्तियों के मध्य, जो भारत का कल्याण चाहते हैं, घनिष्ठतम एवं हार्दिक सहयोग आवश्यक है। अभी हमारे समक्ष इतना और इतने विविध प्रकार का कार्य करने को पड़ा है कि जो भी इस सेवा-दल में सम्मिलित होना चाहे, उसके लिये इसमें स्थान है—छात्र, शिक्षक, धनी व्यक्ति, राजनीतिक कार्यकर्त्ता, लेखक, श्रमिक, शिल्पी, व्यवसायों में कार्य करने वाले मनुष्य, सभी के लिये।''[२]

उपरिकथित विषय-वस्तु का पर्यवेक्षण करके हम निस्संकोच भाव से कह सकते हैं कि समाज शिक्षा की सभी समस्याओं का समाधान किया जा सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि हम समाज-शिक्षा के प्रसार के प्रति ढीला-ढाला या संकुचित दृष्टिकोण वाला रवैया न अपना कर उत्साह और आदर्शवादिता की लहर के सहारे अपने उद्देश्य को पूर्ण करने का प्रयास करें।

१. के० जी० सैयदैन : शिक्षा की पुनर्रचना, पृष्ठ १८९-१९०

2. It is obviously a responsibility which neither the Education Department nor the Government machinery as a whole can take on by itself; it needs the closer and most cordial co-operation of all agencies, official and non-official and of all individuals of goodwill and social sense who are interested in the welfare of India. There is so much work to be done and it is of such varied kinds that there is scope for everyone who cares to join the cavalcade of service— students, teachers, men of leisure, political leaders, writers, labourers, craftsmen, professional men, everybody.''—K. G. Saiyidain : *op. cit.*, p. 247.

## प्रौढ़ तथा समाज-शिक्षा का इतिहास

[ समाज-शिक्षा के इतिहास पर दृष्टि डालने से पूर्व हमें यह स्मरण रखना आवश्यक है कि १६४६ से जिसे हम समाज-शिक्षा कहते हैं, उसे उस समय से पूर्व प्रौढ़-शिक्षा की संज्ञा दी जाती थी। ]

बीसवीं शताब्दी के उषा-काल में भारतीयों ने एक नवीन युग में प्रवेश किया था। राष्ट्रीय आन्दोलन ने जन-जन के अन्तर में स्वदेश-प्रेम की भावना को प्रस्फुटित कर दिया था। देश के कर्मठ नेताओं ने विदेशी सरकार से राष्ट्रीय शिक्षा की माँग की थी। वे अपने शासकों को देश के प्रत्येक कोने में शिक्षा का प्रसार करने के लिये विवश कर रहे थे। उन्होंने न केवल बच्चों अपितु प्रौढ़ों को भी ज्ञान से आलोकित करने का निश्चय किया था। फलस्वरूप १६१० से ही यत्र-तत्र प्रौढ़-शिक्षा के लिये प्रयास प्रारम्भ हो गये थे। परन्तु १६२१ तक प्रौढ़-शिक्षा के प्रसार के लिये किसी निश्चित योजना को कार्यान्वित नहीं किया गया था। इसी आधार पर हम प्रौढ़-शिक्षा के इतिहास का विहंगावलोकन करेंगे।

### १६२१ से पूर्व प्रौढ़-शिक्षा

१६२१ से पूर्व प्रौढ़-शिक्षा के लिये किये गये प्रयास प्रायः नगण्य थे। निस्सन्देह कुछ रात्रि-विद्यालयों का देश के विभिन्न भागों में निर्माण किया गया था, परन्तु इनका उद्देश्य फ़ैक्ट्रियों आदि में कार्य करने वाले उन बच्चों को प्राथमिक शिक्षा देना था, जिन्हें दिन में अध्ययन करने के लिये समय नहीं मिलता था। कुछ वयस्क भी उनमें शिक्षा ग्रहण करते थे, परन्तु विद्यालयों का प्रमुख ध्येय उन्हें शिक्षा देना नहीं था।

भारतीय शिक्षा-आयोग ( Indian Education Commission ) की रिपोर्ट के अनुसार बम्बई प्रान्त में १८८१-८२ में १३४ वर्नाक्यूलर रात्रि-विद्यालय थे, जिनमें ३,६१६ छात्र शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। इनके अतिरिक्त दिवा-विद्यालयों (Day Schools) से सम्बद्ध २२३ रात्रि-विद्यालय थे, जिनमें ४,६६२ वयस्क उपस्थित थे। इन वयस्क-विद्यालयों में साधारण लिखना, पढ़ना और अंकगणित को शिक्षा दी जाती थी। इन विद्यालयों की लोकप्रियता एवं माँग में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही थी। इनकी सफलता देखकर आयोग ने सिफ़ारिश की कि देश में सभी सम्भव स्थानों पर रात्रि-विद्यालयों का संचालन किया जाय। परन्तु दुर्भाग्यवश इस ओर रंच मात्र भी ध्यान नहीं दिया गया और वयस्क-साक्षरता की प्रगति न हो सकी। यदि सरकार ने आयोग का

शुभाव स्वीकार करके मंत्रालित रात्रि-विद्यालय स्थापित कर दिये होते, तो आज यह देश निरक्षरता की कालिमा से मुक्त होता।

१९०१-०२ में केवल मद्रास, बम्बई और बंगाल में रात्रि-विद्यालय संचालित थे, जिनमें प्रौढ़-शिक्षा का प्रबन्ध था। परन्तु सरकार की उपेक्षा के फलस्वरूप ये पल्लवित न हो सके और १९१७ तक इनकी संख्या में निरन्तर ह्रास होता चला गया।

१९१९ के 'भारत-सरकार-अधिनियम' (Government of India Act) द्वारा भारतीयों को अति विशाल जनसंख्या में मतदान का अधिकार प्राप्त हो गया। अतः प्रौढ़-शिक्षा में जन-साधारण की रुचि उत्पन्न होना स्वाभाविक था, क्योंकि यह अनुभव किया गया कि शिक्षा के अभाव में भारतीय अपने मताधिकार का उचित उपयोग नहीं कर सकेंगे। इस परिवर्तित दृष्टिकोण के परिणामस्वरूप देश में वयस्क-साक्षरता के लिये क्रियात्मक पग उठाये गये। सरकार ने भी आर्थिक सहायता देकर इन पुनीत कार्य में योग दिया। परिणामतः संयुक्त प्रान्त, पंजाब, बम्बई, मध्य प्रान्त, बंगाल और मद्रास में रात्रि-विद्यालयों तथा रात्रि-कक्षाओं का आयोजन किया गया।

## १९२१ से १९३७ तक

इस काल की एक प्रमुख विशेषता थी प्रौढ़-शिक्षा की योजना को कार्यान्वित करना। इसका श्रेय भारतीय मंत्रियों को है, जिन्होंने भारतीय शिक्षा के इतिहास में एक नवीन अध्याय प्रारम्भ किया। यद्यपि उनके प्रयास अनियमित एवं अपर्याप्त थे, फिर भी उन्होंने अपने देशवासियों और सरकार को ऐसे क्षेत्र में कार्य करने के लिए अनुप्राणित किया, जहाँ शिक्षा-प्रसार की अत्यधिक आवश्यकता थी।

१९२१ में 'भारत-सरकार-अधिनियम' कार्यान्वित कर दिया गया और हस्तान्तरित विषयों को जन-प्रिय मंत्रीगणों के हाथों में सौंप दिया गया। शिक्षा भी एक हस्तान्तरित विषय था। भारतीय मंत्रियों ने प्रौढ़-शिक्षा की समस्या में अत्यधिक रुचि व्यक्त की। फलस्वरूप १९३७ तक भारत के विभिन्न प्रान्तों में वयस्क-साक्षरता को लोकप्रिय बनाने के लिये अनवरत परिश्रम किया गया। १९२७ तक सम्पूर्ण भारत में ११,१२८ स्कूल और कक्षायें पुरुषों के लिये तथा ४७ स्त्रियों के लिये संचालित की जा चुकी थीं। इनमें पुरुषों एवं स्त्रियों की संख्या क्रमशः २८९,००१ और १,३५१ थी। परन्तु प्रौढ़-शिक्षा ने समतल धरातल पर अपना अभियान प्रारम्भ किया ही था कि १९३० के विश्वव्यापी आर्थिक संकट ने उसके मार्ग को अवरुद्ध कर दिया। धनाभाव में

वयस्क-साक्षरता की ओर से सरकार और जनता दोनों ने मुँह मोड़ लिया। फलतः प्रौढ़-विद्यालयों की संख्या क्षीण होती चली गई। १९३७ में इस प्रकार के पुरुष-विद्यालयों की संख्या २,०१६ और स्त्री-विद्यालयों की ११ रह गई। उनमें क्रमशः ६२,६६१ पुरुषों तथा ९४६ स्त्रियों को साक्षर बनाया जा रहा था।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि १९३७ तक प्रौढ़-शिक्षा के लिये जो चेष्टायें की गईं, उनका कोई महत्वपूर्ण परिणाम नहीं निकला। परन्तु यह बात सर्वमान्य है कि उन चेष्टाओं ने वयस्क-शिक्षा की नींव डाल दी और उसी नींव पर उपयुक्त परिस्थितियों के उत्पन्न हो जाने पर प्रौढ़-शिक्षा के भवन का निर्माण किया गया, जिसकी छाया में असंख्यों निरक्षर वयस्क साक्षर बन कर देश के बुद्धिमान नागरिक और समाज के लाभप्रद सदस्य बन सके।

## १९३७ से १९४७ तक

१९३७ में कांग्रेसी मंत्रिमंडलों के हाथ में स्वायत्त शासन की बागडोर आ जाने से जन-शिक्षा के भाग्य ने पलटा खाया। शिक्षा-प्रसार के अपने कार्यक्रम के अन्तर्गत कांग्रेसी मंत्रिमंडलों में प्रौढ़-शिक्षा को वरासन पर प्रतिष्ठित किया। यह देख कर केन्द्रीय सरकार ने भी १९३९ में 'वयस्क-शिक्षा-समिति' की नियुक्ति करके प्रथम बार वयस्क-शिक्षा में अपनी रुचि प्रकट की।

कांग्रेसी मंत्रिमंडलों ने विभिन्न प्रान्तों में प्रौढ़ों को साक्षर बनाने के लिये जो प्रयास किये उनका संक्षिप्त परिचय नीचे दिये जा रहा है :

आसाम :—इस प्रान्त में वयस्कों को साक्षर बनाने का कार्य शिक्षा-विभाग को सौंपा गया। इस विभाग ने अपने अधीनस्थ कार्यालयों के सहयोग से साक्षरता एवं साक्षरता के उपरान्त भी शिक्षा की व्यवस्था की। एक वर्ष की अवधि में ही १८४० प्रौढ़-शिक्षा-केन्द्र खोले गये और आगामी दो वर्षों में २,१६,७११ प्रौढ़ों को साक्षर बनाया गया।

बंगाल :—इस प्रान्त में सरकार ने ग्राम-सभाओं द्वारा संचालित प्रौढ़-पाठशालाओं को विकसित करके तथा आर्थिक सहायता देकर प्रौढ़-शिक्षा की व्यवस्था की। यहाँ १९३९ में प्रौढ़-शिक्षा के लिये १०,००० विद्यालय थे। १९४२ में यह संख्या बढ़कर २२,५७४ हो गई। इनमें क्रमशः १,५०,००० और ५,३०,१७८ प्रौढ़ साक्षर बनाये जा रहे थे।

बिहार :—इस प्रान्त में प्रौढ़-शिक्षा का सबसे अधिक विस्तार हुआ। यहाँ एक ही वर्ष में ४,५०,००० वयस्क साक्षरता की परीक्षा में सम्मिलित हुए।

तक

में प्रौढ़-शिक्षा को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है ।
ता (Adult Education) को समाज-शिक्षा (Social Edu-
देकर उसके रूप को अभिवर्द्धित तथा परिवर्तित किया गया ।
या कि निरक्षर वयस्को को साक्षर बनाने के साथ-साथ
शिक्षा प्रदान की जाय । इस प्रकार समाज-शिक्षा के अन्त-
दृष्टिकोण को अति व्यापक एवं विस्तृत बना दिया गया ।
योजना—निरक्षर वयस्कों में नागरिकता के गुणों का विकास
र्त्तव्यों तथा अधिकारों के प्रति जागरुक करने और उनमें
ने के लिये माननीय केन्द्रीय शिक्षा-मंत्री ने ३१ मई १९४८
गये प्रेस-सम्मेलन के समक्ष अपनी 'द्वादश-सूत्रीय योजना'

-मन्त्रियों का सम्मेलन—फरवरी, १९४९ में दिल्ली में
यों का एक सम्मेलन आयोजित किया गया, जिसमें द्वादश
वचार विनिमय किया गया । तदुपरान्त यह कार्य-क्रम बनाया
अवधि में १२ से ५० वर्ष तक की अवस्था वाले निरक्षर
से कम ५० प्रतिशत को साक्षर बना दिया जाय । परन्तु
सरकारों की आर्थिक कठिनाइयों के कारण इस कार्य-क्रम
क्या जा सका ।
-क्रम—समाज-शिक्षा के अन्तर्गत एक 'पंच-मुखी कार्य-क्रम'
सके उद्देश्य हैं—(१) साक्षरता-प्रसार,(२) स्वास्थ्य तथा सफाई
का प्रसार, (३) वयस्क व्यक्तियों के आर्थिक स्तर की उन्नति,
की भावना, अधिकारों एवं कर्त्तव्यों के प्रति जनता की
५) समाज एवं व्यक्ति की आवश्यकता के अनुरूप स्वस्थ मनो-
।
यि योजना—इस योजना में समाज-शिक्षा के लिये ७·५
ीकृति दी गई । अनेकों राज्यों ने सामाजिक सेवा-कार्य की

प्रणालियों में प्रस्तावित सुधारों को कार्यान्वित करने के साथ-साथ विभिन्न स्तरों पर समाज-शिक्षा की कक्षाओं का विस्तार किया जायगा। राज्य-सरकारों ने साक्षरता एवं समाज-शिक्षा केन्द्रों के उद्घाटन, समाज शिक्षा कार्यकर्ताओं एवं संगठन कर्त्ताओं के प्रशिक्षण, पुस्तकालय, साहित्य-प्रकाशन, दृश्य-श्रव्य शिक्षा की व्यवस्था और जनता कालिजों की स्थापना की योजना बनाई है।

द्वितीय योजना में समाज शिक्षा के लिये ५ करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई है। इसके अतिरिक्त १० करोड़ रुपया राष्ट्रीय विस्तार एवं सामुदायिक विकास-योजनाओं द्वारा समाज-शिक्षा पर व्यय किया जायगा।

नवीनतम कार्य—उच्च कर्मचारियों को समाज-शिक्षा का प्रशिक्षण देने तथा प्रमुख समस्याओं पर उपयुक्त अनुसंधान करने के लिये दिल्ली में एक 'राष्ट्रीय मूलभूत शिक्षा केन्द्र' की स्थापना की गई है।

'केन्द्रीय चलचित्र संग्रहालय' में शिक्षा एवं संस्कृति सम्बन्धी विभिन्न विषयों पर ४,६७४ चलचित्र आदि हैं, जो संग्रहालय की सदस्य शिक्षा-संस्थाओं को निःशुल्क दिये जाते हैं। १,०४५ शिक्षा-संस्थान एवं सामाजिक संगठन इस संग्रहालय के सदस्य हैं। 'श्रव्य-दृश्य शिक्षा' शीर्षक एक त्रैमासिक पत्रिका भी प्रकाशित की जाती है।

केन्द्रीय एवं राज्य-सरकारें श्रव्य-दृश्य कार्यकर्त्ताओं की प्रशिक्षण गोष्ठियों का भी आयोजन करती रहती हैं। एक 'केन्द्रीय श्रव्य-दृश्य संस्था' स्थापित की जा चुकी है। यह संस्था प्रशिक्षण, उत्पादन तथा अनुसंधान-केन्द्र के रूप में कार्य करने के साथ-साथ, श्रव्य-दृश्य शिक्षा सम्बन्धी जानकारी भी उपलब्ध करती है।

## सारांश

राष्ट्रीय जीवन में समाज-शिक्षा का स्थान—राष्ट्रीय जीवन में समाज-शिक्षा का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। केवल राजनीतिक स्वतंत्रता किसी भी समाज या राष्ट्र के लिये 'उत्तम जीवन' का आश्वासन नहीं दे सकती है। वास्तव में जब तक जनता 'निरन्तर सतर्कता' के रूप में अपनी राजनीतिक स्वतंत्रता का मूल्य चुकाने के लिये तैयार न हो, तब तक वह इस स्वतंत्रता को भी सुरक्षित नहीं रख सकती है और इस सतर्कता के लिये उचित समाज शिक्षा की आवश्यकता है।

प्रौढ़-शिक्षा का अर्थ एवं परिभाषा—"प्रौढ़-शिक्षा में मोटे तौर पर वह

सभी औपचारिक तथा अनौपचारिक शिक्षा सम्मिलित है, जो प्रौढ़ों को दी जाती है।"

**समाज-शिक्षा का अर्थ एवं परिभाषा**—समाज-शिक्षा एक नियन्त्रित अनुभव है जो व्यक्तियों की सामूहिक कार्यों मे भाग लेने की क्षमता में वृद्धि करता [illegible] समाज-शिक्षा नागरिकता का उचित मूल्यांकन करने की चेतना एवं भावना [illegible] न्म देती है; व्यक्तियों के कर्त्तव्यों तथा अधिकारों का स्पष्टीकरण [illegible] है।

**[illegible]माज-शिक्षा का कार्यक्रम**—समाज-शिक्षा के पंचमुखी कार्य-क्रम के उद्देश्य [illegible]) साक्षरता का प्रसार, (२) स्वास्थ्य की शिक्षा, (३) वयस्कों की [illegible] उन्नति, (४) वयस्कों में अधिकारों तथा कर्त्तव्यों की भावना का [illegible] और (५) मनोरंजन की व्यवस्था।

**[illegible]ज-शिक्षा के उद्देश्य**—समाज-शिक्षा के उद्देश्य हैः—(१) अधिकारों [illegible] व्यों की भावना का विकास, (२) जनतंत्र के प्रति प्रेम, (३) देश तथा [illegible] समस्याओं का ज्ञान, (४) संस्कृति के प्रति गौरव, (५) भारतीय संस्कृति से परिचय, (६) नैतिक मूल्यों से परिचय, (७) ज्ञान का प्रसार, (८) आर्थिक उन्नति, (९) शिक्षा की निरन्तरता, और (१०) सहयोग की भावना।

**समाज-शिक्षा के लक्ष्य**—व्यक्तिगत लक्ष्य—(१) वयस्कों का मानसिक विकास, (२) वयस्कों की व्यावसायिक क्षमता का विकास, (३) वयस्कों का शारीरिक विकास, (४) वयस्कों की सामाजिक कुशलता का विकास, (५) वयस्कों का सांस्कृतिक विकास, और (६) वयस्कों का आत्म-विकास। समाजगत लक्ष्य हैं—(१) सामाजिक एकता का विकास, (२) राष्ट्रीय साधनों की सुरक्षा तथा उन्नति, (३) सहकारी समुदायों तथा संस्थाओं का संगठन, और (४) सामाजिक आदर्श का समावेश।

**समाज-शिक्षा की आवश्यकता के कारण**—(१) वैयक्तिक आवश्यकता, (२) अर्द्ध शिक्षित वयस्कों की आवश्यकता, (३) पूर्ण शिक्षा की आवश्यकता (४) मनोरंजन की आवश्यकता, (५) राजनीतिक आवश्यकता, (६) सामाजिक आवश्यकता, (७) आर्थिक आवश्यकता, और (८) देश की आवश्यकता।

**समाज-शिक्षा की समस्यायें**—(१) निरक्षरता की समस्या, (२) पाठ्यक्रम की समस्या, (३) शिक्षण पद्धति की समस्या, (४) अध्यापकों की समस्या, (५) साहित्य की समस्या, (६) शिक्षण-साधनों की समस्या, (७) धन की समस्या, और (८) उत्तरदायित्व की समस्या।

**समस्याओं का समाधान**—समस्याओं का समाधान करने के उपायः—(१) निरक्षरता का उन्मूलन, (२) उपयुक्त पाठ्य-क्रम का निर्धारण, (३) उप-

युक्त शिक्षण-पद्धति का निर्धारण, (४) पाठ्यक्रमों की पूर्ति, (५) उपयुक्त साहित्य का निर्माण, (६) शिक्षा के उपयुक्त साधन, (७) धनाभाव केवल दूर करना, और (८) समुचित उत्तरदायित्व।

प्रौढ़ तथा समाज-शिक्षा का इतिहास—१९२१ से पूर्व:—१९१७ से पूर्व प्रौढ़ शिक्षा के लिए प्रायः कुछ भी नहीं किया गया था। १९०२ तक केवल मद्रास, बम्बई और बंगाल में रात्रि-विद्यालय संचालित थे।

१९२१ से १९३७ तक—१९२१ के पश्चात् प्रौढ़-शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया गया। इसके लिये भारतीय मंत्री प्रशंसा के पात्र हैं।

१९३७ से १९४७ तक—१९३७ में प्रान्तों में कांग्रेसी मन्त्रिमंडलों का निर्माण होने के उपरान्त विभिन्न प्रान्तों में प्रौढ़ शिक्षा के लिये अनेकों कार्य किये गये। आसाम में प्रौढ़-शिक्षा का कार्य शिक्षा-विभाग को सौंपा गया। बंगाल में ग्राम-सभाओं द्वारा प्रौढ़-पाठशालाओं का प्रबन्ध किया गया। बिहार में प्रौढ़ शिक्षा का सबसे अधिक विस्तार हुआ, हजारों ग्रामों में पुस्तकालय तथा वाचनालय खोले गये। बम्बई में नगर के प्रौढ़ों को साक्षर बनाने के लिये विशेष रूप से प्रयास किया गया। उड़ीसा सरकार ने वयस्क शिक्षा-कार्य के लिये १५,००० रुपये का अनुदान दिया। पंजाब में बिना मूल्य लिये प्रौढ़ों को पुस्तकें बाँटी गईं।

१९४७ से १९६० तक—द्वादश सूत्रीय योजना और पंचमुखी कार्य-क्रम का निर्माण किया गया। प्रथम योजना में ७.५ करोड़ और द्वितीय योजना में ५ करोड़ धन निर्धारित किया गया। नवीनतम कार्यों में 'केन्द्रीय चलचित्र संग्रहालय', 'राष्ट्रीय मूलभूत शिक्षा केन्द्र' एवं 'केन्द्रीय श्रव्य-दृश्य संस्था' प्रमुख हैं।

## सहायक पुस्तकों की सूची


1. K. G. Saiyidain : *Problems of Educational Reconstruction.*
2. S. N. Mukerji : *Education in India, Today and Tomorrow.*
3. Humayun Kabir : *Education in New India.*
4. J. Gillin : *The Ways of Men.*
5. N. A. Toothi : *The Vaishnavas of Gujarat.*
6. T. N. Siqueira : *Modern Indian Education.*
7. *Proceedings of the 19th Meeting of the Central Advisory Board of Education in India.*

8. *Teachers' Handbook of Social Education.*
9. *India*, 1958
१० महात्मा गाँधी : सत्य के प्रयोग और आत्म कथा, अनुवादक हरिभाऊ उपाध्याय
११. सीताराम जायसवाल : प्रौढ़-शिक्षा प्रसार
१२. के० जी० सैयदेन : शिक्षा की पुनरंचना
१३. नवासाक्षरोपयोगी साहित्य निर्माण गोष्ठी की आख्या, शिक्षा विभाग, उत्तर-प्रदेश, १९५८
१४. प्रथम पंचवर्षीय योजना
१५. द्वितीय पंचवर्षीय योजना
१६. आज़ादी का बारहवाँ वर्ष
१७. भारत, १९६०.

## TEST QUESTIONS

1. Trace briefly the history of Social Education Movement in India and indicate the more important phases through which it has passed.
2. Discuss the need and importance of suitable literature for neo-literates in India.
3. What should be the main aims of Social Education in a secular democratic society ? Discuss with special reference to India.
4. Discuss the causes of the slow growth of Social Education in India and give suggestions to remove them.
5. Define 'Social Education'. What are the main causes that have hindered its progress ?
6. "Social Education is the panacea for all social ills." What curriculum would you prescribe for Social Education to fulfil this purpose ?
7. What do you understand by 'Adult Education' ? Discuss its need in India.
8. Discuss the need and importance of Social Education in the national life of India.
9. Give a brief account of the purposes and agencies of Social Education.
10. Why was the term "Adult Education" changed to "Social Education". What is the significance of this change ?

—: o :—

अध्याय ५

# पाठ्य-क्रम का विभिन्नीकरण[1]

## ब्रिटिश शासन-काल में माध्यमिक शिक्षा

ब्रिटिश शासन-काल में माध्यमिक शिक्षा का संगठन देश के शासकों की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिये किया गया था। इस शिक्षा का उद्देश्य ऐसे व्यक्तियों का निर्माण करना था जो अंग्रेजों के राजकीय तथा व्यापारिक कार्यालयों में निम्न श्रेणी के लिपिकों का स्थान कुशलता पूर्वक ग्रहण कर सकें। परिणामतः माध्यमिक शिक्षा के साहित्यिक पक्ष पर विशेष बल दिया गया। माध्यमिक विद्यालयों के केवल दो उद्देश्य थे। शासकों की आवश्यकताओं की पूर्ति करना तथा विद्यार्थियों को विश्वविद्यालय में प्रवेश प्राप्त करने की योग्यता प्रदान करना। ये विद्यालय छात्रों को केवल संस्कारी शिक्षा (Liberal Education) प्रदान करते थे और उनको प्राविधिक (Technical) तथा व्यावसायिक (Vocational) शिक्षा से कोई प्रयोजन नहीं था। उनका अधिकांश ध्यान अंग्रेजी की शिक्षा पर केन्द्रित रहता था और अंग्रेजी ही शिक्षा का माध्यम थी। हाई स्कूल की परीक्षा में सम्मिलित होने वाले प्रत्येक छात्र को चार अनिवार्य विषय (अंग्रेजी, गणित, इतिहास या भूगोल और एक आधुनिक भारतीय भाषा) तथा कम से कम दो, और अधिक से अधिक चार वैकल्पिक विषयों का अध्ययन करना पड़ता था। इन वैकल्पिक विषयों में संस्कृत, फ़ारसी, अरबी, चित्र-कला, विज्ञान आदि थे, पर इनमें से एक भी विषय प्राविधिक अथवा व्यावसायिक नहीं था।

1. Diversification of Courses.

सारांश में माध्यमिक शिक्षा का संगठन केवल अंग्रेज शासकों की प्रशासकीय आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिये किया गया था। परन्तु समय की गति के साथ भारत में शिक्षा का जो प्रसार हुआ, उस अनुपात में पदों की वृद्धि नहीं हुई। मेट्रीकुलेशन परीक्षा में उत्तीर्ण होने वाले छात्रों में से लगभग ५० अथवा ५५ प्रतिशत विद्यार्थी उच्च शिक्षा ग्रहण करने के लिये किसी कॉलिज में प्रवेश ले लेते थे। शेष विद्यार्थी नौकरियों की खोज में दफ्तरों के चक्कर लगाते थे। उनमें से जिन पर विधाता की कृपा हो जाती थी, उन्हें कोई छोटी नौकरी मिल जाती थी, परन्तु शेष को निराशा के दावानल में भस्म होना पड़ता था। परिणामतः शनैः शनैः देश में बेकारी का प्रकोप बढ़ता चला गया।

## स्वतन्त्रता-प्राप्ति के उपरान्त माध्यमिक शिक्षा

द्वितीय विश्व युद्ध ने संसार की काया पलट दी। उसके दो वर्ष उपरान्त ही भारत को अपनी शताब्दियों की दासता से मुक्त होने का अवसर उपलब्ध हुआ। स्वतन्त्र भारत ने नवीन राष्ट्रीय आवश्यकताओं का अनुभव किया और उनको पूर्ण करने के लिये सक्रिय पग उठाया। परन्तु शिक्षा की व्यवस्था में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया गया। उसका संगठन प्रायः पूर्ववत् ही बना रहा। निस्सन्देह यत्र-तत्र कतिपय परिवर्तन अवश्य किए गए, परन्तु आधारभूत रूप में शिक्षा का ढाँचा वैसा ही रहा, जैसा कि वह ब्रिटिश शासन-काल में था। हाँ, इन परिवर्तनों से इतना अवश्य हुआ कि शिक्षा के दोष उभर आए और उसके अवगुण स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होने लगे। फलतः लोगों को आभास होने लगा कि शिक्षा का पाठ्य-क्रम अति संकुचित और असंतुलित था। पाठ्य-क्रम के अन्तर्गत कुछ विषयों को अति न्यून महत्व दिया गया था और कुछ की बिल्कुल ही उपेक्षा की गई थी। स्वस्थ जीवन तथा नैतिक शिक्षा की पूर्णरूप से अवहेलना की गई थी। हस्तकला की ओर रंच मात्र भी ध्यान नहीं दिया गया था और छात्रों की अभिरुचियों तथा अभिनतियों (Interests and inclinations) को जानने का कोई प्रयास नहीं किया गया था।

सारांश में स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त माध्यमिक शिक्षा में किसी प्रकार की प्रगति नहीं हुई। उसने अपने को देश के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और औद्योगिक परिवर्तनों के अनुकूल नहीं बनाया। इसने शिक्षा के क्षेत्र में प्रतिपादित नवीन सिद्धान्तों से किसी प्रकार का लाभ नहीं उठाया। यह पुस्तकीय, प्राचीनता से चिपकी हुई और एक-मार्गीय बनी रही। इसने छात्रों की विभिन्न स्वाभाविक अभियोग्यताओं तथा विभिन्न स्वाभाविक अभियोग्यताओं वाले छात्रों की

आवश्यकताओं को पूर्ण करने का कोई प्रयास नहीं किया। शिक्षा की एकमुखी (Unilateral) योजना, जिसका एक मात्र उद्देश्य छात्रों को विश्वविद्यालय में प्रवेश करने की योग्यता प्रदान करना था, न तो छात्रों की अभिरुचियों का प्रयोग एवं विकास कर सकती थी और न अध्यापकों के शिक्षण-कार्य को ही रोचक बना सकती थी। इसके अतिरिक्त पाठ्य-क्रम का विभिन्नीकरण न होने से अनेकों छात्रों को अपनी वैयक्तिक विभिन्नताओं के अनुकूल विषय और इसके फलस्वरूप अपनी क्षमताओं के अनुसार कार्य उपलब्ध न हो सका।

## पाठ्य-क्रम के विभिन्नीकरण के प्रयास

सौभाग्य से देश के नेताओं ने अनुभव किया कि माध्यमिक शिक्षा के संगठन में परिवर्तन किया जाना आवश्यक है। इस उद्देश्य से प्रेरित होकर उन्होंने माध्यमिक शिक्षा में वांछित परिवर्तन करने के लिए समितियों तथा आयोगों की नियुक्ति की। यहीं से पाठ्य-क्रम के विभिन्नीकरण का श्री गणेश होता है। हम कुछ प्रमुख समितियों तथा आयोगों का वर्णन निम्नांकित पंक्तियों में कर रहे हैं :

### १. प्रथम आचार्य नरेन्द्र देव समिति[1], १९३९

यद्यपि इस समिति की नियुक्ति स्वतन्त्रता से पूर्व हुई थी, परन्तु क्योंकि इसने पाठ्यक्रम के विभिन्नीकरण की दिशा में प्रथम प्रयास किया था, अतः इसका विवरण यहाँ अनिवार्य हो जाता है। समिति ने अपनी रिपोर्ट में इस बात की सिफारिश की कि माध्यमिक शिक्षा को इस प्रकार संगठित किया जाय जिससे छात्रों को अपनी अभियोग्यताओं तथा अभिरुचियों के अनुसार विविध प्रकार की शिक्षा ग्रहण करने का अवसर उपलब्ध हो सके। समिति ने यह भी सिफ़ारिश की कि जिस प्रकार व्यवसाय-विश्लेषण (Job Analysis) किया जाता है, उसी प्रकार पाठ्यक्रम-विश्लेषण (Course Analysis) भी किया जाय। उसने कहा कि पाठ्य-क्रम वास्तविक एवं व्यावहारिक हो और वह विशेषज्ञों द्वारा देश तथा काल की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर बनाया जाय। उसने सिफ़ारिश की कि उच्चतर माध्यमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम को चार वर्गों में विभाजित किया जाय :—(१) साहित्यिक, (२) वैज्ञानिक, (३) रचनात्मक, एवं (४) रागात्मक। छात्रों को अपनी रुचि के अनुसार किसी भी एक वर्ग का चयन करने का अधिकार दिया जाय। विभिन्न वर्गों के लिए

---

1. First Acharya Narenda Deo Committee.

छात्रों की उपयुक्तता की जानकारी प्राप्त करने के लिए 'अध्ययन-योग्यता परीक्षाओं' (Scholastic Aptitude Tests) का प्रयोग किया जाय।

## २. ताराचंद समिति,[1] १६४८

इस समिति की अनेकों सिफ़ारिशों में से एक महत्वपूर्ण सिफारिश यह थी कि माध्यमिक विद्यालय बहुमुखी (Multilateral) होने चाहिये, परन्तु स्थानीय परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए एकमुखी(Unilateral) विद्यालयों को भी प्रोत्साहन दिया जाना चाहिये। समिति की एक सिफ़ारिश यह भी थी कि माध्यमिक शिक्षा की जाँच करने के लिये एक आयोग की नियुक्ति की जाय।

## ३. द्वितीय आचार्य नरेन्द्र देव समिति,[2] १६५२-५३

इस समिति ने सुझाव दिया कि पाठ्यक्रम को व्यावहारिक रूप दिया जाय और उसे बालकों की रुचियों तथा योग्यताओं के अनुसार बनाया जाय। समिति ने एक सुझाव यह भी दिया कि बहुउद्देशीय विद्यालयों की स्थापना की जाय और उनमें विभिन्न उद्देश्यों, अभिरुचियों तथा अभियोग्यताओं वाले छात्रों के लिये विभिन्न पाठ्य-क्रमों की व्यवस्था की जाय। समिति का एक सुझाव यह भी था कि सामान्य शिक्षा के साथ-साथ टेकनिकल शिक्षा का भी प्रबन्ध किया जाय और अधिक से अधिक टेकनिकल संस्थाओं का निर्माण किया जाय। समिति ने छात्रों के मार्ग-प्रदर्शन एवं उनकी मनोवैज्ञानिक जाँच के सम्बन्ध में भी अत्यन्त उपयोगी सुझाव दिये।

## ४. माध्यमिक शिक्षा-आयोग,[3] १६५२-५३

'ताराचन्द समिति' और 'केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड'[4] की सिफारिशों के फलस्वरूप भारत-सरकार ने 'माध्यमिक शिक्षा-आयोग' (मुदालियर कमीशन)[5] की नियुक्ति की। आयोग से भारत की तत्कालीन माध्यमिक शिक्षा की स्थिति का अध्ययन करने और उसका पुनर्संगठन तथा सुधार करने के लिये सुझाव देने को कहा गया। आयोग ने जो अनेकों महत्वपूर्ण सुझाव दिये उनमें पाठ्य-क्रम के विभिन्नीकरण और बहुउद्देशीय विद्यालयों की स्थापना को सर्व प्रथम स्थान प्राप्त है। आयोग ने कहा कि छात्रों के विविध उद्देश्यों, योग्य-

1. Tarachand Committee.
2. Second Acharya Narendra Deo Committee.
3. Secondary Education Commission.
4. Central Advisory Board of Education.
5. Mudaliar Commission

तामो एवं क्षमताओं की पूर्ति करने के लिये इन विद्यालयों का पाठ्य-क्रम उनकी विभिन्न रुचियों के अनुकूल होना चाहिये।

## विभिन्न पाठ्य-क्रम की रूप-रेखा

माध्यमिक शिक्षा-आयोग के अनुसार उच्चतर माध्यमिक शिक्षा ग्रहण करने के लिए स्पष्ट रूप से पाठ्य-क्रम का विभिन्नीकरण होगा। शिक्षा के इस स्तर पर कुछ आन्तरक विषय (Core Subjects) होंगे जिनका अध्ययन सभी छात्रों को करना होगा। इनके अतिरिक्त कुछ वैकल्पिक विषय होंगे जो सात समूहों में विभाजित किये गये हैं। यहीं पर पाठ्य-क्रम को विभिन्नता प्रदान की गई है। हम इस विभिन्न पाठ्य-क्रम की रूपरेखा नीचे प्रस्तुत कर रहे हैं।

### क—आन्तरक विषय

अ—(१) मातृभाषा अथवा प्रादेशिक भाषा अथवा मातृ-भाषा तथा एक शास्त्रीय भाषा (Classical Language) का मिश्रित पाठ्य-क्रम।

(२) निम्नाङ्कित में से चुनी जाने वाली एक अन्य भाषा :

(i) हिन्दी (उनके लिये जिनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं है)।

(ii) प्रारम्भिक अंग्रेजी (उनके लिये जिन्होंने माध्यमिक स्तर (Middle Stage) पर इसका अध्ययन नहीं किया है)।

(iii) उच्च अंग्रेजी (उनके लिए जिन्होंने पहिले अंग्रेजी का अध्ययन किया है)।

(iv) हिन्दी के अतिरिक्त एक अन्य भारतीय भाषा।

(v) अंग्रेजी के अतिरिक्त एक अन्य आधुनिक विदेशी भाषा।

(vi) एक शास्त्रीय भाषा।

ब—(१) समाज विज्ञान का सामान्य पाठ्य-क्रम (केवल प्रथम दो वर्षों के लिये)।

(२) गणित सहित सामान्य विज्ञान का सामान्य पाठ्य-क्रम (केवल प्रथम दो वर्षों के लिये)।

स—निम्नलिखित में से एक शिल्प (Craft):

(१) कताई एवं बुनाई, (२) काष्ठ कर्म (Wood-Work), (३) धातु-कर्म (Metal Work), (४) बागवानी, (५) सूचिक-कर्म (Tailoring), (६) मुद्रण कर्म (Typography), (७) कर्मशाला प्रयोग (Workshop Practice) (८) सिलाई, सूची शिल्प (Needle work) और निपीवण (Embroidery), तथा (९) प्रतिरूपण (Modelling)।

## ख—वैकल्पिक विषय

द—निम्नलिखित समूहो मे से किसी एक समूह से तीन विषय :

**समूह १—मानव विज्ञान (Humanities)**

(१) एक शास्त्रीय भाषा अथवा "अ २" से न ली गई एक भाषा, (२) इतिहास, (३) भूगोल, (४) अर्थशास्त्र तथा नागरिक शास्त्र के तत्व, (५) मनोविज्ञान तथा तर्कशास्त्र के तत्व, (६) गणित, (७) संगीत, और (८) गृह-विज्ञान।

**समूह २—विज्ञान (Sciences)**

(१) भौतिक शास्त्र, (२) रसायन शास्त्र, (३) जीव शास्त्र, (४) भूगोल, (५) गणित, और (६) शरीर विज्ञान तथा स्वास्थ्य विज्ञान के तत्व (इनको जीव शास्त्र के साथ नहीं लिया जा सकता है)।

**समूह ३—प्राविधिक (Technical)**

(१) व्यावहारिक गणित ( Applied Mathematics ) और रैखिकीय आलेखिकी ( Geometrical Drawing ), (२) व्यावहारिक विज्ञान, (३) यान्त्रिक अभियान्त्रिकी के तत्व (Elements of Mechanical Engineering), और (४) वैद्युत (Electrical) अभियान्त्रिकी के तत्व।

**समूह ४—वाणिज्यिक—(Commercial)**

(१) वाणिज्यिक प्रयोग ( Commercial Practice), ( २ ) बही-खाता (Book-Keeping), (३) वाणिज्य भूगोल अथवा अर्थशास्त्र एवं नागरिक शास्त्र के तत्व, और (४) आशुलिपि तथा टंकन(Short-hand and Type-writing)

**समूह ५—कृषि (Agriculture)**

(१) सामान्य कृषि, (२) पशु-पालन, ( ३ ) औद्यानिकी (Horticulture) तथा बाग़बानी, और (४) कृषि-रसायन ( Agriculture Chemistry ) तथा वनस्पति विज्ञान।

**समूह ६ [illegible] (Fine Arts)**

[illegible] (२) ड्राइंग तथा रूपाङ्कन (Desiging), (३) [illegible]गीत, और (६) नृत्य।

[illegible] पाक-कला (Nutrition [illegible] और (४) गृह-प्रबन्ध तथा [illegible]

## विभिन्न पाठ्य-क्रम की आवश्यकता

विभिन्न पाठ्य-क्रम की आवश्यकता के पक्ष में जो तर्क उपस्थित किये जा सकते हैं, वे अधोलिखित हैं :

### १. शिक्षा-सम्बन्धी परिवर्तित दृष्टिकोण

शिक्षा-मनोविज्ञान की प्रगति के कारण व्यक्तियों की शिक्षा-सम्बन्धी धारणाओं में निरन्तर परिवर्तन होता जा रहा है। आज के शिक्षा-विदों का दृष्टिकोण वह नहीं है, जो प्राचीन समय के शिक्षा-विशेषज्ञों का था। पूर्व समय में यह विश्वास किया जाता था कि "जो पढ़ाया जा रहा है सभी बालक उसके लिये उपयुक्त हैं, सभी को उसमें रुचि है, सभी उससे बराबर लाभ उठायेंगे।" शिक्षा-मनोविज्ञान की खोजों ने यह सिद्ध कर दिया है कि उपर्युक्त धारणा में सत्य का लेशमात्र भी अंश नहीं है। इसके विपरीत यह विश्वास किया जाने लगा है कि प्रत्येक बालक की अभियोग्यतायें, अभिरुचियाँ, क्षमतायें तथा ऊर्जाएं (Energies) एक-दूसरे से भिन्न हैं। ऐसी स्थिति में पाठ्यक्रम का विभिन्नीकरण होना आवश्यक है, जिससे कि ज्ञानार्जन करने वाले समस्त बालकों का समान रूप से हित हो सके।

### २. छात्रों की मानसिक तथा शारीरिक विभिन्नता

प्रकृति ने प्रत्येक मानव को दूसरे से भिन्न बनाया है। यदि सभी बालक एक ही साँचे में ढले हुए होते, तो उनके लिये समान पाठ्य-क्रम सम्भव हो सकता था। वास्तविक जीवन में हम देखते हैं कि सभी बालकों में कुछ न कुछ विभिन्नता अवश्य होती है। कोई बालक तीव्र-बुद्धि है, तो कोई मन्द बुद्धि। किसी बालक का मानसिक झुकाव साहित्य के प्रति है, तो किसी का विज्ञान के प्रति। कोई बालक सबल है, तो कोई निर्बल। जब बालकों में इस प्रकार की विभिन्नतायें विद्यमान हैं, तो उनके लिये विभिन्न पाठ्य-क्रम की व्यवस्था की जानी आवश्यक है।

### ३. समाज की माँगों की पूर्ति

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में रह कर ही वह अपनी विविध आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। यह उसी दशा में सम्भव होता है कि सब समाज के सदस्य एक कार्य तथा व्यवसाय को न करके विभिन्न कार्यों एवं व्यवसायों को करें। यही कारण है कि हमें प्रत्येक समाज में विविध कार्यों में संलग्न व्यक्ति दिखाई देते हैं। यदि वे ऐसा न करें, तो समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होगी और समाज प्रगति नहीं करेगा। अतः यह प्रति-

र्य है कि विभिन्न पाठ्य-क्रम का प्रबन्ध करके समाज के भावी नागरिकों को विभिन्न कार्य करने में कुशलता प्रदान की जाय जिससे कि वे समाज की माँगों की पूर्ति कर सकें। "पाठ्य-क्रम में इस प्रकार विभिन्नता लानी चाहिये और उसका इस प्रकार विस्तार किया जाना चाहिये कि उससे विभिन्न झुकाव के बालकों को विभिन्न प्रकार की शिक्षा प्राप्त हो सके, जिससे वे अपने भावी जीवन में समाज की विभिन्न माँगों की पूर्ति कर सकें।"[1]

### ४. छात्रों की माँगों की पूर्ति

*भारतीय संविधान में १४ वर्ष तक की आयु के बालकों के लिये निःशुल्क तथा* अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था की गई है। अतः इस बात की पूर्ण आशा है कि भविष्य में असंख्यों बालक माध्यमिक विद्यालयों में प्रवेश करेंगे। इन बालकों की अध्ययन प्रवृत्तियाँ, रुचियाँ, योग्यतायें तथा अभिरुचियाँ विभिन्न होंगी। अतएव इस बात की आवश्यकता है कि हमारे माध्यमिक विद्यालय "एक-मार्गीय" ( Single Track ) न हों, अपितु ऐसे विभिन्न पाठ्य-क्रम की व्यवस्था करें, जिससे कि उन छात्रों की विभिन्न माँगों को पूर्ण किया जा सके। इस माँग की पूर्ति करने के लिये पाठ्य-क्रम को अधिक व्यापक बनाना होगा और उसमें सामान्य तथा व्यावसायिक विषयों का समावेश करना होगा क्योंकि तभी बालकों को अपनी आवश्यकताओं के अनुसार विषयों को चयन करने का अवसर प्राप्त हो सकेगा।[2]

---

1. *Headmasters' Report on Secondary Education*, Ministry of Education, p. 6..
2. "In view of the fact that education up to the age of 14 has been made and free compulsory under the Constitution, students with a very wide variety of talents will be seeking education in future. This postulates that our secondary schools should no longer be "single track" institutions but should offer a diversity of educational programmes calculated to meet varying aptitudes, interests and talents which come into prominence towards the end of the period of compulsory education. They should provide more comprehensive courses which will include both general and vocational subjects and pupils should have an opportunity to choose from them according to their needs," *Report of the Secondary Education Commission*, p. 38.

## विभिन्न पाठ्य-क्रम की आवश्

विभिन्न पाठ्य-क्रम की आवश्यकता के पक्ष में जो सकते हैं, वे यथोलिखित हैं :

### १. शिक्षा-सम्बन्धी परिवर्तित दृष्टिकोण

शिक्षा मनोविज्ञान की प्रगति के कारण व्यक्तियों की। धारणाओं में निरन्तर परिवर्तन होता जा रहा है। आज के शि कोण वह नहीं है, जो प्राचीन समय के शिक्षा-विशेषज्ञों का यह विश्वास किया जाता था कि "जो पढ़ाया जा रहा है · लिये उपयुक्त है, सभी को उसमें रुचि है, सभी उसमें बराबर शिक्षा-मनोविज्ञान की खोजों ने यह सिद्ध कर दिया है कि उ में सत्य का लेशमात्र भी अंश नहीं है। इसके विपरीत यह विश्व लगा है कि प्रत्येक बालक की अभियोग्यतायें, अभिरुचियाँ, ऊर्जाएँ ( Energies ) एक-दूसरे से भिन्न हैं। ऐसी स्थिति में विभिन्नीकरण होना आवश्यक है, जिससे कि ज्ञानार्जन करने बालकों का समान रूप से हित हो सके।

### २. छात्रों की मानसिक तथा शारीरिक विभिन्नता

प्रकृति ने प्रत्येक मानव को दूसरे से भिन्न बनाया है। यदि स एक ही साँचे में ढले हुए होते, तो उनके लिये समान पाठ्य-क्रम र सकता था। वास्तविक जीवन में हम देखते हैं कि सभी बालकों में कुछ विभिन्नता अवश्य होती है। कोई बालक तीव्र-बुद्धि है, तो कोई मन्द किसी बालक का मानसिक झुकाव साहित्य के प्रति है, तो किसी का वि प्रति। कोई बालक सबल है, तो कोई निर्बल। जब बालकों में इस प्रक विभिन्नतायें विद्यमान हैं, तो उनके लिये विभिन्न पाठ्य-क्रम की व्यवस्था जानी आवश्यक है।

### ३. समाज की माँगों की पूर्ति

मनुष्य एक सामाजिक
आवश्यकताओं की पूर्ति क
समाज के सदस्य एक कार्य
सायों को करें। यही
संलग्न व्यक्ति दिखाई दे
कताओं की पूर्ति नहीं

करती है। अतः पाठ्य-क्रम के विभिन्नीकरण की आवश्यकता है।[1]

उपरोक्त तथ्यों पर गम्भीर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि पाठ्य-क्रम का विभिन्नीकरण अतिशय आवश्यक है।

## विभिन्न पाठ्य-क्रम का महत्व

विभिन्न पाठ्य-क्रम का छात्रों के लिये अत्यधिक महत्व है। यही कारण है कि हमारी सरकार ने पाठ्य-क्रम का विभिन्नीकरण करने का निश्चय किया है। हम इन महत्वों का विवरण नीचे की पंक्तियों में दे रहे हैं :

### १. जीविका-उपार्जन की सुगमता

हमारे देश में साधारणतः पच्चीस या तीस प्रतिशत छात्र ऐसे होते हैं, जो हाई स्कूल परीक्षा में उत्तीर्ण होने के उपरान्त किसी उच्च शिक्षा-संस्था में प्रवेश लेते हैं। अतः हाई स्कूल की शिक्षा प्राप्त कर चुकने के पश्चात् अधिकांश छात्र जीविका-उपार्जन की चिन्ता से ग्रस्त हो जाते हैं। जो शिक्षा वे ग्रहण कर चुकते हैं, वह उनके लिये निरर्थक सिद्ध होती है। विभिन्न पाठ्य-क्रम से उनको वह शिक्षा तो प्राप्त होगी ही, जो कि उनको आधुनिक माध्यमिक विद्यालयों में प्राप्त हो रही है, परन्तु इसके साथ ही साथ उन्हें किसी ऐसी व्यावसायिक शिक्षा का भी ज्ञान हो जायगा, जिससे कि उनके लिये जीविका उपार्जन का कार्य सुगम हो जायगा।

### २. उत्तम मानव तथा उत्तम नागरिक का निर्माण

विभिन्न पाठ्यक्रम छात्रों को प्राविधिक (Technical) प्रकार की शिक्षा देने के अतिरिक्त सामान्य शिक्षा भी पर्याप्त मात्रा में देगा जिससे कि वे उत्तम मानव बन कर अपने कर्त्तव्यों का पालन करेंगे। साथ ही वे जीवन की कला में प्रशिक्षित होकर उत्तम नागरिक भी बन सकेंगे।[2] यदि एक छात्र 'कृषि समूह'

1. "In fact it is the special function of Secondary Education to provide the country with the second line of its leaders in all walks of national life—art, science, industry and commerce. The present unilateral system is not planned to provide leadership which is yet another argument for its diversification." *Report of the Secondary Education Commission*, p. 91.

2. "Besides, giving him some training of a technical kind, the course should also give him a reasonable amount of general education so that he may be fit to discharge his duties as a human being and a citizen trained in the greatest of all arts—the art of living." *Ibid*, p. 85.

## ५. छात्रों के व्यक्तित्व का विकास

माध्यमिक शिक्षा प्रायोग द्वारा विभिन्न पाठ्य-क्रम में जिन सामान्य (General) और व्यावसायिक (Vocational) विषयों का उल्लेख किया गया है, उनका अभिप्राय यह नहीं है कि कुछ बालकों को 'सामान्य'(General) और कुछ को 'व्यावहारिक' ( Practical) शिक्षा प्रदान की जायगी। इसके विपरीत आयोग की धारणा यह है कि छात्रों का मानसिक तथा सांस्कृतिक विकास अनेको विषयो के अध्ययन से ही हो सकता है और व्यक्तित्व का विकास केवल पुस्तकीय ज्ञान अथवा परम्परागत विषयो के अध्ययन से ही नहीं, अपितु बुद्धिमत्तापूर्वक किये गये व्यावहारिक कर्म (Practical work) से भी हो सकता है। आयोग को विश्वास है कि उचित रूप से संगठित व्यावहारिक कर्म परम्परागत विषयो की अपेक्षा, जिनका सम्बन्ध केवल मस्तिष्क से है, बालकों को अन्तर्हित ऊर्जाओ को अधिक सफलतापूर्वक व्यक्त कर सकता है और इस प्रकार उनके व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास अधिक सुगमता से हो सकता है।[1] इस दृष्टि कोण के अनुसार पाठ्य-क्रम का विभिन्नीकरण आवश्यक है।

## ६. कुशल कार्यकर्ताओं की पूर्ति

यदि माध्यमिक शिक्षा को केवल साहित्यिक रहने दिया जाय और उसमे व्यावहारिक विषयो को स्थान देकर उसका विभिन्नीकरण न किया जाय, तो हमारे टेकनिकल विद्यालयो तथा राष्ट्रीय योजनाओं के लिये योग्य व्यक्ति उपलब्ध न हो सकेंगे। वास्तव मे माध्यमिक शिक्षा का उद्देश्य है राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र—कला, विज्ञान, उद्योग और वाणिज्य के लिये कुशल व्यक्तियों का निर्माण करना। आधुनिक एकमार्गीय शिक्षा इस उद्देश्य को पूर्ण नही

---

1. 'The whole modern approach to this question is based on the insight that the intellectual and cultural development of different individuals takes place best through a variety of media, that the book or the study of traditional academic subjects is not the only door to the education of the personality and that, in the case of many-perhaps a majority—of the children, practical work intelligently organized can unlock their latent energies much more successfully than the traditional subjects which address themselves only to the mind or, worse still, the memory." *Report of the Secondary Education Commission*, p. 39.

## ५. उत्तम परीक्षा-फल

पाठ्य-क्रम का विभिन्नीकरण इसलिये महत्वपूर्ण समझा गया है क्योंकि यह हमारी शिक्षा-प्रणाली के एक प्रमुख दोष का निराकरण कर देगा। यदि हम सम्पूर्ण भारत के हाई स्कूल परीक्षाओं के परीक्षा-फलों पर दृष्टि डालें, तो हमें यह सरलता पूर्वक ज्ञात हो जायगा कि छात्रों की शक्ति का अति महान् अपव्यय होता है। 'अखिल भारतीय माध्यमिक शिक्षा समिति'[1] द्वारा अभी हाल में दिये गये आँकड़ों से स्पष्ट होता है कि सम्पूर्ण भारत में इन परीक्षाओं में लगभग ५० प्रतिशत छात्र असफल होते हैं। एस० एन० मुकर्जी के अनुसार यह प्रतिशत और भी कम है।[2] इसका प्रमुख कारण यह है कि छात्रों को अपनी अभिरुचियों तथा अभियोग्यताओं के अनुसार विषयों का चयन करने का अवसर नहीं प्राप्त होता है। 'माध्यमिक शिक्षा आयोग' द्वारा प्रतिपादित विभिन्न पाठ्यक्रम इस दोष का उन्मूलन करके अति सराहनीय कार्य करेगा और असंख्यों छात्रों को निराशा के गर्त में गिरने से बचायेगा।

## ६. बेकारी की समस्या का समाधान

भारत में बेकारी की समस्या अतिशय गम्भीर रूप धारण कर रही है। १९५३ में भारतीय योजना आयोग ने अपनी सिफ़ारिश में बेकारी की इस गहन समस्या की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित किया था जिसका परिणाम यह हुआ कि मार्च १९५४ में सरकार ने इस समस्या के समाधान के हेतु १८० करोड़ रुपये अधिक स्वीकृत किये। इतना होने के बावजूद भी समस्या लोहे की दीवार की भाँति अटल होकर हमारी सारी भावी प्रगति एवं सुख-समृद्धि को अवरुद्ध किये हुए है। इस समस्या के अनेकों कारणों में से एक कारण यह भी है कि हमारी शिक्षा एक मार्गीय है। इसीलिये मुदालियर कमीशन द्वारा इस शिक्षा को विविध-मार्गीय ( Multi-purpose ) बनाने का सुझाव दिया गया है। इस सम्बन्ध में कमीशन ने जिस विभिन्न पाठ्य-क्रम की रूपरेखा प्रस्तुत की है, उससे महान् हित होने की आशा की जा रही है। बालक अपनी रुचियों के अनुसार टेकनिकल, व्यावसायिक, वाणिज्यात्मक एवं अन्य क्रियात्मक विषयों का अध्ययन कर सकेंगे और साथ ही किसी हस्तकला में कुशल हो जायँगे। परिणाम यह होगा कि उन्हें नौकरी खोजने के लिये दर-दर नहीं भटकना

---

1. All India Council for Secondary Education.
2. S. N. Mukerji : *op. cit.*, p. 131.

**विभिन्न पाठ्यक्रम की रूप-रेखा**—इस पाठ्य-क्रम में दो प्रकार के विषय हैं—(१) आन्तरक, और (२) वैकल्पिक। आन्तरक विषयों का अध्ययन सभी छात्रों को करना है। वैकल्पिक विषय सात समूहों में विभाजित है—मानव विज्ञान, विज्ञान, प्राविधिक, वाणिज्यिक, कृषि, ललित कलायें और कृषिविज्ञान। छात्र किसी भी समूह में से तीन विषय ले सकता है।

**विभिन्न पाठ्यक्रम की आवश्यकता**—विभिन्न पाठ्य-क्रम की आवश्यकता अग्रलिखित कारणों के फलस्वरूप है—(१) शिक्षा-सम्बन्धी परिवर्तित दृष्टि-कोण, (२) छात्रों की मानसिक तथा शारीरिक विभिन्नता, (३) समाज की माँगो की पूर्ति, (४) छात्रों की माँगों की पूर्ति, (५) छात्रों के व्यक्तित्व का विकास, और (६) कुशल कार्यकर्त्ताओं की पूर्ति।

**विभिन्न पाठ्यक्रम का महत्त्व**—विभिन्न पाठ्य-क्रम का महत्त्व अग्राङ्कित कारणों से हैं—(१) जीविका उपार्जन की सुगमता,(२) उत्तम मानव तथा उत्तम नागरिक का निर्माण, (३) पूर्ण सांस्कृतिक विकास, (४) शारीरिक श्रम का सम्मान, (५) उत्तम परीक्षा-फल, और (६) बेकारी की समस्या का समाधान।

## सहायक पुस्तकों की सूची


1. *Tarachand Committee Report.*
2. *First Acharya Narendra Deo Committee Report.*
3. *Second Acharya Narendra Deo Committee Report.*
4. *Report of the Secondary Education Commission.*
5. *Headmasters' Report on Secondary Education.*
6. S. N. Mukerji : *Education in India—Today and Tomorrow.*


### TEST QUESTIONS

1. Discuss the circumstances which necessitated the introduction of diversified courses.
2. What, in your opinion, is the need for and importance of diversification of courses ?
3. Give a brief criticism of the curriculum envisaged by the Secondary Education Commission.
4. What arguments can you advance in favour of multilateral courses and their utility.

—: o :—

पड़ेगा। वे स्वतन्त्र रूप से स्वयं कोई व्यवसाय करके अपने जीवन का निर्वाह कर सकेंगे जिससे बेकारी की समस्या का बहुत-कुछ समाधान हो जायगा।

उपरोक्त के आधार पर हम निस्संकोच रूप से कह सकते हैं कि पाठ्य-क्रम का विभिन्नीकरण अति सारगर्भित तथा महत्वपूर्ण है। जब हमारे देश के समस्त माध्यमिक विद्यालयों में विभिन्न पाठ्यक्रम कार्यान्वित कर दिया जायगा, तब माध्यमिक शिक्षा का कलेवर एक नवीन रूप धारण करेगा। उसमें छात्रों को अपने प्रति आकर्षित करने की क्षमता होगी और छात्रों को उसका अर्जन करके अपने व्यक्तित्व, योग्यताओं एवं शक्तियों को विकसित करके बौद्धिक तथा सांस्कृतिक उन्नति करने का अवसर प्राप्त होगा और साथ ही अपने भावी जीवन में उन्हें जीविका का एक उपयुक्त आधार प्राप्त हो जायगा।

## सारांश

**ब्रिटिश शासन-काल में माध्यमिक शिक्षा**—ब्रिटिश शासन-काल में माध्यमिक शिक्षा के दो उद्देश्य थे। शासकों की आवश्यकताओं की पूर्ति करना तथा छात्रों को विश्वविद्यालय में प्रवेश प्राप्त करने की योग्यता प्रदान करना। शिक्षा में पुस्तकीय ज्ञान और अंग्रेज़ी पर अधिक बल दिया जाता था। उसमें प्राविधिक तथा व्यावसायिक शिक्षा का कोई स्थान नहीं था। शिक्षा प्राप्त करने का मुख्य उद्देश्य नौकरी करना था। अनेकों नवयुवकों को नौकरियाँ न मिलने के कारण बेकार रहना पड़ता था।

**स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त माध्यमिक शिक्षा**—स्वतन्त्रता-प्राप्ति के उपरान्त माध्यमिक शिक्षा में कतिपय परिवर्तन अवश्य किये गये, परन्तु आधारभूत रूप में शिक्षा का ढाँचा वही रहा जैसा कि ब्रिटिश शासन-काल में था। शिक्षा में कोई प्रगति नहीं हुई और वह देश की आवश्यकताओं के अनुकूल न बनी। शिक्षा की योजना एक-मुखी रही। उसमें पुस्तकीय ज्ञान पर बल दिया गया और वह प्राचीनता से चिपकी रही।

**पाठ्यक्रम के विभिन्नीकरण के प्रयास**—देश के नेताओं ने माध्यमिक शिक्षा के संगठन में परिवर्तन करना आवश्यक समझ कर समितियों तथा आयोगों की नियुक्ति की। प्रथम आचार्य नरेन्द्रदेव समिति (१६३६) ने पाठ्य-क्रम के विभिन्नीकरण की दिशा में प्रथम प्रयास किया। ताराचन्द समिति (१६४८) ने बहुमुखी विद्यालयों की स्थापना की सिफ़ारिश की। द्वितीय आचार्य नरेन्द्रदेव समिति ने पाठ्य-क्रम को व्यावहारिक रूप देने और टेकनिकल शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना की सिफ़ारिश की। माध्यमिक शिक्षा आयोग ने विभिन्न पाठ्यक्रम की रूपरेखा प्रस्तुत की और उसकी उपादेयता की ओर संकेत किया।

रुचियों तथा योग्यताओं वाले छात्रों के लिये विभिन्न प्रकार के पाठ्यक्रमों का आयोजन करता है। यह प्रत्येक छात्र को व्यक्तिगत रूप से उसके द्वारा चयन किये गये अध्ययन के विशिष्ट पाठ्यक्रम में अपनी स्वाभाविक योग्यताओं तथा अभिरुचियों का प्रयोग करने तथा उनको विकसित करने का उपयुक्त अवसर प्रदान करने का प्रयास करता है।"[1]

## बहुउद्देशीय विद्यालय के उद्देश्य

माध्यमिक शिक्षा-आयोग ने पाठ्यक्रम के विभिन्नीकरण पर बल दिया है और उसकी शिक्षा के लिये बहुउद्देशीय विद्यालयों की स्थापना का सुझाव दिया है। आयोग ने कहा है : "हमारे माध्यमिक विद्यालय एक मार्गीय संस्थायें न होकर इस प्रकार की संस्थायें हों जिनमें विभिन्न शैक्षिक कार्यक्रमों की व्यवस्था हो और जिनसे विभिन्न प्रकार की अभियोग्यताओं, अभिरुचियों तथा मानसिक क्षमताओं का विकास हो सके। विद्यालय इस प्रकार के व्यापक पाठ्यक्रमों को सुलभ बनावें जिनमें सामान्य तथा व्यावसायिक ( Vocational ) विषय सम्मिलित हों और जिनमें से छात्रों को अपनी आवश्यकताओं के अनुसार चयन करने का अवसर प्राप्त हो। यहाँ यह बात स्पष्ट कर देनी आवश्यक है कि माध्यमिक स्तर पर पाठ्यक्रम में विभिन्न विषयों को सम्मिलित करने और अनेकों प्रायोगिक (Practical) विषयों को स्थान देने का अभिप्राय यह नहीं है कि 'सामान्य' (General) अथवा 'सांस्कृतिक' (Cultural) शिक्षा छात्रों के एक समूह को प्रदान की जाय, जब कि अन्य समूहों को संकुचित 'प्रायोगिक अथवा व्यावसायिक' अथवा 'प्राविधिक' शिक्षा दी जाय।......... इस बात को ध्यान में रखते हुए कि समस्त छात्रों को उन आधारभूत विचारों, योग्यताओं तथा मूल्यों में प्रशिक्षित किया जाना है, जो जनतन्त्र के बुद्धिमान नागरिकों के कर्त्तव्यों का पालन करने के लिये अनिवार्य हैं। अतएव पाठ्य-क्रम में सामान्य महत्त्व तथा लाभ के कुछ ऐसे सामान्य आन्तरक विषयों (Core Subjects) का होना आवश्यक है जिनका अध्ययन समस्त छात्र कर सकें।[2]"

1. "A multipurpose school seeks to provide varied types of courses for students with diverse aims, interests and abilities. It endeavours to provide for each individual pupil suitable opportunity to use and develop his natural aptitudes and inclinations in special course of studies chosen by him." *Report of the Secondary Education Commission*, p. 39.
2. *Ibid*, pp. 38-39.

अध्याय ६

# बहुउद्देशीय विद्यालय[1]

## बहुउद्देशीय विद्यालय का अर्थ

माध्यमिक शिक्षा-आयोग ने उच्चतर माध्यमिक शिक्षा के स्तर पर पाठ्य क्रम में सात विभिन्न समूहों का उल्लेख किया है—(१) मानव विज्ञान, (२) विज्ञान, (३) प्राविधिक, (४) वाणिज्यिक, (५) कृषि (६) ललित कलायें, और (७) गृह विज्ञान। अभी तक भारत के साधारण माध्यमिक विद्यालयों में प्रथम दो प्रकार के समूहों के विषयों की शिक्षा दी जा रही है। कुछ विद्यालय वाणिज्य तथा कृषि की भी शिक्षा दे रहे हैं। कुछ विशिष्ट विद्यालयों में ललित कलाओं की शिक्षा दी जा रही है। कतिपय बालिका विद्यालय ऐसे हैं जिनमें गृह-विज्ञान के शिक्षण की व्यवस्था है। कतिपय प्राविधिक विद्यालयों में टेकनिकल विषयों की शिक्षा का प्रबन्ध है। सारांश में इस समय हमारे देश में ऐसे विद्यालय नहीं हैं, जिनमें माध्यमिक शिक्षा-आयोग द्वारा प्रस्तावित समस्त विषयों के शिक्षण की व्यवस्था एक ही स्थान पर हो। इसके अतिरिक्त अधिकांश माध्यमिक विद्यालय एक-मुखी (Unilateral) हैं।

मुदालियर कमीशन ने जिन विभिन्न पाठ्य-क्रम की रूपरेखा प्रस्तुत की है, उसके शिक्षण की व्यवस्था बहुमुखी (Multilateral) अथवा बहुउद्देशीय (Multi-purpose) विद्यालयों में की गई है। बहुउद्देशीय विद्यालय का अर्थ स्पष्ट करते हुए कमीशन ने लिखा है : "बहुउद्देशीय स्कूल विभिन्न उद्देश्यों,

1. Multipurpose School.

सदस्यों ने विचार-विनिमय के उपरान्त बहुउद्देशीय विद्यालय के निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किए[1] :

१. बहुउद्देशीय विद्यालय को छात्रों के व्यक्तित्व का सर्वाङ्गीण विकास करना चाहिए।
२. विद्यालय को छात्रों की क्षमताओं को राष्ट्रीय चरित्र एवं राष्ट्रीय सम्पत्ति के निर्माण की दिशा में परिचालित करना चाहिए।
३. विद्यालय को छात्रों में अधिक ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा और उनमें स्वतन्त्र रूप से कार्य करने की योग्यता उत्पन्न करनी चाहिए।
४. विद्यालय को छात्रों में एक कौशल अथवा शिल्प की इतनी दक्षता उत्पन्न कर देनी चाहिए कि वे उससे सम्बन्धित व्यवसाय को सरलता पूर्वक कर सकें।
५. विद्यालय को छात्रों को किसी रचनात्मक, उत्पादक और समाज के लिये हितकर कार्य की शिक्षा देनी चाहिए जिससे उन्हें सहकारी जीवन मे श्रद्धा उत्पन्न हो तथा उनमें जीवन-यापन की इतनी क्षमता आ जाय कि वे स्वावलम्बी बन सकें।

## बहुउद्देशीय विद्यालयों की प्रगति

भारत-सरकार ने अक्टूबर १९५४ से बहुउद्देशीय विद्यालयों की स्थापना की योजना को क्रियान्वित किया। इस योजना के अनुसार कुछ चुने हुए हाई स्कूलों एवं उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों को बहुउद्देशीय विद्यालयों में परिणत किया जा रहा है। प्रथम पंचवर्षीय योजना में ५०० बहुउद्देशीय विद्यालयों की स्थापना की व्यवस्था की गई थी, परन्तु योजना के अन्त तक केवल २५० बहुउद्देशीय विद्यालय ही स्थापित किए जा सके।[2] द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्त तक १,१५० बहुउद्देशीय विद्यालयों का शिलान्यास हो जायगा।[3] इस प्रकार द्वितीय योजना के अन्त तक भारत में १,४०० बहुउद्देशीय विद्यालय हो जायेंगे। तृतीय पंचवर्षीय योजना में लगभग १,००० बहुउद्देशीय विद्यालय स्थापित किये जायेंगे। इस समय देश में लगभग १४०० बहुउद्देशीय विद्यालय शिक्षा प्रदान करने का कार्य कर रहे हैं। इन विद्यालयों में प्रायः दो वैकल्पिक समूहों के विषयों का शिक्षण किया जा रहा है।

---

१. शिक्षा-विचार गोष्ठी नैनीताल की विवरण-पत्रिका, उत्तर प्रदेश, १९५८।
२. द्वितीय पंचवर्षीय योजना, पृष्ठ ४७६।
३. तीसरी पंचवर्षीय योजना : प्रारम्भिक रूप-रेखा, पृष्ठ १००।

आयोग ने बहुउद्देशीय विद्यालय में हस्तकला अथवा कौशल को एक विशिष्ट स्थान प्रदान किया है। आयोग ने लिखा है : "हमने सिफ़ारिश की है कि हाई-स्कूल के प्रत्येक छात्र को एक शिल्प का अध्ययन करना चाहिये। हम यह आवश्यक समझते हैं कि इस स्तर पर प्रत्येक छात्र किसा शिल्प अथवा हाथ के काम मे कुछ समय लगाए और उस विशिष्ट शिल्प में दक्षता का पर्याप्त उच्च स्तर प्राप्त करले, जिससे कि आवश्यकता पड़ने पर वह उस शिल्प के द्वारा अपने जीवन का निर्वाह कर सके।"[1]

आयोग ने पाठ्य-क्रम के विभिन्नीकरण तथा बहुउद्देशीय विद्यालयों की स्थापना के लिए जो सुझाव प्रस्तुत किए, उनका अध्ययन करने के लिए फ़ोर्ड फाउण्डेशन ( Ford Foundation ) की भारतीय शाखा ने आठ विशेषज्ञों की एक अन्तर्राष्ट्रीय समिति नियुक्त की। इस समिति ने आयोग की सिफ़ारिशों पर अपने विचार व्यक्त किए और बहुउद्देशीय विद्यालयों के उद्देश्यों की ओर संकेत किया। हमारे विषय से सम्बन्धित समिति के विचार अधोलिखित हैं :

"माध्यमिक विद्यालयों में समूहों की विभिन्नता का उद्देश्य व्यावसायिक सामान्य शिक्षा देना है, न कि ऐसी औद्योगिक दक्षता प्रदान करना है जिससे छात्र एक-दम उद्योग में लग जायँ। आयोग की रिपोर्ट में माध्यमिक स्तर पर अधिक गहन प्राविधिक तथा औद्योगिक शिक्षा के लिए पूर्ण कालीन(Full-Time) एवं अल्पकालीन ( Part-Time ) समानान्तर प्राविधिक शिक्षा-प्रणाली की व्यवस्था की गई है।

"अतः यह स्पष्ट है कि मुदालियर कमीशन ने जिस बहुउद्देशीय विद्यालय की रूप-रेखा प्रस्तुत की है उसका उद्देश्य उन साधनों, सामग्रियों एवं प्रक्रियाओं के प्रयोग की व्यापक शिक्षा प्रदान करना है, जो सभ्यता के विकास-क्रम को आगे बढ़ने मे योग देती है। विद्यालय का उद्देश्य कारीगरों का निर्माण करना नहीं है।"

जून १९५७ मे नैनीताल में होने वाली शिक्षा-विचार गोष्ठी मे उपस्थित

---

1. "We have recommended that every high school student should. take one craft. We consider it necessary that at this stage, every student should devote some time to work with the hands and attain a reasonably high standard of proficiency in one particular craft, so that if necessary, he may support himself by pursuing it." *Report of the Secondary Education Commission.* p. 95.

अत्यन्त महत्वपूर्ण हो सकते हैं। अत: उनके प्रति विशेष सहानुभूति, सावधानी तथा सतर्कता से व्यवहार किया जाना चाहिये। अतः माध्यमिक शिक्षा के स्तर पर प्रारम्भिक अथवा उच्च शिक्षा की विधियों को प्रयोग करना गम्भीर परिणामों से परिपूर्ण होगा।

क्योंकि छात्रों में किशोरावस्था में विभिन्न मानसिक प्रवृत्तियाँ तथा अभिरुचियाँ होती हैं, अत: यह आवश्यक है कि माध्यमिक विद्यालय उनकी विभिन्न माँगों की पूर्ति करें। प्राथमिक शिक्षा को प्राय: समान प्रणाली में कुछ औचित्य हो सकता है। बच्चों की समस्त आवश्यक आधारभूत योग्यताओं को विकसित करना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त, जीवन के इस प्रारम्भिक काल में उनकी योग्यताओं में साधारणतः कोई विशेष अन्तर नहीं होता है। जब बच्चे बड़े होकर किशोर हो जाते हैं, तब स्थिति पूर्णतया परिवर्तित हो जाती है। मानसिक प्रवृत्तियों तथा अभिरुचियों में बढ़ते हुए अन्तर के कारण एक प्रकार की शिक्षा का अनुमोदन नहीं किया जा सकता है। प्रत्येक किशोर को विद्यालय में ऐसे विषयों का अध्ययन सुलभ होना चाहिये जिससे कि उसके अन्तर्हित गुणों (Latent Qualities) की अभिव्यक्ति हो। ऐसा करने का एक मात्र उपाय यह है कि अधिक विभिन्न पाठ्य क्रम की व्यवस्था की जाय जिससे कि यह निश्चय हो जाय कि विद्यालय में प्रत्येक छात्र को अपनी रुचि के अनुसार कुछ विषय मिल सकें। बहुउद्देशीय विद्यालयों की स्थापना का उद्देश्य इसी विशिष्ट आवश्यकता की पूर्ति करना है।"[1]

आधुनिक परिवर्तित दशाओं में माध्यमिक विद्यालयों का सुधार आवश्यक हो गया था। यह आवश्यकता इसलिये और भी अधिक हो गई है क्योंकि सम्पूर्ण भारत के लिये बेसिक शिक्षा को प्राथमिक शिक्षा के रूप में अनिवार्य कर दिया गया है। बेसिक विद्यालयों में शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्र किसी न किसी हस्तकला अथवा कौशल का अध्ययन करेंगे। अतः पूर्णतया पुस्तकीय

1. "As children grow into adolescents, the situation is radically changed. With growing differences in taste and aptitude, the case for a uniform type of education is gone. Each adolescent must find in the school something which calls out for its latent qualities. The only way of doing so is to offer a more diversified course which will ensure that every pupil in the school can find something to suit his or her taste. The establishment of multi-purpose schools is intended to meet this special need."—Humayun Kabir : *op. cit.*, p. 55.

## बहुउद्देशीय विद्यालयों की आवश्यकता

बहुउद्देशीय विद्यालयों की आवश्यकता पर हुमायूँ कबीर (Humayun Kabir) ने अति सुन्दर विचार व्यक्त किये हैं।[1] अतः उन्हें संक्षेप में यहाँ उद्धृत करना युक्तियुक्त प्रतीत होता है। उन्होंने लिखा है कि मुदालियर कमीशन ने माध्यमिक शिक्षा के पुनः गठन के सम्बन्ध में जो सुझाव दिये हैं, उनमें सर्वश्रेष्ठ स्थान देश में अनेकों बहुउद्देशीय विद्यालयों की स्थापना को प्राप्त है। जब तक हमारे देश में ऐसे विद्यालय नहीं होंगे जिनमें छात्र विभिन्न पाठ्य-क्रमों की शिक्षा से लाभ उठा सकें, तब तक माध्यमिक शिक्षा अपने उद्देश्यों को पूर्ण करने में असफल रहेगी। आधुनिक माध्यमिक शिक्षा-प्रणाली का एक प्रमुख दोष यह है कि वह एक-मार्गीय है। माध्यमिक विद्यालयों के समस्त छात्रों को प्रायः समान शिक्षा ही ग्रहण करनी पड़ती है। इससे उनके व्यक्तित्व का विकास अवरुद्ध हो जाता है क्योंकि एक ही प्रकार की शिक्षा सब के लिये उपयुक्त नहीं हो सकती है। मोटे तौर पर छात्रों को चार समूहों में विभक्त किया जा सकता है—(१) वे छात्र जिनको प्रायोगिक विषयों में रुचि है, (२) वे छात्र जिनकी मानसिक प्रवृत्ति गणित तथा विज्ञान में है, (३) वे छात्र जिनको ललित कलाओं से प्रेम है, और (४) वे छात्र जो मानव-विज्ञान का अध्ययन करना चाहते हैं। भारत में माध्यमिक शिक्षा की समस्या यह है कि वह छात्रों के लिये विभिन्न विषयों का अध्ययन सुलभ बनाये और साथ ही सबको कुछ समान आन्तरिक विषयों की शिक्षा दे।

माध्यमिक शिक्षा वे बालक तथा बालिकायें ग्रहण करते हैं जो बाल्यावस्था से यौवनावस्था में प्रवेश कर रहे होते हैं। इस प्रकार बालकों की समस्त किशोरा- वस्था माध्यमिक शिक्षा ग्रहण करने में व्यतीत होती है। साधारणतः बाल्या- वस्था की विशेषतायें स्पष्ट तथा समान होती हैं। अतः बच्चों को शिक्षा देते समय अधिक कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ता है। बच्चों को एक निश्चित मात्रा में ज्ञान प्रदान करना होता है और उनमें विचार तथा कार्य की निश्चित आदतों का निर्माण करना पड़ता है। इसी प्रकार युवकों को शिक्षा देने में हम एक निश्चित विधि का अनुसरण कर सकते हैं, क्योंकि उनकी आदतों तथा योग्यताओं का स्पष्टीकरण हो जाता है। किशोर न तो बच्चे होते हैं, और न वयस्क। अधिक व्यथित करने वाली बात यह है कि वे अति-त्वरित गति से एक अवस्था से दूसरी में प्रवेश करते हैं। उनमें इस प्रकार के शारीरिक, मनोवैज्ञानिक तथा भावात्मक परिवर्तन होते हैं जो उनके तथा समाज के लिये

1. Humayun Kabir : *Education in New India*, pp. 53-55.

...इ सामुदायिक जीवन की संरचना के अन्तर्गत बालकों की योग्य-...प्रगति को सम्भव बना सकता है।[1]

### ...यौर के विचार

...ं कबीर ने बहुउद्देशीय विद्यालयों के पक्ष में निम्नांकित तर्क प्रस्तुत ... :

...ये विद्यालय विभिन्न योग्यताओं तथा रुचियों वाले छात्रों के लिये ...पाठ्य-क्रमों की व्यवस्था करेंगे।

... ये राष्ट्र के कृषि, औद्योगिक तथा प्राविधिक कार्यक्रमों के लिये प्रशि-...त कुशल व्यक्तियों का निर्माण करेंगे।

... ये अपनी विभिन्न प्रकार की पाठ्य-क्रम सहगामी क्रियाओं (Co-...ular Activites) द्वारा छात्रों को व्यस्त रखेंगे, उन्हें आत्म-अभिव्यक्ति ...र प्रदान करेंगे और साथ ही विद्यालय-सेवाओं की उन्नति करेंगे।

४. ये हस्तकला की शिक्षा द्वारा शारीरिक श्रम के प्रति सम्मान उत्पन्न ...। हस्तकला से छात्रों के आत्म-विश्वास में भी वृद्धि होगी क्योंकि आव-...ता पड़ने पर वे उस हस्तकला द्वारा, जिसका उन्होंने अध्ययन किया है, ...र जीवन-यापन कर सकेंगे।

...उपरिलिखित विचारों के आधार पर हम कह सकते हैं कि बहुउद्देशीय ...लयों से छात्र, समाज तथा राष्ट्र का महान् हित होगा। परन्तु इसके ...जूद भी बहुउद्देशीय विद्यालयों की स्थापना अति मन्थर गति से हो रही ...। इन विद्यालयों की योजना को कार्यान्वित किये हुए छः वर्ष व्यतीत हो चुके ... परन्तु अभी तक इस विशाल देश में केवल १,४०० बहुउद्देशीय विद्यालयों का निर्माण किया जा सका है। इसके क्या कारण हैं, वे कौन सी सम-...यें अथवा कठिनाइयाँ हैं जो बहुउद्देशीय विद्यालयों की स्थापना में बाधायें ...स्थित कर रही हैं, इन्हीं पर अब हम विचार करेंगे।

## बहुउद्देशीय विद्यालयों की समस्यायें और उनका समाधान

*बहुउद्देशीय विद्यालयों की स्थापना में जिन विभिन्न समस्याओं का अनुभव ...या जा रहा है, वे निम्नांकित हैं:*

---

. "It can make possible the development of the ablities of children within a framework of community life." S. N. Mukerji : *op. cit.*, p. 149.

२. Humayun Kabir : *op. cit.*, pp. 56-57.

उनके लिए उपयुक्त नहीं होगी। उन्हें यह आशा करने का
जिस हस्तकला अथवा कौशल का उन्होंने प्राथमिक विद्यालयों
किया है, उन्हें उसका अधिक अध्ययन करने का अवसर माध्यमिक
प्राप्त हो। इसके अतिरिक्त यदि एक हस्तकला अथवा कौशल के
ध्यमिक विद्यालयो मे अधिक तथा विभिन्न कौशलों के अध्ययन की
दी जाय, तो इससे छात्रों का और भी अधिक हित हो सकता है।
-विन्दु को ध्यान न रखकर बहुउद्देशीय विद्यालयों की आवश्यकता
किया गया है।

न्तिम कारण और है। कुछ व्यक्तियों का विचार है कि विभिन्न
के लिए विभिन्न प्रकार के माध्यमिक विद्यालय स्थापित किए जाने
कि एक ही प्रकार के बहुउद्देशीय विद्यालय मे उनके शिक्षण की
की जाय, जैसा कि भारत में किया जा रहा है। पाश्चात्य देशों में
प्रकार के माध्यमिक विद्यालयों का निर्माण किया गया, पर इस योजना
सफलता नहीं प्राप्त हुई। अमेरिका (संयुक्त राज्य) ऐसे प्रगतिशील देश मे
शारीरिक श्रम का अत्यधिक सम्मान किया जाता है, उन विद्यालयों को
प्राविधिक (Technical) अथवा अन्य कोई व्यावसायिक (Vocational)
प्रदान की जाती है, पुस्तकीय शिक्षा देने वाले विद्यालयों की अपेक्षा
तर समझा जाता है। भारत ऐसे देश मे जहाँ परम्परा के अनुसार मानसिक
को शारीरिक श्रम की अपेक्षा कहीं अधिक महत्व प्रदान किया जाता है,
न्न विषयों के लिये विभिन्न विद्यालयों की स्थापना ने शारीरिक श्रम के
सामाजिक घृणा की पुष्टि करदी होती। एक ही विद्यालय में और उन्हीं
मो मे जिनमे कि पूर्णतया पुस्तकीय विषयो की शिक्षा प्रदान की जाती है,
विधिक, कृषि अथवा अन्य व्यावसायिक पाठ्य-क्रमों की शिक्षा की व्यवस्था
न सब शिक्षाओं मे समानता उत्पन्न करेगी और शारीरिक श्रम को हेय नहीं
मझा जायगा।[1] परिणामतः बहुउद्देशीय विद्यालयों की स्थापना को आव-
श्यक समझा गया है।

---

1. "In a country like India, where tradition exalts intellectual at the cost of manual labour, provision of different courses in different schools would have confirmed the social aversion to manual work. The provision of technical, agricultural or other professional courses in the same school and under the same conditions as purely acad... courses will be a visible symbol of the equal worth of th..." —Humayun Kabir : *op. cit.* p. 55.

४. यह सामुदायिक जीवन की संरचना के अन्तर्गत बालकों की योग्यताओं की उन्नति को सम्भव बना सकता है।[1]

## हुमायूँ कबीर के विचार

हुमायूँ कबीर ने बहुउद्देशीय विद्यालयों के पक्ष में निम्नांकित तर्क प्रस्तुत किये हैं[2] :

१. ये विद्यालय विभिन्न योग्यताओं तथा रुचियों वाले छात्रों के लिये विभिन्न पाठ्य-क्रमों की व्यवस्था करेंगे।

२. ये राष्ट्र के कृषि, औद्योगिक तथा प्राविधिक कार्यक्रमों के लिये प्रशिक्षित तथा कुशल व्यक्तियों का निर्माण करेंगे।

३. ये अपनी विभिन्न प्रकार की पाठ्य-क्रम सहगामी क्रियाओं (*Co-curricular Activites*) द्वारा छात्रों को *व्यस्त रखेंगे, उन्हें आत्म-अभिव्यक्ति* के अवसर प्रदान करेंगे और साथ ही विद्यालय-सेवाओं की उन्नति करेंगे।

४. ये हस्तकला की शिक्षा द्वारा शारीरिक श्रम के प्रति सम्मान उत्पन्न करेंगे। हस्तकला से छात्रों के आत्म-विश्वास में भी वृद्धि होगी क्योंकि आवश्यकता पड़ने पर वे उस हस्तकला द्वारा, जिसका उन्होंने अध्ययन किया है, अपना जीवन-यापन कर सकेंगे।

उपरिलिखित विचारों के आधार पर हम कह सकते हैं कि बहुउद्देशीय विद्यालयों से छात्र, समाज तथा राष्ट्र का महान् हित होगा। परन्तु इसके बावजूद भी बहुउद्देशीय विद्यालयों की स्थापना अति मन्थर गति से हो रही है। इन विद्यालयों की योजना को कार्यान्वित किये हुए छः वर्ष व्यतीत हो चुके हैं, परन्तु अभी तक इस विशाल देश में केवल १,४०० बहुउद्देशीय विद्यालयों का ही निर्माण किया जा सका है। इसके क्या कारण हैं, वे कौन सी समस्यायें अथवा कठिनाइयां हैं जो बहुउद्देशीय विद्यालयों की स्थापना में बाधायें उपस्थित कर रही हैं, इन्हीं पर अब हम विचार करेंगे।

## बहुउद्देशीय विद्यालयों की समस्यायें और उनका समाधान

बहुउद्देशीय विद्यालयों की स्थापना में जिन विभिन्न समस्याओं का अनुभव किया जा रहा है, वे निम्नांकित हैं:

---

1. "It can make possible the development of the ablities of children within a framework of community life." S. N. Mukerji : *op. cit.*, p. 149.

2. Humayun Kabir : *op. cit.*, pp. 56-57.

...र उसी विद्यालय के किसी अन्य समूह में स्थानान्तरित करना अधिक ... होता है।[1]

### ... एस० मुकर्जी के विचार

... एस० एन० मुकर्जी ने माध्यमिक विद्यालय के बहुउद्देशीय...

...ए है :

१. यह छात्रों में और तदुपरान्त जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में पुरुषों तथा ...ओं में सामुदायिक एकता की वृद्धि, घनिष्ठ सामुदायिक भावना की उन्नति, ...-भेदों की न्यूनता तथा 'सम्मान की समानता' के विस्तार में योग देता है।[2]

२. यह छात्रों को उनके लिये उपयुक्त समूहों में प्रविष्ट करने के लिये एक ...चित प्रकार का प्रवरण गृह है, क्योंकि बालकों की योग्यताओं का अधिक ...ान प्राप्त हो जाने पर उनको एक प्रकार के पाठ्य-क्रम से दूसरे में स्थाना-...तरित कर देना अधिक सरल है।[3]

३. यह उन शिक्षकों, अभिभावकों तथा बालकों की उस विद्यालय और ...उसमें अध्ययन करने वाले उन छात्रों से घृणा करने की अपरिहार्य प्रवृत्ति पर ...विजय प्राप्त कर सकता है, जो उन विद्यार्थियों को प्रवेश देता है, जिनके लिये अन्य विद्यालयों के द्वार बन्द रहते हैं।[4]

1. "It helps to solve the problem of the wrongly classified pupil, because transfer within the same school is easier to arrange than transfer from one school to another." *Ibid.*
2. "It contributes to the furtherance of social unity, the development of a closely knit community feeling, the reduction in class distinctions and the development of a 'parity of esteem' among students and later men and women in various walks of life." S. N. Mukerji : *Education in India, Today and Tomorrow*, p. 149.
3. "It is a suitable type of sorting house for directing pupils to their appropriate groups, since the transfer of children from one type of course to another in the light of a fuller knowledge of their aptitudes is easier."—*Ibid.*
4. "It can overcome the inevitable tendency of teachers, parents and children to look down upon the school (and pupils who attend it) which admits those who are denied admission in other schools." *Ibid.*

है—मानव-विज्ञान विज्ञान, प्राविधिक, वाणिज्यिक, कृषि, ललितकलायें और गृह-विज्ञान। इन समूहों के विषय निश्चित कर दिये गये हैं। 'अखिल भारतीय माध्यमिक शिक्षा परिषद्'[1] और कुछ राज्यों ने निश्चित कर दिया है कि छात्रों को विभिन्न कक्षाओं में इन विषयों का कितना अध्ययन करना है। परन्तु इसमें दो स्पष्ट दोष हैं। प्रथम, सब राज्यों में शिक्षा का समान स्तर नहीं है। द्वितीय, इन विषयों की पाठ्य-सामग्री को स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार निश्चित नहीं किया गया है। इसके अतिरिक्त बहुउद्देशीय विद्यालयों को किन्हीं भी दो समूहों में शिक्षण प्रदान करने की आज्ञा दे दी गई है। इसका बहुउद्देशीय विद्यालयों के प्रबन्धकों ने अति अनुचित लाभ उठाया है, क्योंकि उन्होंने अपनी सुविधा के अनुसार किन्हीं भी दो समूहों का चयन कर लिया है। उन्होंने विद्यालयों में शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्रों की आवश्यकताओं की ओर अल्प मात्र भी ध्यान नहीं दिया है। परिणामतः शिक्षालयों को बहुउद्देशीय विद्यालयों की संज्ञा तो प्राप्त हो गई है, परन्तु उनके कलेवर में वांछित परिवर्तन नहीं हुआ है।

इस समस्या का समाधान करने के लिये तीन बातों की आवश्यकता है। प्रथम, 'केन्द्रीय शिक्षा-मंत्रालय' अथवा 'अखिल भारतीय माध्यमिक शिक्षा परिषद्' समस्त भारत के बहुउद्देशीय विद्यालयों के विषयों की पाठ्य-सामग्री को शिक्षा-विशेषज्ञों के परामर्श से निश्चित करे। परन्तु ऐसा करने से पूर्व यह आवश्यक है कि शिक्षा-विशेषज्ञ विभिन्न राज्यों का भ्रमण करके वहाँ के विभिन्न भागों की स्थानीय आवश्यकताओं का अध्ययन करें और उसके उपरान्त ही अपने सुझाव दें। द्वितीय, बहुउद्देशीय विद्यालयों को केवल उन्हीं समूहों में शिक्षा प्रदान करने की आज्ञा दी जाय जो उनमें अध्ययन करने वाले छात्रों के लिये हितकर सिद्ध हो सकें। तृतीय, बहुउद्देशीय विद्यालयों में केवल उसी शिल्प का शिक्षण किया जाय, जो स्थानीय आवश्यकता के लिये उपयुक्त हो। इससे दो लाभ होंगे। छात्रों द्वारा निर्मित वस्तुओं का विक्रय किया जा सकेगा और उससे प्राप्त धन को विद्यालय के हितार्थ उपयोग किया जा सकेगा। दूसरा लाभ यह होगा कि उस शिल्प का अध्ययन करके छात्र स्थानीय उद्योगों में कार्य करके अथवा स्वतंत्र रूप से उस वस्तु का उत्पादन करके अपने जीवन का निर्वाह कर सकेंगे।

एक अन्य सुझाव यह भी है कि बहुउद्देशीय विद्यालयों में कम से कम तीन समूहों की शिक्षा दी जाय, दो की नहीं। यदि तीन समूह होंगे, तो कक्षा ६,

---

1. All India Council of Secondary Education.

## १. विद्यालयों को परिणत तथा स्थापित करने की समस्या[1]

सरकारी निर्णय के अनुसार द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्त तक भारत मे बहुउद्देशीय विद्यालयों की संख्या १,४०० हो जायगी। इनमे से कुछ वे होंगे जो हाई स्कूलो तथा उच्चतर माध्यमिक शिक्षालयों से बहुउद्देशीय विद्यालयों मे परिणत किये जायेंगे और कुछ का नवीन निर्माण होगा। परन्तु ऐसा कोई भी राजकीय लेख-प्रमाण नहीं है जिससे यह ज्ञात हो सके कि कौन से माध्यमिक स्कूलों को बहुउद्देशीय विद्यालयों मे परिणत किया जायगा और क्यों? वस्तुतः बिना किसी विचार-पूर्ण पूर्व योजना के यह कार्य सम्पादित किया जा रहा है। बहुउद्देशीय विद्यालयों के नवनिर्माण के सम्बन्ध में भी यही बात सत्य है। ऐसे अनेकों बहुउद्देशीय विद्यालय देश मे स्थापित कर दिये गये हैं, जहाँ उनकी उपादेयता के पक्ष मे कोई भी तर्क प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है।

आवश्यकता इस बात की है कि बहुउद्देशीय विद्यालय सर्व प्रथम उन्हीं स्थानों मे स्थापित किये जायें, जहाँ उनकी वास्तव में माँग हो और जहाँ वे स्थानीय आवश्यकताओं को पूर्ण करने मे समर्थ हों। इस कार्य मे सफलता तभी प्राप्त हो सकती है जब कि सम्पूर्ण देश का सर्वेक्षण किया जाय और तब आवश्यकतानुसार बहुउद्देशीय विद्यालयों का शिलान्यास किया जाय। इसके अतिरिक्त केवल उन्हीं माध्यमिक स्कूलों को बहुउद्देशीय विद्यालयों में परिणत किया जाय, जो इस योग्य हों। एक स्कूल को बहुउद्देशीय विद्यालय मे परिणत करते समय अग्रलिखित बातों को ध्यान में रखा जाय.—(१) स्थानीय आवश्यकता, (२) उत्तम स्थान पर उत्तम भवन जिससे कि उसका विकास किया जा सके, (३) आवागमन की सुविधा, (४) संतोषजनक आर्थिक अवस्था, तथा (५) पर्याप्त शिक्षण सामग्री। यदि कोई स्कूल इन बातों को पूर्ण नहीं करता है, तो उसको बहुउद्देशीय विद्यालय मे परिणत न किया जाय। प्रायः इन्हीं बातों का ध्यान नवीन बहुउद्देशीय विद्यालयों को निर्मित करते समय रखा जाय। यदि ऐसा नहीं किया गया तो बलपूर्वक कहा जा सकता है कि सरकार की बहुउद्देशीय विद्यालयों की योजना पर भीषण कुठाराघात होना कोई आश्चर्य की बात नहीं होगी।

## २. पाठ्य-क्रम के विभिन्नीकरण की समस्या[2]

बहुउद्देशीय विद्यालयों के पाठ्य-क्रम मे सात समूहों को स्थान दिया गया their

1. Problem of selection of schools for conver[illegible] establishment.
2. Problem of diversification of Cou[illegible]

ा,नये कोई उचित परामर्श नहीं देते हैं। इसके विपरीत, वे
ं से माँग करते हैं कि बहुउद्देशीय विद्यालयों में पूर्णतया
प्रयोगशालायें (Laboratories), विशाल कर्मशालायें (Work-shops),
; विस्तृत भूभाग आदि हों। शिक्षा-विभाग के अधिकारियों के इस
बहुउद्देशीय विद्यालयों की योजना को कार्यान्वित करने में सफलता
 सकी है।

स्या का समाधान अत्यन्त सरलता पूर्वक किया जा सकता है। इन
विद्यालयों का अधिकांश प्रायोगिक (Practical) तथा कर्मशाला-
र्य निकटवर्ती औद्योगिक अथवा व्यावसायिक फ़र्मों में किया जा
स्स का उदाहरण हमारे समक्ष है। विद्यालय जाने वाले प्रत्येक
किसी निकट की फ़ेक्ट्री में कुछ घण्टे व्यतीत करने पड़ते हैं।[1] यदि
 भी इस योजना को अपना लिया जाय, तो बहुउद्देशीय विद्यालयों
 में अधिक धन व्यय करने की आवश्यकता नहीं होगी। साथ ही
धिक उत्तम तथा व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त हो सकेगी।

## कों की समस्या[2]

शीय विद्यालयों के लिये उचित शैक्षणिक अर्हताओं (Educational
tions) वाले शिक्षकों की सेवाओं को प्राप्त करना एक ऐसी जटिल
जिसका समाधान सरलता पूर्वक नहीं किया जा सकता है। जिन
ो विज्ञान तथा प्राविधिक विषयों में उच्च शैक्षणिक अर्हतायें हैं, वे
 के प्रति आकर्षित नहीं होते हैं क्योंकि इसमें शिक्षकों को अति
 मिलता है। बात बहुत स्वाभाविक सी है कि जब विज्ञान तथा
वषयों के स्नातकों को औद्योगिक एवं व्यावसायिक फ़र्मों में उच्च
तिरिक्त अन्य सुविधायें ही उपलब्ध हो सकती हैं, तब वे न्यून वेतन
पने पद पर सुरक्षित रहने का आश्वासन भी न पाकर अध्यापन के

udies in the class room are linked with practical
ies, not only through excursions to museums and the
of films and models and practical science, but through
ing a certain number of hours with machines in a
rby factory, and learning about the factory and how
orks, what it makes and what its products are used
"—Maurice Dobb: *U. S. S. R. Her Life and Her Peo-*
, p. 106.

oblem of the Staff.

१० और ११ में ३०० से ४०० तक छात्र हो जायेंगे। यदि विद्यालयों में छात्रों की इतनी संख्या नहीं होगी, तो उनको सफलत मितव्ययता से संचालित नहीं किया जा सकेगा।

### ३. पाठ्य-पुस्तकों तथा समय-सारणियों की समस्या[1]

बहुउद्देशीय विद्यालयों की एक समस्या पाठ्य-पुस्तकों तथा रणियों की है। जो भी प्रधानाध्यापक बहुउद्देशीय विद्यालयों का स रहे हैं, उन्हें इन दोनों कार्यों में कठिनाइयों का सामना करना पड़ बहुउद्देशीय विद्यालयों के लिए उपयुक्त पाठ्य-पुस्तको का अभाव है ध्यापकों को इस प्रकार के विद्यालयों की समय-सारणियाँ बनाने का क नहीं है। वे इस तथ्य से अवगत नहीं हैं कि किस विषय के लिये वि दिया जाना चाहिये। फलतः वे प्राविधिक विषयों तथा हस्तकलाओं सामान्य शिक्षा के विषयो को अधिक प्रधानता प्रदान करते हैं। उद्देशीय विद्यालयो के उद्देश्यों की पूर्ति होना सम्भव नहीं है।

इन परिस्थितियों मे यह आवश्यक जान पड़ता है कि भारत राज्य सरकारें अथवा शिक्षा-विभाग अपनी देख-रेख में शीघ्रातिशी पुस्तकें तैयार करायें और जो शिक्षक तथा लेखक इस प्रकार लिखना चाहते हैं, उन्हे प्रोत्साहन एवं आर्थिक सहायता दें। इ सरकार आदर्श-समय सारणियाँ भी तैयार करावे जिससे कि प्रधान का पथ-प्रदर्शन हो सके।

### ४. व्यावसायिक पाठ्य-क्रमों की समस्या[2]

व्यावसायिक विषयों के शिक्षण की व्यवस्था करने मे पर्याप्त आवश्यकता होने के कारण बहुउद्देशीय विद्यालयों के प्रबन्धकों द्वा दुरूह समस्या का अनुभव किया जा रहा है। ऐसे विद्यालयों की संख्या न जिनके पास धन का अभाव नहीं है। साधारणतः प्रबन्ध समितियाँ विद्या ज्यों-त्यों करके चला पाती हैं। अतः अधिकांश बहुउद्देशीय विद्यालयों इतना धन नहीं है कि वे व्यावसायिक विषयों के शिक्षण का समुचित कर सकें। धनाभाव के कारण ही अनेकों प्रबन्ध समितियाँ न तो हाई को बहुउद्देशीय विद्यालयों में परिणत कर सकती हैं और न नवीन बहुउ विद्यालयों की स्थापना कर सकती हैं। उनकी कठिनाई इसलिए अ अधिक हो जाती है क्योंकि शिक्षा-विभाग उन्हें अपनी कठिनाइयों पर

---

1. Problem of Text-Books and Time Tables.
2. Problem of Vocational Courses.

प्राप्त करने के लिये कोई उचित परामर्श नहीं देते हैं। इसके विपरीत, वे प्रबन्ध समितियों से माँग करते हैं कि बहुउद्देशीय विद्यालयों में पूर्णतया सुसज्जित प्रयोगशालायें (Laboratories), विशाल कर्मशालायें (Work-shops), कृषि के लिये विस्तृत भूभाग आदि हों। शिक्षा-विभाग के अधिकारियों के इस दृष्टिकोण से बहुउद्देशीय विद्यालयों की योजना को कार्यान्वित करने में सफलता नहीं प्राप्त हो सकी है।

इस समस्या का समाधान अत्यन्त सरलता पूर्वक किया जा सकता है। इन बहुउद्देशीय विद्यालयों का अधिकांश प्रायोगिक (Practical) तथा कर्मशाला-सम्बन्धी कार्य निकटवर्ती औद्योगिक अथवा व्यावसायिक फ़र्मों में किया जा सकता है। रूस का उदाहरण हमारे समक्ष है। विद्यालय जाने वाले प्रत्येक बालक को किसी निकट की फ़ैक्ट्री में कुछ घण्टे व्यतीत करने पड़ते हैं।[1] यदि हमारे देश में भी इस योजना को अपना लिया जाय, तो बहुउद्देशीय विद्यालयों की स्थापना में अधिक धन व्यय करने की आवश्यकता नहीं होगी। साथ ही छात्रों को अधिक उत्तम तथा व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त हो सकेगी।

### ५. शिक्षकों की समस्या[2]

बहुउद्देशीय विद्यालयों के लिये उचित शैक्षणिक अर्हताओं (Educational Qualifications) वाले शिक्षकों की सेवाओं को प्राप्त करना एक ऐसी जटिल समस्या है जिसका समाधान सरलता पूर्वक नहीं किया जा सकता है। जिन व्यक्तियों की विज्ञान तथा प्राविधिक विषयों में उच्च शैक्षणिक अर्हतायें हैं, वे शिक्षा-वृत्ति के प्रति आकर्षित नहीं होते हैं क्योंकि इसमें शिक्षकों को अति न्यून वेतन मिलता है। बात बहुत स्वाभाविक सी है कि जब विज्ञान तथा प्राविधिक विषयों के स्नातकों को औद्योगिक एवं व्यावसायिक फ़र्मों में उच्च वेतन के अतिरिक्त अन्य सुविधायें ही उपलब्ध हो सकती हैं, तब वे न्यून वेतन पर और अपने पद पर सुरक्षित रहने का आश्वासन भी न पाकर अध्यापन के

1. "Studies in the class room are linked with practical studies, not only through excursions to museums and the use of films and models and practical science, but through having a certain number of hours with machines in a nearby factory, and learning about the factory and how it works, what it makes and what its products are used for."—Maurice Dobb: *U. S. S. R. Her Life and Her People*, p. 106.
2. Problem of the Staff.

१० और ११ में १०० से २०० तक छात्र हो जायेंगे। यदि बहुउद्देशीय विद्यालयों में छात्रों की इतनी संख्या नहीं होगी, तो उनको सफलता पूर्वक तथा मितव्ययता से संचालित नहीं किया जा सकेगा।

### ३. पाठ्य-पुस्तकों तथा समय-सारणियों की समस्या[1]

बहुउद्देशीय विद्यालयों की एक समस्या पाठ्य-पुस्तकों तथा समय-सारणियों की है। जो भी प्रधानाध्यापक बहुउद्देशीय विद्यालयों का संचालन कर रहे हैं, उन्हें इन दोनों कार्यों में कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। बहुउद्देशीय विद्यालयों के लिए उपयुक्त पाठ्य-पुस्तकों का अभाव है। प्रधानाध्यापकों को इस प्रकार के विद्यालयों की समय-सारणियाँ बनाने का कोई अनुभव नहीं है। वे इस तथ्य से अवगत नहीं हैं कि किस विषय के लिये कितना समय दिया जाना चाहिये। फलतः वे प्राविधिक विषयों तथा हस्तकलाओं की अपेक्षा सामान्य शिक्षा के विषयों को अधिक प्रधानता प्रदान करते हैं। इससे बहु-उद्देशीय विद्यालयों के उद्देश्यों की पूर्ति होना सम्भव नहीं है।

इन परिस्थितियों में यह आवश्यक जान पड़ता है कि भारत सरकार, राज्य सरकारें अथवा शिक्षा-विभाग अपनी देख-रेख में शीघ्रातिशीघ्र पाठ्य-पुस्तकें तैयार करायें और जो शिक्षक तथा लेखक इस प्रकार की पुस्तकें लिखना चाहते हैं, उन्हें प्रोत्साहन एवं आर्थिक सहायता दें। इसी प्रकार सरकार आदर्श-समय सारणियाँ भी तैयार करावे जिससे कि प्रधानाध्यापकों का पथ-प्रदर्शन हो सके।

### ४. व्यावसायिक पाठ्य-क्रमों की समस्या[2]

व्यावसायिक विषयों के शिक्षण की व्यवस्था करने में पर्याप्त धन की आवश्यकता होने के कारण बहुउद्देशीय विद्यालयों के प्रबन्धकों द्वारा अति दुरूह समस्या का अनुभव किया जा रहा है। ऐसे विद्यालयों की संख्या नगण्य है, जिनके पास धन का अभाव नहीं है। साधारणतः प्रबन्ध समितियाँ विद्यालयों को ज्यों-त्यों करके चला पाती हैं। अतः अधिकांश बहुउद्देशीय विद्यालयों के पास इतना धन नहीं है कि वे व्यावसायिक विषयों के शिक्षण का समुचित प्रबन्ध कर सकें। धनाभाव के कारण ही अनेकों प्रबन्ध समितियाँ न तो हाई स्कूलों को बहुउद्देशीय विद्यालयों में परिणत कर सकती हैं और न नवीन बहुउद्देशीय विद्यालयों की स्थापना कर सकती हैं। उनकी कठिनाई इसलिए और भी अधिक हो जाती है क्योंकि शिक्षा-विभाग उन्हें अपनी कठिनाइयों पर विजय

---

1. Problem of Text-Books and Time Tables.
2. Problem of Vocational Courses.

## ६. अभिभावकों के विरोध की समस्या

श्री नटराजन ( Natrajan ) ने एक अन्य समस्या का उल्लेख किया है, जो व्यावहारिक रूप में बहुउद्देशीय विद्यालयों के प्रधानाध्यापकों को व्यथित कर रही है। यह समस्या है, छात्रों के अभिभावकों की संतुष्टि की। छात्रों द्वारा विषयों के चुनाव किये जाने में अभिभावकों की इच्छाओं को सम्मानित किया जाना आवश्यक है। यदि एक छात्र को उसकी अभियोग्यताओं तथा अभिरुचियों को ध्यान में रखकर 'कृषि समूह' के विषयों का अध्ययन करने का परामर्श दिया जाता है और यदि अभिभावक चाहता है कि छात्र को 'प्राविधिक समूह' के विषय दिये जायँ, तो बहुउद्देशीय विद्यालय के प्राधानाध्यापक के समक्ष एक जटिल समस्या उपस्थित हो जाती है।

श्री नटराजन ने इस समस्या का समाधान भी बताया है। उनका कहना है कि यदि मार्ग-प्रदर्शन की विधि को पूर्णरूप से समुन्नत कर दिया जाय, तो अभिभावक को यह विश्वास दिलाना कठिन नहीं होगा कि छात्र को जिस समूह के विषयों को लेने का परामर्श दिया गया है, वे उसके लिये हितकर सिद्ध होंगे, क्योंकि वह अपनी अभियोग्यताओं एवं अभिनतियों (Inclinations) के कारण उनके लिये उपयुक्त है।[1]

बहुउद्देशीय विद्यालयों की जिन समस्याओं का वर्णन ऊपर किया गया है, वे वस्तुतः बाधक सिद्ध हो रही हैं। यदि यह वांच्छित है कि बहुउद्देशीय विद्यालयों की संख्या में अबाध गति से वृद्धि हो, तो यह नितान्त आवश्यक है कि इन समस्याओं के समाधान के लिये उपरिवर्णित सुझावों का सरकार, विद्यालयों के प्रबन्धकों तथा शिक्षा-विभागों द्वारा परीक्षण किया जाय। यदि ऐसा किया गया, तो हमें विश्वास है कि बहुउद्देशीय विद्यालयों की स्थापना का कार्य पर्याप्त सरल हो जायगा।

---

1. "A problem which Headmasters of Multipurpose Schools are faced with is satisfying the wishes of the parents. Parents' views in respect of the choice of courses certainly constitute an important factor and cannot be ignored, but if the technique of guidance is well developed, it should not be impossible to convince the parents that a particular child would do better, if put into a practical course rather than in a purely academic course."—Sri Natrajan's Article; *"Multipurpose School and Guidance"* in *Educational and Vocational Guidance in Multipurpose Schools*, p. 33.

## ६. अभिभावकों के विरोध की समस्या

श्री नटराजन ( Natrajan ) ने एक अन्य समस्या का उल्लेख किया है, जो व्यावहारिक रूप में बहुउद्देशीय विद्यालयों के प्रधानाध्यापकों को व्यथित कर रही है। यह समस्या है, छात्रों के अभिभावकों की संतुष्टि की। छात्रों द्वारा विषयों के चुनाव किये जाने में अभिभावकों की इच्छाओं को सम्मानित किया जाना आवश्यक है। यदि एक छात्र को उसकी अभियोग्यताओं तथा अभिरुचियों को ध्यान में रखकर 'कृषि समूह' के विषयों का अध्ययन करने का परामर्श दिया जाता है और यदि अभिभावक चाहता है कि छात्र को 'प्राविधिक समूह' के विषय दिये जायें, तो बहुउद्देशीय विद्यालय के प्रधानाध्यापक के समक्ष एक जटिल समस्या उपस्थित हो जाती है।

श्री नटराजन ने इस समस्या का समाधान भी बताया है। उनका कहना है कि यदि मार्ग-प्रदर्शन की विधि को पूर्णरूप से समुन्नत कर दिया जाय, तो अभिभावक को यह विश्वास दिलाना कठिन नहीं होगा कि छात्र को जिस समूह के विषयों को लेने का परामर्श दिया गया है, वे उसके लिये हितकर सिद्ध होंगे, क्योंकि वह अपनी अभियोग्यताओं एवं अभिनतियों (Inclinations) के कारण उनके लिये उपयुक्त हैं।[1]

बहुउद्देशीय विद्यालयों की जिन समस्याओं का वर्णन ऊपर किया गया है, वे वस्तुतः बाधक सिद्ध हो रही हैं। यदि यह वाञ्छित है कि बहुउद्देशीय विद्यालयों की संख्या में अबाध गति से वृद्धि हो, तो यह नितान्त आवश्यक है कि इन समस्याओं के समाधान के लिये उपरिवर्णित सुझावों का सरकार, विद्यालयों के प्रबन्धकों तथा शिक्षा-विभागों द्वारा परीक्षण किया जाय। यदि ऐसा किया गया, तो हमें विश्वास है कि बहुउद्देशीय विद्यालयों की स्थापना का कार्य पर्याप्त सरल हो जायगा।

---

1. "A problem which Headmasters of Multipurpose Schools are faced with is satisfying the wishes of the parents. Parents' views in respect of the choice of courses certainly constitute an important factor and cannot be ignored, but if the technique of guidance is well developed, it should not be impossible to convince the parents that a particular child would do better, if put into a practical course rather than in a purely academic course."—Sri Natrajan's Article; *"Multipurpose School and Guidance" in Educational and Vocational Guidance in Multipurpose Schools*, p. 33.

## सारांश

**बहुउद्देशीय विद्यालय का अर्थ** :—मुदालियर कमीशन के अनुसार "एक बहुउद्देशीय विद्यालय विभिन्न उद्देश्यों, रुचियों तथा योग्यताओं वाले छात्रों के लिए विभिन्न प्रकार के पाठ्य-क्रमों का आयोजन करता है। यह प्रत्येक छात्र को व्यक्तिगत रूप से उसके द्वारा चयन किये गए अध्ययन के विशिष्ट पाठ्य-क्रम में अपनी स्वाभाविक योग्यताओं तथा अभिनतियों का प्रयोग करने तथा उनको विकसित करने का उपयुक्त अवसर प्रदान करने का प्रयास करता है।"

**बहुउद्देश्य विद्यालय के उद्देश्य**—बहुउद्देशीय विद्यालय के उद्देश्य इस प्रकार हैं :—(१) उन साधनों, सामग्रियों एवं प्रक्रियाओं के प्रयोग की व्यापक शिक्षा प्रदान करना जो सभ्यता के विकास-क्रम को आगे बढ़ाने में योग देती हैं, (२) छात्र के व्यक्तित्व का सर्वाङ्गीण विकास करना, (३) छात्रों की क्षमताओं को राष्ट्रीय चरित्र एवं राष्ट्रीय सम्पत्ति के निर्माण की दिशा में परिचालित करना, (४) छात्रों में अधिक ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा और उनमें स्वतन्त्र रूप से कार्य करने की योग्यता उत्पन्न करना, (५) छात्रों में एक शिल्प की इतनी दक्षता उत्पन्न कर देना कि वे उससे सम्बन्धित व्यवसाय को सफलतापूर्वक कर सकें, और (६) छात्रों को किसी रचनात्मक, उत्पादक तथा समाज के लिए हितकर कार्य की शिक्षा देना।

**बहुउद्देशीय विद्यालयों की प्रगति**—बहुउद्देशीय विद्यालयों की योजना अक्टूबर १९५४ से प्रारम्भ की गई है। प्रथम पंचवर्षीय योजना में २५० बहुउद्देशीय विद्यालय स्थापित किए गए। द्वितीय योजना के अन्त तक १,४०० बहुउद्देशीय विद्यालय हो जायेंगे।

**बहुउद्देशीय विद्यालयों की आवश्यकतायें**—ये आवश्यकतायें हुमायूँ कबीर के अनुसार अग्रलिखित हैं :—(१) बहुउद्देशीय विद्यालय विभिन्न पाठ्य-क्रमों की शिक्षा देंगे, (२) माध्यमिक शिक्षा एक मार्गीय नहीं रहेगी, (३) अपनी ... के अनुसार विभिन्न विषयों की शिक्षा प्राप्त करके छात्रों के व्यक्तित्व का वि... सम्भव होगा, (४) बहुउद्देशीय विद्यालयों का विभिन्न पाठ्य-क्रम किशोर ... की शारीरिक, मनोवैज्ञानिक तथा भावनात्मक मांगों की पूर्ति करेगा, (५) ... के अन्तर्हित गुणों का विकास होगा, (६) छात्रों को बेसिक स्कूलों में ... हुए शिल्प का बहुउद्देशीय विद्यालयों में अधिक अध्ययन करने का अवसर ... होगा, और (७) शारीरिक श्रम के प्रति सामाजिक घृणा का अन्त होगा।

**बहुउद्देशीय विद्यालयों के लाभ**—माध्यमिक शिक्षा-आयोग के अनु... (१) विभिन्न विषयों का अध्ययन करने के कारण छात्रों में उत्पन्न हों...

घृणास्पद भेद-भाव का अन्त, (२) शिक्षा-प्रणाली का प्रजातन्त्रीय आधार पर आयोजन, (३) छात्रों की रुचि एवं योग्यता के अनुसार विषयों का चयन, और (४) छात्रों का भूल के कारण एक पाठ्य-क्रम से दूसरे को स्थानांतरण। मुकर्जी के अनुसार—(१) सामुदायिक एकता की वृद्धि, (२) सामुदायिक भावना की उन्नति, (३) वर्ग-भेदों की न्यूनता, (४) सम्मान की समानता में वृद्धि, (५) छात्रों का उपयुक्त समूहों में प्रवेश, (६) सामुदायिक जीवन की संरचना के अन्तर्गत बालकों की योग्यताओं मे उन्नति। हुमायूं कबीर के अनुसार—(१) विभिन्न योग्यताओं तथा रुचियों वाले छात्रों के लिये विभिन्न पाठ्य-क्रमों की व्यवस्था, (२) कृषि, औद्योगिक तथा प्राविधिक कार्यों के लिये प्रशिक्षित व्यक्तियों का निर्माण, (३) पाठ्य-क्रम सहगामी क्रियाओं द्वारा छात्रों को आत्म-अभिव्यक्ति का अवसर और (४) हस्तकला की शिक्षा द्वारा शारीरिक श्रम के प्रति सम्मान।

बहुउद्देशीय विद्यालयों की समस्यायें—ये समस्यायें अग्रांकित हैं—(१) विद्यालयों को परिणत तथा स्थापित करने की समस्या, (२) पाठ्य-क्रम के विभिन्नीकरण की समस्या, (३) पाठ्य-पुस्तकों तथा समय-सारणियों की समस्या, (४) व्यावसायिक पाठ्य-क्रमों की समस्या, (५) शिक्षकों की समस्या, और (६) अभिभावकों के विरोध की समस्या।

## सहायक पुस्तको की सूची


1. *Report of the Secondary Education Commission.*
2. *Educational and Vocational Guidance in Multipurpose Schools.*
3. Humayun Kabir : *Education in New India.*
4. S. N. Mukerji : *Education in India, Today and Tomorrow.*
5. Maurice Dobb : *U. S. S. R. Her Life and Her people.*
६. शिक्षा-विचार गोष्ठी, नैनीताल की विवरण-पत्रिका।
७. द्वितीय पंचवर्षीय योजना।
८. तीसरी पंचवर्षीय योजना : प्रारम्भिक रूपरेखा।
९. क्रिगरन और शर्मा : हमारे शिक्षा-प्रतिवेदन।

## सारांश

**बहुउद्देशीय विद्यालय का अर्थ** :—मुदालियर कमीशन के अनुसार "एक बहुउद्देशीय विद्यालय विभिन्न उद्देश्यों, रुचियों तथा योग्यताओं वाले छात्रों के लिए विभिन्न प्रकार के पाठ्य-क्रमों का आयोजन करता है। यह प्रत्येक छात्र को व्यक्तिगत रूप से उसके द्वारा चयन किये गए अध्ययन के विशिष्ट पाठ्य-क्रम में अपनी स्वाभाविक योग्यताओं तथा अभिरुचियों का प्रयोग करने तथा उनको विकसित करने का उपयुक्त अवसर प्रदान करने का प्रयास करता है।"

**बहुउद्देश्य विद्यालय के उद्देश्य**—बहुउद्देशीय विद्यालय के उद्देश्य इस प्रकार हैं :—(१) उन साधनों, सामग्रियों एवं प्रक्रियाओं के प्रयोग की व्यापक शिक्षा प्रदान करना जो सभ्यता के विकास-क्रम को आगे बढ़ाने में योग देती हैं, (२) छात्र के व्यक्तित्व का सर्वाङ्गीण विकास करना, (३) छात्रों की क्षमताओं को राष्ट्रीय चरित्र एवं राष्ट्रीय सम्पत्ति के निर्माण की दिशा में परिचालित करना, (४) छात्रों में अधिक ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा और उनमें स्वतन्त्र रूप से कार्य करने की योग्यता उत्पन्न करना, (५) छात्रों में एक शिल्प की इतनी दक्षता उत्पन्न कर देना कि वे उससे सम्बन्धित व्यवसाय को सफलतापूर्वक कर सकें, और (६) छात्रों को किसी रचनात्मक, उत्पादक तथा समाज के लिए हितकर कार्य की शिक्षा देना।

**बहुउद्देशीय विद्यालयों की प्रगति**—बहुउद्देशीय विद्यालयों की योजना अक्टूबर १९५४ से प्रारम्भ की गई है। प्रथम पंचवर्षीय योजना में २५० बहुउद्देशीय विद्यालय स्थापित किए गए। द्वितीय योजना के अन्त तक १,४०० बहुउद्देशीय विद्यालय हो जायेंगे।

**बहुउद्देशीय विद्यालयों की आवश्यकताएँ**—ये आवश्यकतायें हुमायूँ कबीर के अनुसार अग्रलिखित हैं :—(१) बहुउद्देशीय विद्यालय विभिन्न पाठ्य-क्रमों की शिक्षा देंगे, (२) माध्यमिक शिक्षा एक मार्गीय नहीं रहेगी, (३) अपनी रुचि के अनुसार विभिन्न विषयों की शिक्षा प्राप्त करके छात्रों के व्यक्तित्व का विकास सम्भव होगा, (४) बहुउद्देशीय विद्यालयों का विभिन्न पाठ्य-क्रम किशोर छात्रों की शारीरिक, मनोवैज्ञानिक तथा भावनात्मक माँगों की पूर्ति करेगा, (५) छात्रों के अन्तर्हित गुणों का विकास होगा, (६) छात्रों को बेसिक स्कूलों में सीखे हुए शिल्प का बहुउद्देशीय विद्यालयों में अधिक अध्ययन करने का अवसर प्राप्त होगा, और (७) शारीरिक श्रम के प्रति सामाजिक घृणा का अन्त होगा।

**बहुउद्देशीय विद्यालयों के लाभ**—माध्यमिक शिक्षा-आयोग के अनुसार—(१) विभिन्न विषयों का अध्ययन करने के कारण छात्रों में उत्पन्न होने वाले

घृणास्पद भेद-भाव का अन्त, (२) शिक्षा-प्रणाली का प्रजातन्त्रीय आधार पर आयोजन, (३) छात्रों की रुचि एवं योग्यता के अनुसार विषयों का चयन, और (४) छात्रों का भूल के कारण एक पाठ्य-क्रम से दूसरे को स्थानांतरण। मुकर्जी के अनुसार—(१) सामुदायिक एकता की वृद्धि, (२) सामुदायिक भावना की उन्नति, (३) वर्ग-भेदों की न्यूनता, (४) सम्मान की समानता में वृद्धि, (५) छात्रों का उपयुक्त समूहों में प्रेषण, (६) सामुदायिक जीवन की संरचना के अन्तर्गत बालकों की योग्यताओं में उन्नति। हुमायूं कबीर के अनुसार—(१) विभिन्न योग्यताओं तथा रुचियों वाले छात्रों के लिये विभिन्न पाठ्य-क्रमों की व्यवस्था, (२) कृषि, औद्योगिक तथा प्राविधिक कार्यों के लिये प्रशिक्षित व्यक्तियों का निर्माण, (३) पाठ्य-क्रम सहगामी क्रियाओं द्वारा छात्रों को आत्म-अभिव्यक्ति का अवसर और (४) हस्तकला की शिक्षा द्वारा शारीरिक श्रम के प्रति सम्मान।

बहुउद्देशीय विद्यालयों की समस्यायें—ये समस्यायें अग्रांकित हैं—(१) विद्यालयों को परिणत तथा स्थापित करने की समस्या, (२) पाठ्य-क्रम के विभिन्नीकरण की समस्या, (३) पाठ्य-पुस्तकों तथा समय-सारणियों की समस्या, (४) व्यावसायिक पाठ्य-क्रमों की समस्या, (५) शिक्षकों की समस्या, और (६) अभिभावकों के विरोध की समस्या।

## सहायक पुस्तकों की सूची


1. *Report of the Secondary Education Commission.*
2. *Educational and Vocational Guidance in Multipurpose Schools.*
3. Humayun Kabir : *Education in New India.*
4. S. N. Mukerji : *Education in India, Today and Tomorrow.*
5. Maurice Dobb : *U. S. S. R. Her Life and Her people.*

६. शिक्षा-विचार गोष्ठी, नैनीताल की विवरण-पत्रिका।

७. द्वितीय पंचवर्षीय योजना।

८. तीसरी पंचवर्षीय योजना : प्रारम्भिक रूपरेखा।

९. भिगरन और शर्मा : हमारे शिक्षा-प्रतिवेदन।

## सारांश

**बहुउद्देशीय विद्यालय का अर्थ**:—मुदालियर कमीशन के अनुसार "एक बहुउद्देशीय विद्यालय विभिन्न उद्देश्यों, रुचियों तथा योग्यताओं वाले छात्रों के लिए विभिन्न प्रकार के पाठ्य-क्रमों का आयोजन करता है। यह प्रत्येक छात्र को व्यक्तिगत रूप से उसके द्वारा चयन किये गए अध्ययन के विशिष्ट पाठ्य-क्रम में अपनी स्वाभाविक योग्यताओं तथा अभिनतियों का प्रयोग करने तथा उनको विकसित करने का उपयुक्त अवसर प्रदान करने का प्रयास करता है।"

**बहुउद्देश्य विद्यालय के उद्देश्य**—बहुउद्देशीय विद्यालय के उद्देश्य इस प्रकार हैं:—(१) उन साधनों, सामग्रियों एवं प्रक्रियाओं के प्रयोग की व्यापक शिक्षा प्रदान करना जो सभ्यता के विकास-क्रम को आगे बढ़ाने में योग देती हैं, (२) छात्र के व्यक्तित्व का सर्वाङ्गीण विकास करना, (३) छात्रों की क्षमताओं को राष्ट्रीय चरित्र एवं राष्ट्रीय सम्पत्ति के निर्माण की दिशा में परिचालित करना, (४) छात्रों में अधिक ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा और उनमें स्वतन्त्र रूप से कार्य करने की योग्यता उत्पन्न करना, (५) छात्रों में एक शिल्प की इतनी दक्षता उत्पन्न कर देना कि वे उससे सम्बन्धित व्यवसाय को सफलतापूर्वक कर सकें, और (६) छात्रों को किसी रचनात्मक, उत्पादक तथा समाज के लिए हितकर कार्य की शिक्षा देना।

**बहुउद्देशीय विद्यालयों की प्रगति**—बहुउद्देशीय विद्यालयों की योजना अक्टूबर १९५४ से प्रारम्भ की गई है। प्रथम पंचवर्षीय योजना में २५० बहुउद्देशीय विद्यालय स्थापित किए गए। द्वितीय योजना के अन्त तक १,४०० बहुउद्देशीय विद्यालय हो जायेंगे।

**बहुउद्देशीय विद्यालयों की आवश्यकताएँ**—ये आवश्यकतायें हुमायूँ कबीर के अनुसार अग्रलिखित हैं:—(१) बहुउद्देशीय विद्यालय विभिन्न पाठ्य-क्रमों की शिक्षा देंगे, (२) माध्यमिक शिक्षा एक मार्गीय नहीं रहेगी, (३) अपनी रुचि के अनुसार विभिन्न विषयों की शिक्षा प्राप्त करके छात्रों के व्यक्तित्व का विकास सम्भव होगा, (४) बहुउद्देशीय विद्यालयों का विभिन्न पाठ्य-क्रम किशोर छात्रों की शारीरिक, मनोवैज्ञानिक तथा भावनात्मक मांगों की पूर्ति करेगा, (५) छात्रों के अन्तर्हित गुणों का विकास होगा, (६) छात्रों को बेसिक स्कूलों में सीखे हुए शिल्प का बहुउद्देशीय विद्यालयों में अधिक अध्ययन करने का अवसर प्राप्त होगा, और (७) शारीरिक श्रम के प्रति सामाजिक घृणा का अन्त होगा।

**बहुउद्देशीय विद्यालयों के लाभ**—माध्यमिक शिक्षा-आयोग के अनुसार—(१) विभिन्न विषयों का अध्ययन करने के कारण छात्रों में उत्पन्न होने वाले

छुग्राछूत भेद-भाव का अन्त, (२) शिक्षा-प्रणाली का प्रजातन्त्रीय आधार पर आयोजन, (३) छात्रों की रुचि एवं योग्यता के अनुसार विषयों का चयन, और (४) छात्रों का भूल के कारण एक पाठ्य-क्रम से दूसरे को स्थानांतरण। मुकर्जी के अनुसार—(१) सामुदायिक एकता की वृद्धि, (२) सामुदायिक भावना की उन्नति, (३) वर्ग-भेदों की न्यूनता, (४) सम्मान की समानता में वृद्धि, (५) छात्रों का उपयुक्त समूहों में प्रेषण, (६) सामुदायिक जीवन की संरचना के अन्तर्गत बालकों की योग्यताओं में उन्नति। हुमायूँ कबीर के अनुसार—(१) विभिन्न योग्यताओं तथा रुचियों वाले छात्रों के लिये विभिन्न पाठ्य-क्रमों की व्यवस्था, (२) कृषि, औद्योगिक तथा प्राविधिक कार्यों के लिये प्रशिक्षित व्यक्तियों का निर्माण, (३) पाठ्य-क्रम सहगामी क्रियाओं द्वारा छात्रों को आत्म-अभिव्यक्ति का अवसर और (४) हस्तकला की शिक्षा द्वारा शारीरिक श्रम के प्रति सम्मान।

बहुउद्देशीय विद्यालयों की समस्यायें—ये समस्यायें अग्रांकित हैं—(१) विद्यालयों को परिणत तथा स्थापित करने की समस्या, (२) पाठ्य-क्रम के विभिन्नीकरण की समस्या, (३) पाठ्य-पुस्तकों तथा समय-सारणियों की समस्या, (४) व्यावसायिक पाठ्य-क्रमों की समस्या, (५) शिक्षकों की समस्या, और (६) अभिभावकों के विरोध की समस्या।

## सहायक पुस्तकों की सूची


1. *Report of the Secondary Education Commission.*
2. *Educational and Vocational Guidance in Multipurpose Schools.*
3. Humayun Kabir : *Education in New India.*
4. S. N. Mukerji : *Education in India, Today and Tomorrow.*
5. Maurice Dobb : *U. S. S. R. Her Life and Her people.*

६. शिक्षा-विचार गोष्ठी, नैनीताल की विवरण-पत्रिका।

७. द्वितीय पंचवर्षीय योजना।

८. तीसरी पंचवर्षीय योजना : प्रारम्भिक रूपरेखा।

९. भिमरन और शर्मा : हमारे शिक्षा-प्रतिवेदन।

## सारांश

**बहुउद्देशीय विद्यालय का अर्थ :**—मुदालियर कमीशन के अनुसार "एक बहुउद्देशीय विद्यालय विभिन्न उद्देश्यों, रुचियों तथा योग्यताओं वाले छात्रों के लिए विभिन्न प्रकार के पाठ्य-क्रमों का आयोजन करता है। यह प्रत्येक छात्र को व्यक्तिगत रूप से उसके द्वारा चयन किये गए अध्ययन के विशिष्ट पाठ्य-क्रम में अपनी स्वाभाविक योग्यताओं तथा अभिरुचियों का प्रयोग करने तथा उनको विकसित करने का उपयुक्त अवसर प्रदान करने का प्रयास करता है।"

**बहुउद्देश्य विद्यालय के उद्देश्य**—बहुउद्देशीय विद्यालय के उद्देश्य इस प्रकार हैं :—(१) उन साधनों, सामग्रियों एवं प्रक्रियाओं के प्रयोग की व्यापक शिक्षा प्रदान करना जो सभ्यता के विकास-क्रम को आगे बढ़ाने में योग देती हैं, (२) छात्र के व्यक्तित्व का सर्वाङ्गीण विकास करना, (३) छात्रों की क्षमताओं को राष्ट्रीय चरित्र एवं राष्ट्रीय सम्पत्ति के निर्माण की दिशा में परिचालित करना, (४) छात्रों में अधिक ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा और उनमें स्वतन्त्र रूप से कार्य करने की योग्यता उत्पन्न करना, (५) छात्रों में एक शिल्प की इतनी दक्षता उत्पन्न कर देना कि वे उससे सम्बन्धित व्यवसाय को सफलतापूर्वक कर सकें, और (६) छात्रों को किसी रचनात्मक, उत्पादक तथा समाज के लिए हितकर कार्य की शिक्षा देना।

**बहुउद्देशीय विद्यालयों की प्रगति**—बहुउद्देशीय विद्यालयों की योजना अक्टूबर १९५४ से प्रारम्भ की गई है। प्रथम पंचवर्षीय योजना में २५० बहुउद्देशीय विद्यालय स्थापित किए गए। द्वितीय योजना के अन्त तक १,४०० बहुउद्देशीय विद्यालय हो जायेंगे।

**बहुउद्देशीय विद्यालयों की आवश्यकताएँ**—ये आवश्यकतायें हुमायूँ कबीर के अनुसार अग्रलिखित हैं :—(१) बहुउद्देशीय विद्यालय विभिन्न पाठ्य-क्रमों की शिक्षा देंगे, (२) माध्यमिक शिक्षा एक मार्गीय नहीं रहेगी, (३) अपनी रुचि के अनुसार विभिन्न विषयों की शिक्षा प्राप्त करके छात्रों के व्यक्तित्व का विकास सम्भव होगा, (४) बहुउद्देशीय विद्यालयों का विभिन्न पाठ्य-क्रम किशोर छात्रों की शारीरिक, मनोवैज्ञानिक तथा भावनात्मक माँगों की पूर्ति करेगा, (५) छात्रों के अन्तर्हित गुणों का विकास होगा, (६) छात्रों को बेसिक स्कूलों में सीखे हुए शिल्प का बहुउद्देशीय विद्यालयों में अधिक अध्ययन करने का अवसर प्राप्त होगा, और (७) शारीरिक श्रम के प्रति सामाजिक घृणा का अन्त होगा।

**बहुउद्देशीय विद्यालयों के लाभ**—माध्यमिक शिक्षा-आयोग के अनुसार—(१) विभिन्न विषयों का अध्ययन करने के कारण छात्रों में उत्पन्न होने वाले

घृणास्पद भेद-भाव का अन्त, (२) शिक्षा-प्रणाली का प्रजातन्त्रीय आधार पर आयोजन, (३) छात्रों की रुचि एवं योग्यता के अनुसार विषयों का चयन, और (४) छात्रों का भूल के कारण एक पाठ्य-क्रम से दूसरे को स्थानान्तरण। मुकर्जी के अनुसार—(१) सामुदायिक एकता की वृद्धि, (२) सामुदायिक भावना की उन्नति, (३) वर्ग-भेदों की न्यूनता, (४) सम्मान की समानता में वृद्धि, (५) छात्रों का उपयुक्त समूहों में प्रवेश, (६) सामुदायिक जीवन की संरचना के अन्तर्गत बालकों की योग्यताओं में उन्नति। हुमायूँ कबीर के अनुसार—(१) विभिन्न योग्यताओं तथा रुचियों वाले छात्रों के लिये विभिन्न पाठ्य-क्रमों की व्यवस्था, (२) कृषि, औद्योगिक तथा प्राविधिक कार्यों के लिये प्रशिक्षित व्यक्तियों का निर्माण, (३) पाठ्य-क्रम सहगामी क्रियाओं द्वारा छात्रों को आत्म-अभिव्यक्ति का अवसर और (४) हस्तकला की शिक्षा द्वारा शारीरिक श्रम के प्रति सम्मान।

बहुउद्देशीय विद्यालयों की समस्यायें—ये समस्यायें अग्रांकित हैं—(१) विद्यालयों को परिणत तथा स्थापित करने की समस्या, (२) पाठ्य-क्रम के विभिन्नीकरण की समस्या, (३) पाठ्य-पुस्तकों तथा समय-सारणियों की समस्या, (४) व्यावसायिक पाठ्य-क्रमों की समस्या, (५) शिक्षकों की समस्या, और (६) अभिभावकों के विरोध की समस्या।

## सहायक पुस्तकों की सूची


1. *Report of the Secondary Education Commission.*
2. *Educational and Vocational Guidance in Multipurpose Schools.*
3. Humayun Kabir : *Education in New India.*
4. S. N. Mukerji : *Education in India, Today and Tomorrow.*
5. Maurice Dobb : *U. S. S. R. Her Life and Her people.*
६. शिक्षा-विचार गोष्ठी, नैनीताल की विवरण-पत्रिका।
७. द्वितीय पंचवर्षीय योजना।
८. तीसरी पंचवर्षीय योजना : प्रारम्भिक रूपरेखा।
९. मिश्रन और शर्मा : हमारे शिक्षा-प्रतिवेदन।

## TEST QUESTIONS

1. What do you understand by a multipurpose school? Describe its aims and objects.
2. Briefly describe the need of multipurpose schools in India. How far has this need been fulfilled by the establishment of multipurpose schools in our country ?
3. What arguments have you to offer in favour of the establishment of multipurpose schools in your country ?
4. "The organisation of multipurpose school is presenting anumber of problems." What ar ethese problems and how can they be solved ?

— o —

अध्याय ७

# शिक्षा पर प्रौद्योगिकीय संघात[1]

शिक्षा के अन्तर्गत प्रौद्योगिकीय विषयों का समावेश आधुनिक युग की देन है। प्राचीन तथा मध्यकालीन युगों में प्रौद्योगिकीय शिक्षा का सामान्य एवं संस्कारी (Liberal) शिक्षा से कोई सम्बन्ध नहीं था। भौतिक विज्ञानों तथा प्रौद्योगिकीय क्षेत्रों में गत दो-सौ वर्षों में आश्चर्यजनक आविष्कार होने के परिणामस्वरूप संसार का रूप परिवर्तित हो गया है।[2] "व्यावहारिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी आधुनिक सभ्यता की प्रमुख विशेषतायें हैं और इनकी प्रगति ने मानव जीवन की दशाओं को परिवर्तित कर दिया है और ऐसा प्रतीत होता है कि ये मानव जीवन के स्वामी और आशा हो गये हैं। अतः इस परिवर्तन को देखते हुए स्वाभाविक निष्कर्ष यह निकलता है कि शिक्षा को भी परिवर्तित कर देना चाहिये"[3] और उसमें विज्ञान तथा प्रौद्योगिकीय विषयों को महत्वपूर्ण

---

1. Technological Impact upon Education.
2. "The srides which discoveries in physical sciences and technology have taken within the last two hundred years have changed the face of the world."—Quoted from Dr. Rajendra Prasads' Speech at the Joint meeting of the Inter University Board of India and the Executive Council of the Association of the Universities of the British Common-Wealth on December 21, 1951 at the Delhi University.
3. "Applied science and technology are the most characteristic features of modern civilization, and their development has transformed the conditions of human life, and appears to have become its mistress and hope. An obvious conclusion is that, in keeping with this transformation, education should be transformed."—Sir Richard Livingstone : *Some Tasks for Education*, p. 6.

स्थान दिया जाना चाहिये । इस विचार का सभी देशों में अनुमोदन किया गया है । यही कारण है कि आज सभी प्रगतिशील राष्ट्रों में प्रौद्योगिकीय विषयों को विद्यालयों के पाठ्य-क्रमों मे स्थान दिया जा रहा है ।

## प्रौद्योगिक शिक्षा की आवश्यकता

हम ऊपर की पंक्तियों में लिख चुके हैं कि आधुनिक युग मे इस बात पर बल दिया जा रहा है कि शिक्षा के पाठ्य-क्रमो मे प्रौद्योगिक विषयों का समावेश किया जाय । इसका एक प्रधान कारण यह है कि प्रौद्योगिक शिक्षा की आवश्यकता को अनुभव किया जा रहा है । यह आवश्यकता क्यो है, इसी पर हम यहां विचार करेंगे ।

हुमायूं कबीर ( Humayun Kabir ) का मत है कि किसी देश अथवा ष्ट्र की सम्पन्नता का आधार विज्ञान तथा प्रौद्योगिक शिक्षा है । यदि देश मे शिक्षा सफलतापूर्वक प्रदान की जा रही है और यदि इस शिक्षा की प्रगति रही है, तो राष्ट्र की उन्नति अवश्य होगी ।[1] संयुक्त राज्य अमेरिका, सोवि- रूस, जर्मनी और जापान के उदाहरण हमारे समक्ष हैं । लगभग सौ वर्ष युक्त राज्य अमेरिका एक पिछड़ा हुआ देश था, परन्तु प्रौद्योगिक शिक्षा नति के कारण आज वह इतना धनी हो गया है कि संसार के अनेकों के ऋणी हैं । १९१८ में जारशाही का अन्त करके रूस में गणतंत्र की की गई । उस समय रूस की गणना संसार के प्रगतिशील देशों मे नहीं आज वह संसार का सबसे अधिक शक्तिशाली देश माना जाता है । रण केवल यही है कि वहां प्रौद्योगिक शिक्षा पर विशेष बल दिया द्वितीय विश्व-युद्ध में जर्मनी तथा जापान को अति महान् क्षति पहुँची, गिक शिक्षा के कारण आज वे पुनः अपनी पूर्व स्थिति को बहुत- र चुके हैं ।

युग में एक राष्ट्र की सम्पन्नता के चार आधार माने गये हैं— ल, खनिज पदार्थ तथा प्रौद्योगिक शिक्षा । हम यह स्वीकार रत मे पूंजी का अभाव है, क्योंकि हमारे विदेशी शासकों ने की छाया में हमारे देश का पूर्ण रूप से शोषण किया और साधनों को अपने लम्बे शासन-काल मे निरन्तर निचोड़ा । में दुर्भिक्षों का तांता लग गया और भारतीय जनता निर्धनता

---

Scientific and Technical Education, Article by Kabi– The Leader, Republic Day Supple-

के गर्त मे डूब गई। परन्तु भारत मे कच्चे माल और खनिज पदार्थों का अभाव नहीं है। हमारे देश की पृथ्वी के गर्भ मे अब भी लोहे, मैंगनीज, तेल, क्रोमाइट, तांबे, बाक्साइट, अभ्रक, इल्मेनाइट आदि के भंडार छिपे हुए हैं। इनके अतिरिक्त, विद्युत के अत्युत्तम साधन भी है। परन्तु इनका प्रयोग तभी किया जा सकता है, जब देश में प्रौद्योगिक विषयों तथा विज्ञानों का पूर्ण ज्ञान रखने वाले व्यक्ति हों। दुर्भाग्यवश हमारा देश अभी इस दिशा मे पर्याप्त प्रगति नहीं कर पाया है, यद्यपि हमारी राष्ट्रीय सरकार इस कार्य में संलग्न है। प्रथम तथा द्वितीय पंचवर्षीय योजनाओं में प्रौद्योगिक शिक्षा में श्लाघनीय उन्नति हुई है और यदि इसी गति से प्रगति होती रही, तो आगामी कुछ ही वर्षों मे देश का आर्थिक विकास हो जायगा और निर्धनता का अन्त हो जायगा।

यद्यपि स्वतन्त्र भारत के लिये प्रौद्योगिक शिक्षा नवीन प्रतीत होती है, परन्तु यदि हम प्राचीन भारत के इतिहास पर दृष्टिपात करें, तो हमको ज्ञात होगा कि प्रौद्योगिक क्षेत्र मे भारत उन्नति के अति उच्च शिखर पर था। इस क्षेत्र मे अवनति के क्या कारण थे और किन कारणों वश आज फिर हमारा देश उस दिशा मे अग्रसर हो रहा है— इनका उत्तर खोजने के लिये हमें प्रौद्योगिक शिक्षा के इतिहास पर विहंगम दृष्टि डालनी पड़ेगी।

## प्राचीन काल में प्रौद्योगिक शिक्षा

प्राचीन काल मे प्रौद्योगिक शिक्षा का भारत मे अत्यधिक विस्तार था, परन्तु यह शिक्षा विद्यालयों में नहीं प्रदान की जाती थी। विभिन्न जातियों के व्यक्तियों के लिये विभिन्न कार्य एवं व्यवसाय निश्चित थे। इनमें से कुछ व्यक्ति विविध प्रकार के शिल्पों का ज्ञान रखते थे और वस्तुओं का उत्पादन करते थे। इन्हीं के द्वारा उन शिल्पों में अपने पुत्रों तथा शिष्यों को शिक्षा दी जाती थी। इस प्रकार वैदिक युग में सूती और ऊनी वस्त्र, रंगसाजी, कसीदाकारी, आदि का कार्य किया जाता था। इस युग में सुनार, धातुकार, चर्मकार और कुम्भकार का उल्लेख मिलता है। ये लोग विभिन्न प्रकार के अस्त्र-शस्त्र, आभूषण, धनुष की प्रत्यंचाएँ आदि वस्तुएँ बनाते थे।[1]

प्रौद्योगिक शिक्षा का उपरोक्त क्रम वैदिक काल से राजपूत काल तक यथावत् चलता रहा और भारत ने प्रौद्योगिक क्षेत्र में अति उन्नति की। राजपूत युग तक विभिन्न शिल्पों के लालित्य मे आशातीत वृद्धि हुई।

१. बी० एन० लूनिया : भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का विकास, पृष्ठ ५१–५२

चाँदी चारों तरफ़ से अनेक रास्तों से आ-आकर जमा होता है, और जिससे बाहर निकलने का उसे एक भी रास्ता नहीं मिलता है।" २० वीं शताब्दी के प्रारम्भ में भारत की दशा का वर्णन विलियम डिगबी (William Digby) ने इन शब्दों में किया है : "बीसवीं सदी के शुरू में क़रीब दस करोड़ मनुष्य ब्रिटिश भारत में ऐसे हैं जिन्हें किसी समय भी पेट भर अन्न नहीं मिल सकता है.... इस अधःपतन की दूसरी मिसाल इस समय किसी सभ्य और उन्नतिशील देश में कहीं पर भी दिखाई नहीं दे सकती है।" इस अधःपतन का कारण था अंग्रेज़ों का "अपनी निर्धारित नीति के अनुसार भारत की प्राचीन ग्राम-पंचायतों, शिक्षा-प्रणाली, हज़ारों और लाखों पाठशालाओं और हज़ारों साल के उन्नत उद्योग-धन्धों का नाश कर डालना।"[1]

इन उद्योग-धन्धों में सबसे पहिले बारी आई सूती व्यवसाय की और उसके उपरान्त अन्य प्राचीन उद्योगों की, यथा—जल-पोत, धातु, काँच, काग़ज़ आदि। इस प्रकार भारत को भारतीय माल से रिक्त करके अंग्रेज़ी माल से भर दिया गया।[2] परिणाम यह हुआ कि भारत के असंख्यों शिल्पी बेकार हो गये और उनमें से अगणित काल के गाल में पहुँच गये। इसका वर्णन करते हुए भारत के अंग्रेज़ गवर्नर-जनरल, लार्ड बेंटिक ( Lord Bentinck ) ने १८३४ में अपनी रिपोर्ट में लिखा : "व्यवसाय के इतिहास में ऐसे दुर्भाग्य का अन्य उदाहरण कठिनाई से मिलता है। जुलाहों की हड्डियों ने भारत के मैदानों को सफ़ेद कर कर दिया है।[3]" ऐसी दशा में भारत में जो प्रौद्योगिक शिक्षा पिता द्वारा पुत्र को अनेकों पीढ़ियों से प्रदान की जा रही थी, उसका सदैव के लिये अन्त हो जाना स्वाभाविक था। यह दशा अति दीर्घ काल तक चलती रही। उसके उपरान्त स्थिति में शनैः शनैः कुछ परिवर्तन होना प्रारम्भ हुआ। इसका अध्ययन हम सुविधा के लिये निम्नलिखित कालों में करेंगे।

### १८०० से १८८२ तक

यद्यपि इस काल में इंगलैण्ड में प्रौद्योगिक क्रान्ति (Industrial Revolution) के फलस्वरूप प्राविधिक तथा प्रौद्योगिक शिक्षा पर बल दिया जा रहा था, तथापि उस देश के शासकों ने अपने दास भारत में इस शिक्षा का प्रचार

---

१. सुन्दरलाल : भारत में अंगरेज़ी राज, प्रथम खण्ड, पृष्ठ २३
2. Jawahar Lal Nehru : *The Discovery of India* (1946 Edition), p. 351.
3. "The misery hardly finds a parallel in the history of commerce. The bones of the cotton-weavers are bleaching the plains of India."

आवश्यक नहीं समझा। इसकी ओर सरकार का ध्यान सर्व प्रथम १८७७-७८ के 'दुर्भिक्ष-आयोग' (Famine Commission) द्वारा आकर्षित किया गया। फिर भी सरकार ने इस शिक्षा की अवहेलना की। हाँ, मिशनरियों ने कुछ कार्य अवश्य किया। उन्होंने थोड़े से 'औद्योगिक स्कूल' स्थापित किये, जिनमें भारतीय ईसाई बालकों को जीविकोपार्जन के लिये बढ़ई और लुहार के कार्यों की शिक्षा दी जाती थी। परन्तु इन स्कूलों को औद्योगिक स्कूल न कहकर 'दस्तकारी के स्कूल' (Craft School) कहना ही अधिक उपयुक्त होगा।

### १८८२ से १९०२ तक

भारत सरकार प्रारम्भ से ही प्राविधिक तथा औद्योगिक शिक्षा की विरोधी थी। अंग्रेज शासकों का विचार था कि यदि भारत में इस शिक्षा की व्यवस्था कर दी गई, तो देश का औद्योगिक विकास प्रारम्भ हो जायगा और इससे इंगलैण्ड के उद्योगों को आघात पहुँचेगा। भारत के राष्ट्रीय नेताओं का विश्वास था कि देश की निर्धनता को दूर करने के लिये प्राविधिक तथा औद्योगिक शिक्षा अति आवश्यक है। काँग्रेस ने १८८७ में होने वाले अपने तीसरे अधिवेशन में सरकार से इस शिक्षा की माँग की और अन्य अधिवेशनों में इस माँग को दोहराती रही।[2] परन्तु निज स्वार्थ में लिप्त भारत की अंग्रेजी सरकार इस माँग को निरन्तर ठुकराती रही। १९०२ में सम्पूर्ण भारत में केवल ८० प्राविधिक तथा औद्योगिक स्कूल थे। इनमें से कुछ ही औद्योगिक विद्यालय कहलाने के अधिकारी थे।

### १९०२ से १९२१ तक

इस काल में भी भारत सरकार ने औद्योगिक शिक्षा के प्रति कोई ध्यान नहीं दिया। हाँ, इतना अवश्य किया कि 'भारतीय शिक्षा-आयोग' (Indian Education Commission) की सिफारिश को स्वीकार करके विभिन्न प्रान्तों में हाई स्कूल के पाठ्य क्रम के अन्तर्गत औद्योगिक तथा व्यावसायिक विषयों को स्थान दे दिया गया।

### १९२१ से १९३७ तक

हम ऊपर लिख चुके हैं कि भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस सरकार से निरन्तर प्राविधिक तथा औद्योगिक शिक्षा की माँग कर रही थी, परन्तु सरकार ने इस ओर ध्यान नहीं दिया था। हाँ, इतना अवश्य किया था कि औद्योगिक

2. Madan Mohan Malviya in *Report of the Indian Industrial Commission*, 1916-18, p. 2.0.

शिक्षा प्राप्त करने लिये कुछ विद्यार्थियों को छात्र-वृत्तियाँ देने लगी थी। १६०५ से १६१७ तक ११३ छात्रों को छात्रवृत्तियाँ प्रदान की गईं। सरकार के इस कार्य से जनता को संतोष नहीं हुआ, क्योंकि प्रौद्योगिक शिक्षा के अभिलाषी सभी छात्रों को छात्रवृत्तियाँ नहीं प्राप्त होती थीं। इसके अतिरिक्त, वे बहुत कम थीं और उनमें व्यय भी अधिक होता था। १६१७ में 'मारिसन समिति' (Morrison Committee) ने सुझाव दिया कि ये छात्रवृत्तियाँ, विशेष रूप से उन विद्यार्थियों को दी जायँ जो वस्त्र (Textile), खनि कर्म (Mining), मृद्भण्ड (Pottery), चर्म संस्कार (Tanning), दीपशिका (Matches), काँच, चीनी, पेन्सिल और कागज के उद्योगों में कार्य करना चाहते हों[1], परन्तु इससे कोई विशेष लाभ नहीं हुआ।

१६२१ में प्रान्तों में द्वैध शासन की स्थापना के उपरान्त जनता ने प्रौद्योगिक तथा प्राविधिक शिक्षा की माँग को प्रबल किया। यह कहा गया कि इस शिक्षा की व्यवस्था भारत में ही की जाय। सरकार ने इसका निर्णय करने का कार्य लार्ड लिटन (Lytton) की अध्यक्षता में एक विशिष्ट समिति[2] को सौंप दिया। इसने विदेशों में अध्ययन करने वाले भारतीय छात्रों की कठिनाइयों का अध्ययन किया और उनको दूर करने के लिये अनेकों सुझाव दिये। समिति का सबसे महत्त्वपूर्ण सुझाव यह था कि भारत में प्रौद्योगिक, प्राविधिक तथा औद्योगिक संस्थाओं का निर्माण किया जाय और उनमें उच्च शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था की जाय। भारतीयों को अपने देश में ही यह शिक्षा प्राप्त करनी चाहिये। अतः यह आवश्यक है कि इस शिक्षा के विभिन्न अंगों का शीघ्र अति शीघ्र विकास किया जाय।[3]

इस सिफारिश के फलस्वरूप भारत में जिन संस्थाओं का निर्माण किया गया, वे इस प्रकार हैं:—(१) *हारकोर्ट बटलर टेक्नोलोजिकल इंस्टीट्यूट*, कानपुर; (२) कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग एण्ड टेक्नॉलोजी, जादवपुर; और (३) गवर्नमेन्ट स्कूल ऑफ टेक्नॉलोजी, मद्रास। १६३७ में सम्पूर्ण भारत में ५३५ प्रौद्योगिक, प्राविधिक तथा औद्योगिक विद्यालय थे।

### १६३७ से १६४७ तक

*अब तक प्रौद्योगिक शिक्षा की अवहेलना की गई थी*, परन्तु इस अवधि में

1. Bhagwan Dayal : *The Development of Modern Indian Education*, p. 432.
2. Committee on Indian Students in England, 1921-22.
3. *The Report of the Committee on Indian Students in England*, para 84.

शिक्षा का वास्तविक प्रसार हुआ। इसके तीन प्रमुख कारण थे :—(१) विश्वयुद्ध के कारण ऐसे व्यक्तियों की मांग में वृद्धि हो गई थी, जो प्रौद्योगिक शिक्षा प्राप्त कर चुके हों। (२) युद्ध-सामग्री का उत्पादन करने के लिये भारत में नवीन उद्योगों की स्थापना हो गई थी और उनमें प्रौद्योगिक शिक्षा-प्राप्त मनुष्यों की आवश्यकता थी (३) केन्द्रीय एवं प्रान्तीय सरकारों द्वारा बनाई गई युद्धोत्तर विकास योजनाओं को क्रियान्वित करने के लिये प्रौद्योगिक शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों की मांग बढ़ी। अत: प्रौद्योगिक शिक्षा का विस्तार होना स्वाभाविक था। परन्तु इसको संतोषजनक नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि १९५१-५२ में केवल २१४ स्नातक प्रौद्योगिक शिक्षा और २० स्नातक रासायनिक प्रौद्योगिकी की शिक्षा प्राप्त कर रहे थे।[1]

## स्वतन्त्र भारत में प्रौद्योगिक शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण

जैसा कि हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं, परतन्त्र भारत में लोगों का प्रौद्योगिक शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण परिवर्तित हो रहा था और वे विदेशी सरकार से इस शिक्षा की निरन्तर मांग कर रहे थे। इसके फलस्वरूप शिक्षा पर प्रौद्योगिकीय प्रभाव पड़ा था, परन्तु उसे अति अल्प ही कहा जा सकता है। स्वतन्त्र भारत में इस प्रभाव में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। इसका सर्व-प्रधान कारण है प्रौद्योगिक शिक्षा के प्रति देश के नेताओं तथा निवासियों का परिवर्तित दृष्टिकोण। यह दृष्टिकोण क्यों परिवर्तित हो रहा है, इसकी ओर हम निम्नांकित पंक्तियों में संकेत कर रहे हैं।

विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति के लिये समाज के साधनों का अधिकाधिक सफलतापूर्वक उपयोग करना होता है। ये साधन कुछ प्रकृति के द्वारा दिये हुए होते हैं, परन्तु इनको नवीन वैज्ञानिक उपायों और ज्ञान के प्रयोग द्वारा उन्नत किया जा सकता है और कर लिया जाता है। इस दृष्टि से वैज्ञानिक उपायों और ज्ञान का मूल्य पूँजी निर्माण की अपेक्षा भी अधिक है। किसी भी अल्प उन्नतिशील अर्थ-व्यवस्था में प्रकृति द्वारा दिए हुए साधनों का पूरा ज्ञान नहीं होता है और उनको उन्नत करने के लिये नवीन वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग करना पड़ता है। भारत में इन साधनों की खोज और इनका उपयोग, प्रारम्भिक अवस्था में है। आवश्यक वैज्ञानिक विधियों का ज्ञान भी अधूरा है। इस कारण ज्ञात साधनों का उपयोग करने के लिये भी उन पर वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग करना सरल नहीं है। रहन-

1. *Oxford Pamphlets on Indian Affairs*, No. 15, p. 54.

सहन के स्तर को निरन्तर और अधिक ऊँचा उठाने के लिये न केवल ज्ञात साधनों के अधिक सफल उपयोग को, अपितु ज्ञात वैज्ञानिक विधियों के भी अधिक उत्तम प्रयोग की आवश्यकता होती है। इसके लिये नए-नए साधनों को निरन्तर खोज करते रहना और नवीन उत्पादक विधियों का विकास करते रहना आवश्यक होता है।

यह कहना अत्युक्तिपूर्ण न होगा कि देश का आर्थिक विकास अधिक शीघ्रता से करने के लिये जिस एक वस्तु का महत्व और सबसे अधिक है, वह उत्पान की प्रक्रियाओं में आधुनिक प्रौद्योगिकी की विधियों का प्रयोग करने के लिये समाज की इच्छा और तत्परता है। इस क्षेत्र में नवीन प्रगति अति शीघ्र हो रही है और उसका प्रयोग न केवल उत्पादन, परिवहन एवं अन्य कार्यों के संगठन के लिये, अपितु आर्थिक तथा सामाजिक संगठन से सम्बद्ध प्रश्नों का हल करने मे भी महत्वपूर्ण है। विकास मे पीछे रह जाने का कारण प्रौद्योगिक विधियों में पर्याप्त उन्नति न कर सकना होता है और इस अपर्याप्त उन्नति का कारण विविध राजनीतिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक परिस्थितियाँ होती हैं। यदि इन परिस्थितियों में अभीष्ट परिवर्तन हो जाय, तो प्रौद्योगिक विधियों में उन्नति करने मात्र से विकास की गति तीव्र हो सकती है। जिन देशों में प्रौद्योगिक जीवन का आरम्भ विलम्ब से होता है, वे कुछ लाभ में भी रहते हैं, क्योंकि वे उन प्रौद्योगिक विधियों का प्रयोग कर सकते हैं, जिनको अन्य उन्नत देशो मे परीक्षा हो चुकती है। परन्तु इसके लिये आवश्यक है कि विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी में अन्यत्र जो प्रगति हो चुकी है, उसके साथ-साथ चलने का भी ध्यान रखा जाय। सरांश यह है कि नए-नए साधनो की खोज, नवीन वैज्ञानिक, प्राविधिक तथा प्रौद्योगिक विधियों का प्रयोग और उपलब्ध जनशक्ति की विकास-कार्यों के लिये आवश्यकता और परिस्थिति के अनुसार उपयोग, विकास की नींव का काम देता है।

## स्वतंत्र भारत में शिक्षा पर प्रौद्योगिक संघात

स्वतंत्र भारत में प्रौद्योगिक शिक्षा के प्रति जिस परिवर्तित दृष्टिकोण का वर्णन हमने ऊपर किया है, उसके परिणामस्वरूप शिक्षा पर प्रौद्योगिक प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हो रहा है। हम इसका वर्णन निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत कर रहे हैं:

### १६४७ से १६६० तक

स्वातंत्र्योत्तर काल में देश के प्रौद्योगीकरण के साथ-साथ प्रौद्योगिक तथा प्राविधिक शिक्षा की भी अभिनन्दनीय प्रगति हुई है। १६४७ में केवल

क्षेत्रों ने जो रुचि प्रदर्शित की है, उससे देश की प्रौद्योगिक तथा प्राविधिक शिक्षा के विकास में प्रशंसनीय सहयोग प्राप्त हुआ है।

प्रौद्योगिक एवं प्राविधिक संस्थाओं के अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिये कई परियोजनायें प्रारम्भ की गई हैं। योजना आयोग ने सिद्धान्त रूप में इन अध्यापकों की वेतन श्रेणी तथा काम की शर्तों के सुधार की बात को इस शर्त के साथ स्वीकार कर लिया है कि केन्द्र इससे सम्बन्धित समस्त अतिरिक्त व्यय को केवल पाँच वर्ष तक उठाये और उसके उपरान्त तृतीय वित्तीय आयोग स्थिति का पुनरावलोकन करे।

## प्रथम पंचवर्षीय योजना में प्रौद्योगिक शिक्षा

प्रथम पंचवर्षीय योजना में प्रौद्योगिक तथा प्राविधिक शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया गया। यह निश्चय किया गया कि 'इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ़ साइन्स', बंगलोर का विकास किया जाय, इंजीनियरिंग के १४ कॉलिज स्थापित किये जायें, विशेष व्यावसायिक विषयों के शिक्षण की व्यवस्था की जाय, एवं व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों के लिये 'परामर्शदाता केन्द्रों' की स्थापना की जाय। इसके अतिरिक्त प्रौद्योगिक, प्राविधिक तथा व्यावसायिक स्कूलों की स्थापना, प्राइवेट स्कूलों का जूनियर टेकनिकल हाई स्कूलों में परिवर्तन, जूनियर बहुउद्योगीय स्कूलों का निर्माण, सामान्य माध्यमिक विद्यालयों का टेकनिकल हाई स्कूलों के रूप में विकास, औद्योगिक स्कूलों का शिलान्यास, पाठ्य-क्रमों में कृषि शिक्षा का उपयुक्त स्थान, वाणिज्य, प्रौद्योगिक एवं प्राविधिक स्कूलों का कॉलिजों में रूपान्तर और विदेशों में उच्च शिक्षा के लिये छात्रवृत्तियाँ प्रदान करने की योजनाओं का निर्माण किया गया। कलाकारों एवं शिल्पकारों को प्रशिक्षण देने की अधिक सुविधाएँ तथा ग्रामों में भी प्रशिक्षण केन्द्र खोलने की व्यवस्था की गई।

## द्वितीय पंचवर्षीय योजना में प्रौद्योगिक शिक्षा

प्रथम पंचवर्षीय योजना में किये गये उपायों के अतिरिक्त, द्वितीय योजना में प्रौद्योगिक तथा प्राविधिक कर्मचारियों की बढ़ती हुई माँग के कारण प्रौद्योगिक एवं प्राविधिक शिक्षा के विस्तार को विशेष महत्त्व प्रदान किया गया है। इसी उद्देश्य से द्वितीय योजना में प्रौद्योगिक तथा प्राविधिक शिक्षा के लिये ४८ करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई है, जब कि प्रथम योजना में यह धन-राशि कुल २३ करोड़ थी। द्वितीय योजना के लिये निर्धारित धन का कुछ भाग उन कार्य-क्रमों पर व्यय किया जायगा, जो प्रथम योजना में प्रारम्भ किये गये थे।

इनके अन्तर्गत 'इण्डियन इन्सटीट्यूट ऑफ़ टेक्नॉलोजी,' खड़गपुर को स्नातक तथा स्नातकोत्तर अध्ययन के लिये पूर्णतया विकसित कर दिया जायगा। इस इंस्टीट्यूट में योजना के अनुसार १,२०० छात्रों के लिये प्राक्-स्नातक और ६०० छात्रों के लिये स्नातकोत्तर एवं शोध की व्यवस्था की जायगी। यहाँ विषयों की दृष्टि से बहुत व्यापक विषयों के प्रशिक्षण की सुविधायें हैं, जैसे जलपोत निर्माण, शिल्प और सामुद्रिक इंजीनियरी, ईंधन और ज्वलन इंजीनियरी, उत्पादन टेक्नॉलोजी, पदार्थों का यांत्रिक प्रणयन, कृषि इंजीनियरी, भू-भौतिकी, नगर व प्रादेशिक निर्माण योजना और निर्माण शिल्प।[1]

बंगलोर में 'इंस्टीट्यूट ऑफ़ साइन्स' नामक संस्था का विकास वायु एवं जल सेना इंजीनियरी, शक्ति इंजीनियरी, आन्तरिक ज्वलन इंजीनियरी, धातु-विज्ञान और विद्युत इंजीनियरिंग विषयक शोध, प्रौद्योगिक तथा प्राविधिक शिक्षा के लिये किया गया है।

प्रथम योजना काल में स्थापित किये गये प्रौद्योगिक तथा प्राविधिक शिक्षा के अन्य केन्द्रों में स्नातकोत्तरकालीन पाठ्य-क्रमों एवं इंजीनियरिंग और प्रौद्योगिकी के अनुसंधान की व्यवस्था की जायगी। वर्तमान संस्थाओं को डिग्री और डिप्लोमा पाठ्य-क्रमों के लिये विकसित करने का जो कार्य-क्रम प्रथम योजना में प्रारम्भ किया गया था, उसे द्वितीययोजना में पूर्ण किया जायगा। शेष धन देश के पश्चिमी, उत्तरी और दक्षिणी प्रदेशों में उच्चतर प्रौद्योगिक तथा प्राविधिक संस्थाओं की स्थापना में व्यय किया जायगा। इनमें से दो संस्थाओं का निर्माण बम्बई और कानपुर में किया जायगा। पूर्ण रूप से विकसित हो जाने पर प्रत्येक संस्था में १,२०० प्राक्स्नातक और ६०० स्नातकोत्तर छात्र शिक्षा ग्रहण कर सकेंगे।

द्वितीय योजना काल में 'दिल्ली पॉलीटेक्नीक संस्था' में इंजीनियरिंग एवं प्रौद्योगिकी की शिक्षा की सुविधाओं में विस्तार किया जायगा। इसके अतिरिक्त देश के विभिन्न भागों में इंजीनियरिंग और प्रौद्योगिकी की शिक्षा प्रदान करने के लिये ६ संस्थायें डिग्री स्तर की और २१ संस्थायें डिप्लोमा स्तर की स्थापित की जायेंगी। फ़ोरमैनों के प्रशिक्षण की योजना को उद्योग संस्थाओं के सहयोग से क्रियान्वित किया जायगा। छात्रवृत्तियों की संख्या को ६३१ से बढ़ाकर ८०० कर दिया जायगा। प्रौद्योगिक तथा प्राविधिक शिक्षा-संस्थाओं में योग्य छात्रों के लिये कुछ निःशुल्क स्थान सुरक्षित रखे जायेंगे। १३,००० टेकनिकल छात्रों और ३,३०० जूनियर टेकनिकल स्कूलों के विद्यार्थियों के लिये अतिरिक्त छात्रा-

१. द्वितीय पंचवर्षीय योजना, पृष्ठ ४७६

वासों का निर्माण किया जायगा। मुद्रण शिल्प विज्ञान की शिक्षा प्रदान करने के लिये एक संस्था का निर्माण किया जायगा। धनबाद के 'इण्डियन स्कूल ग्रॉफ़ साइन्स एण्ड ऐप्लाइड ज्योलोजी' का विस्तार किया जायगा, जिससे खान की इंजीनियरिंग एवं उससे सम्बद्ध विषयों में प्रशिक्षण की सुविधायें उपलब्ध हो जायेंगी। श्रम, लोहा तथा इस्पात और रेलवे मंत्रालय भी टेकनिकल स्कूलों की स्थापना का कार्य-क्रम बना रहे हैं। इन समस्त प्रयासों के फलस्वरूप १६६०–६१ तक प्रतिवर्ष ५,७०० स्नातक तथा ६,८०० डिप्लोमा प्राप्त व्यक्ति उपलब्ध हुआ करेंगे। यह संख्या प्रथम योजना के ग्रन्त में प्राप्त होने वाले स्नातकों तथा डिप्लोमा-प्राप्त व्यक्तियों से क्रमशः दुगनी और तिगुनी होगी।

## आधुनिकतम् प्रौद्योगिक गतिविधियाँ

### विज्ञान मन्दिर

देश के विभिन्न भागों में ३८ विज्ञान मन्दिर स्थापित किये जा चुके हैं। प्राप्त सूचनाओं से ज्ञात हुआ है कि ये विज्ञान मन्दिर, लोकप्रिय सिद्ध हो रहे हैं। ज्ञान मन्दिरों के साथ एक सांस्कृतिक अंग स्थापित किये जाने के सुझाव पर श्री बलवंतराय मेहता, संसद सदस्य की ग्रध्यक्षता में एक समिति विचार कर रही है। 'वैज्ञानिक ग्रनुसंधान मंत्रालय' द्वारा स्थापित इस समिति की रिपोर्ट शीघ्र ही पेश की जाने वाली है।

### प्रौद्योगिक तथा प्राविधिक शिक्षा

प्रौद्योगिक तथा प्राविधिक क्षेत्र में इस वर्ष की उल्लेखनीय घटना मद्रास में 'इंडियन इंसटीट्यूट ग्रॉफ़ टेकनॉलोजी' की स्थापना है। इस प्रकार की उच्च प्रौद्योगिक शिक्षा की चार संस्थायें खोली जाने वाली हैं, जिनमें से यह तीसरी है। मद्रास की इस संस्था को कार्यकर्त्ताओं और साज-समाज दोनों की सहायता पश्चिमी जर्मनी से प्राप्त हो रही है। इस वर्ष देश के विभिन्न भागों में ४ नये इंजीनियरिंग कालेज और १० पोलीटेकनीक खोले गये हैं। ग्राशा है कि ग्रोमा हायर टेकनॉलोजिकल इंसटीट्यूट जुलाई १६६० से कानपुर में कार्य प्रारम्भ कर देगा।

### शिक्षण संस्थायें

१६५६–६० के वर्ष में ४० पोलिटेकनीक और ६ इंजीनियरिंग कॉलेजों की स्थापना से सम्बन्धित योजनाओं को ग्रन्तिम रूप दिया गया जिनमें से कुछ संस्थाओं ने इसी [illegible] प्रारम्भ कर दिया है और शेष ग्रागामी वर्ष [illegible] प्रौद्योगि[illegible] तथा प्राविधिक शिक्षा-संस्थाओं में

डिग्री कोर्स के लिये ११,१६० छात्र और डिप्लोमा कोर्स के लिये २१,१०० छात्रों की व्यवस्था है।

### छात्रवृत्तियाँ

विभिन्न संस्थाओं में दी जाने वाली छात्रवृत्ति के अतिरिक्त वैज्ञानिक अनुसंधान मंत्रालय ने इस वर्ष से "योग्यता और साधन छात्रवृत्ति" आरम्भ की है ताकि एक बड़े पैमाने पर प्रौद्योगिक तथा प्राविधिक छात्रों को सहायता प्राप्त हो सके।

### अनुसंधान छात्रवृत्तियाँ

इस वर्ष अनुसंधान छात्रवृत्ति की योजना के अन्तर्गत ११६ छात्रवृत्तियाँ प्रदान की गईं। इस प्रकार अब तक ८०० छात्रवृत्तियाँ दी जा चुकी हैं। इस वर्ष २३ राष्ट्रीय अनुसंधान कार्यकर्ताओं ने विभिन्न अनुसंधान केन्द्रों में अपना कार्य जारी रखा।[1]

### व्यय

इस वर्ष देश में प्रौद्योगिक तथा प्राविधिक शिक्षा के विकास और प्रसार के लिये राज्य सरकारों, निजी संस्थाओं व अन्य संगठनों को ३.७० लाख रुपये के अनुदान और १.४५ लाख रुपये से अधिक ऋण दिये गये।[2]

**प्रौद्योगिक शिक्षा की प्रगति**
**( इंजीनियरिंग तथा टेकनोलोजी[3] )**

| पाठ्य-क्रम | १९४९—५० | | | १९५५—५६ | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | संस्थाओं की संख्या | प्रवेश | प्रतिफल | संस्थाओं की संख्या | प्रवेश | प्रतिफल |
| स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम व अनुसंधान सुविधायें | ८ | १३६ | ६१ | १८ | २७० | १११ |
| डिग्री या समकक्ष पाठ्यक्रम | ४३ | ४,१२० | २,२०० | ६० | १,०५० | ३,७०० |
| डिप्लोमा पाठ्यक्रम | ८१ | ५,६०० | २,४८० | १०८ | ८,७०० | ३,६०० |

१. आजादी का तेरहवाँ वर्ष, पृष्ठ २११
२. वही पृष्ठ २१६
३. द्वितीय पंचवर्षीय योजना, पृष्ठ ४..

## ✓प्रौद्योगिक शिक्षा की समस्यायें और उनका समाधान

अग्रेंजी शासन-काल में भारतीय शिक्षा पर प्रौद्योगिक प्रभाव अति अल्प था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त से इस प्रभाव में निरन्तर वृद्धि हो रही है। सामान्य शिक्षा के अन्तर्गत प्रौद्योगिक विषयों का समावेश किये जाने का प्रयास किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त डिप्लोमा, स्नातक तथा स्नातकोत्तर पाठ्य-क्रमों की शिक्षा प्रदान करने के लिये विशिष्ट प्रौद्योगिक संस्थाओं की स्थापना की जा रही है। सरकार तथा व्यक्तिगत संस्थायें इस दिशा में पूर्णरूप से व्यस्त हैं, पर फिर भी भारत मे प्रौद्योगिक शिक्षा की प्रगति मन्थर गति से हो रही है। इसका कारण यह है कि अनेकों बाधाओं तथा समस्याओं ने प्रौद्योगिक शिक्षा के प्रवाह को अवरुद्ध कर रखा है। ये बाधायें, कठिनाइयाँ तथा समस्यायें क्या हैं, इन्हीं पर हम यहाँ विचार करेंगे।

### १. प्रौद्योगिक शिक्षा के प्रति अनुचित दृष्टिकोण

भारत में अति प्राचीन काल से मानसिक श्रम को वरासन पर प्रतिष्ठित किया गया है और शारीरिक श्रम को हीन दृष्टि से देखा गया है। कार्य अथवा श्रम के आधार पर ही हमारे देश में जाति-व्यवस्था का निर्माण किया गया था। पठन-पाठन करने वाले ब्राह्मणों को समाज में सर्वोच्च स्थान प्रदान किया गया और व्यवसाय तथा हस्तकार्य करने वाले व्यक्तियों को उनसे निम्नतर स्थान दिया गया था। सहस्रो वर्ष प्राचीन जाति-व्यवस्था पर आधारित श्रम विभाजन की जड़ें हमारे समाज में इतनी गहरी पहुँच गई हैं कि उनको हिलाना अत्यन्त कठिन है। यही कारण है कि आज के प्रगतिशील युग मे भी हस्तकार्य करने वालों को आदर की दृष्टि से नहीं देखा जाता है। प्रौद्योगिक शिक्षा मे *हस्तकलाओं तथा कौशलों का प्रमुख स्थान है। अतः जैसा स्वाभाविक है,* भारतीय इस शिक्षा को सम्मान नहीं देते हैं। इस अनुचित दृष्टिकोण का परिणाम यह है कि उच्च जातियों तथा परिवारों के नवयुवक प्रौद्योगिक शिक्षा प्राप्त करने के प्रति साधारणतः उदासीन रहते हैं। फलतः इस शिक्षा का उचित विस्तार नहीं हो रहा है।

इस समस्या का समाधान कठिन नहीं है। यदि सरकार और कर्मठ समाज सेवी यह आन्दोलन प्रारम्भ कर दें कि शारीरिक श्रम किसी दशा में भी मानसिक श्रम से हीन नहीं है, तो देश के नवयुवकों को प्रौद्योगिक शिक्षा के प्रति आकर्षित किया जा सकता है। परन्तु केवल आन्दोलन से ही काम नहीं चलेगा। इससे जनता के दृष्टिकोण के परिवर्तन में सहायता अवश्य मिलेगी, परन्तु केवल यही पर्याप्त नहीं होगा। सरकार को उन छात्रों को अध्ययन की सुविधायें देनी

होंगी, जो प्रौद्योगिक शिक्षा प्राप्त करना चाहते हैं । अतः यह आवश्यक है कि सरकार उनको छात्रवृत्तियाँ दे, अध्ययन समाप्त करने के उपरान्त उनके लिये नौकरियाँ सुलभ बनाये और उन्हें अधिक वेतन तथा अन्य सुविधाओं का आश्वासन दे ।

## २. प्रौद्योगिक विद्यालयों का प्रभाव

यद्यपि स्वतंत्र्योत्तर काल में अनेकों प्रौद्योगिक विद्यालयों की स्थापना की गई है, तथापि उनकी संख्या को पर्याप्त नहीं कहा जा सकता है । आज की जागरूक भारतीय जनता समझने लगी है कि प्रौद्योगिक शिक्षा-प्राप्त नवयुवकों का भविष्य उज्ज्वल है । परन्तु विद्यालयों की न्यूनता के कारण लगभग ६० प्रतिशत छात्रों को इस शिक्षा की सुविधा न प्राप्त होने के कारण महान् निराशा होती है । ऐसी स्थिति में प्रौद्योगिक शिक्षा के विकास की आशा करना व्यर्थ है ।

इस कठिनाई पर विजय तभी प्राप्त की जा सकती है, जब देश में और अधिक प्रौद्योगिक विद्यालयों की आधार-शिला रखी जाय और उनमें सभी स्तरों की प्राविधिक शिक्षा की व्यवस्था की जाय, जिससे कि विभिन्न शैक्षणिक योग्यताओं वाले छात्र उनमें प्रवेश लेकर प्रौद्योगिक शिक्षा प्राप्त करने की अपनी इच्छा को संतुष्ट कर सकें । इस समय भारत में प्रौद्योगिक तथा प्राविधिक विद्यालयों की संख्या २६४ है ।[1] इतनी विशाल जनसंख्या वाले देश के लिये विद्यालयों की यह संख्या अति न्यून है । अतः सरकार का कर्त्तव्य है कि त्वरित गति से नवीन प्रौद्योगिक विद्यालयों की स्थापना करे ।

## ३. संकीर्ण पाठ्य-क्रम

हमारे प्रौद्योगिक विद्यालयों के पाठ्य-क्रम संकीर्ण हैं, क्योंकि उनमें प्रौद्योगिक विषयों को ही स्थान दिया गया है । उनमें सामान्य तथा सरकारी शिक्षण (Liberal Education) का कोई स्थान नहीं है । इसका परिणाम यह होता है कि प्रौद्योगिक शिक्षा प्राप्त करके भी नवयुवक उत्पादन कार्य के सामाजिक उद्देश्य तथा मानव-सम्बन्धों का ज्ञान प्राप्त करने में असफल रहते हैं । फलस्वरूप उत्पादन कार्य सुचारू रूप से नहीं चल पाता है । अतः हम कह सकते हैं कि संकीर्ण पाठ्य-क्रमों के कारण प्रौद्योगिक शिक्षा प्रायः निरर्थक हो जाती है ।

पाठ्य-क्रमों के इस दोष का निवारण करने के लिये उनमें प्रौद्योगिक

१. तीसरी पंचवर्षीय योजना : प्रारम्भिक रूपरेखा, पृष्ठ १०१

शिक्षा के साथ-साथ सामान्य तथा संस्कारी शिक्षण को भी उचित स्थान प्रदान करना चाहिये। हर्ष का विषय है कि हमारी सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ है और वह प्रौद्योगिक विद्यालयों के पाठ्य-क्रमों को विस्तृत करके उनमें सामान्य तथा सरकारी शिक्षण को स्थान दे रही है।

४. शिक्षा का अनुपयुक्त माध्यम

आधुनिक भारत के सभी प्रौद्योगिक विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी है। राज्यों के शिक्षा-मन्त्रियों के सम्मेलन में २ सितम्बर, १९५६ को पंडित जवाहरलाल नेहरू ने यह स्पष्ट रूप से स्वीकार किया कि प्रौद्योगिक विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी ही रहेगा। पर क्यों? क्या अंग्रेजी के कारण छात्रों को कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ रहा है? उदाहरणार्थ, उत्तर प्रदेश में इण्टरमीडिएट कक्षाओं तक शिक्षा का माध्यम हिन्दी है। अब यदि एक छात्र इण्टरमीडिएट परीक्षा में उत्तीर्ण होने के उपरान्त किसी प्रौद्योगिक विद्यालय में प्रवेश करता है, तो उसे वहाँ शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी मिलता है। अब तक तो उसने हिन्दी में पढ़ा और समझा है, पर अब सहसा उसे अंग्रेज़ी में सुनना, पढ़ना और लिखना है। इस परिवर्तन के कारण कितने ही छात्र तो निराश होकर अपना अध्ययन समाप्त कर देते हैं और कितने ही वर्ष के अन्त में परीक्षा में अनुत्तीर्ण होने के कारण विद्यालय का त्याग करने के लिये बाध्य कर दिये जाते हैं। तनिक विचार कीजिये, इन छात्रों की निराशा पर, उनके परिश्रम के अपव्यय पर और उनके अभिभावकों के नष्ट धन पर।

यह स्पष्ट है कि इस समस्या का निराकरण करने के लिये भारत के प्रशासकों को अपनी दोहरी नीति का परित्याग करना पड़ेगा। हिन्दी या विभिन्न राज्यों की प्रादेशिक भाषाओं को प्रौद्योगिक विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम बनाना पड़ेगा। हमने माना कि इस कार्य में कठिनाई का सामना करना पड़ेगा क्योंकि न तो अभी हमारे पास प्रौद्योगिक विषयों की भारतीय भाषाओं में पुस्तकें ही हैं और न उनकी उपयुक्त शब्दावली ही तैयार है। परन्तु दृढ़ निश्चय इस कार्य में अवश्य सफलता प्रदान करेगा। अन्य देशों के उदाहरण हमारे समक्ष हैं। चीन, जापान, रूस, जर्मनी और कितने ही अन्य देशों में शिक्षा का मध्यम वहाँ की भाषायें हैं, न कि अंग्रेजी। यदि उन देशों में यह कार्य सम्भव हो सकता है, तो अंग्रेजों की दासता से मुक्ति प्राप्त करके अंग्रेजी की दासता की बेड़ियाँ भारत को क्यों पहिनाई जायें?

## ५. प्रायोगिक शिक्षा का न्यून महत्व

हमारे प्रौद्योगिक विद्यालयों में सैद्धान्तिक शिक्षा(Theoretical Education) को प्रायोगिक शिक्षा (Practical Education) की अपेक्षा अधिक महत्व प्रदान किया जाता है। परिणाम यह होता है कि प्रौद्योगिकीय विद्यालयों से निकले हुए स्नातक प्रायोगिक कार्य में दक्ष नहीं होते हैं। यथार्थ में उन्हें इसी कार्य से अधिक प्रयोजन रहता है। फलतः उन्हें अनेकों कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है और प्रायोगिक ज्ञान प्राप्त करने के लिये उन्हें साधारणतः अपने अधीनस्थ और कम शिक्षित कर्मचारियों पर निर्भर होना पड़ता है। इससे उनके सम्मान की हानि होती है।

इस दोष का उन्मूलन करने के लिये यह आवश्यक है कि हमारे प्रौद्योगिक विद्यालय प्रायोगिक शिक्षा को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करें। इस कार्य में उन्हें योरप तथा अमेरिका के प्रौद्योगिक विद्यालयों से पाठ सीखना चाहिए। वहाँ छात्रों को कर्मशालाओं, फ़ैक्ट्रियों आदि में भेजकर इतना प्रायोगिक ज्ञान करा दिया जाता है कि उन्हें कोई भी कार्य करने में असफल होने की शंका नहीं रहती है और न उन्हें अन्य व्यक्तियों का मुँह ताकना पड़ता है।

## ६. अध्ययन समाप्ति के उपरान्त शिक्षा का अभाव

प्रौद्योगिक विद्यालय शिक्षा समाप्त करने के उपरान्त नवयुवक किसी उद्योग में प्रवेश करते हैं। कुछ समय तक तो उनके मस्तिष्क अर्जित ज्ञान से परिपूर्ण रहते हैं, परन्तु शनैः शनैः उनमें रिक्तता आने लगती है। वे अनेकों बातें विस्मृत कर देते हैं। फलतः उनकी दक्षता में न्यूनता आ जाती है। जितना अधिक प्रौद्योगिक ज्ञान एक मनुष्य में होगा, उतनी ही अधिक कुशलतापूर्वक वह प्रौद्योगिक कार्य को सम्पन्न कर सकेगा। परन्तु यदि ऐसा नहीं है, तो वह कुशलता के स्तर से नीचे गिर जायगा। साधारणतः देखा भी ऐसा ही जाता है। इसका प्रधान कारण यह है कि प्रौद्योगिक शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों के लिए अध्ययन समाप्ति के उपरान्त शिक्षा की व्यवस्था नहीं है।

प्रौद्योगिक शिक्षा की इस समस्या का निवारण अनेक विधियों द्वारा किया जा सकता है। प्रथम, अंशकालिक शिक्षा (Part-time instruction) की व्यवस्था की जाय। परन्तु यदि दिन में किसी समय इस शिक्षा की व्यवस्था की जाय, तो कर्मचारियों को उसे प्राप्त करने की सुविधा दी जानी चाहिए। इस शिक्षा में केवल सिद्धान्त (Theory) को ही स्थान दिया जाय, क्योंकि प्रायोगिक कार्य में तो कर्मचारी अपनी कर्मशालाओं में ही कार्य करके कुशल हो जाते हैं। द्वितीय, कर्मचारियों के लिये अभिनव पाठ्यक्रम (Refresher Courses)

की व्यवस्था की जाय। यहाँ यह लिख देना वांछनीय है कि प्रत्येक कर्मचारी को प्रतिवर्ष या दो वर्ष के उपरान्त उपरोक्त दो में से किसी एक व्यवस्था से एक निश्चित अवधि मे लाभ उठाने के लिये बाध्य किया जाय।

७. शिक्षकों का अभाव

प्रौद्योगिक शिक्षा की एक प्रमुख समस्या है उत्तम शिक्षकों का अभाव। प्रौद्योगिक विद्यालयों के लिये उपयुक्त अर्न्हताओं वाले शिक्षको को प्राप्त करना कठिन ही नहीं, अपितु असम्भव है। कारण यह है कि उद्योगों मे प्रौद्योगिक शिक्षा प्राप्त योग्य मनुष्यो को इतना अधिक वेतन और इतने प्रकार की सुविधायें मिलती हैं कि वे प्रौद्योगिक विद्यालयो में शिक्षकों का कार्य करने की बात कभी स्वप्न मे भी नहीं सोचते हैं। फिर शिक्षको का समाज मे कोई सम्मान नहीं है। इसके विपरीत किसी उद्योग तथा व्यवसाय मे कार्य करने वाले अधिक ठाट-बाट से रहने वाले व्यक्तियों का समाज मे आदर होता है। फलतः प्रौद्योगिक विद्यालय उत्तम शिक्षकों की सेवाओ से वंचित रह जाते हैं। फलतः इन विद्यालयों का शिक्षा-स्तर गिर गया है।

इस समस्या का समाधान केवल सरकार द्वारा ही किया जा सकता है। अतः यह आवश्यक है कि सरकार इस ओर शीघ्र ही ध्यान दे और प्रौद्योगिक विद्यालयों के लिये योग्य शिक्षको की सेवाओं को सुलभ बनाये। इस कार्य मे सरकार को सफलता तभी प्राप्त हो सकती है, जब वह प्रौद्योगिक विद्यालयों के शिक्षकों के वेतनो मे वृद्धि करे और उनकी सेवाओं की शर्तों को उत्तम बनाये। यदि सरकार ने ऐसा नहीं किया, तो प्रौद्योगिक शिक्षा का विस्तार नहीं हो सकेगा।

हमे हर्ष है कि सरकार इस समस्या के समाधान मे व्यस्त है। "तकनीकी शिक्षा के विस्तार की एक कठिन समस्या शिक्षकों की कमी है। हिसाब लगा कर देखा गया है कि आजकल यह कमी डिग्री कॉलिजों मे लगभग ३३ प्रतिशत और डिप्लोमा-संस्थाओं में २१ प्रतिशत है। दूसरी योजना में कुछ योजनायें चुने हुए इन्जीनियरी कॉलिजों में शिष्यवृत्ति देकर शिक्षक तैयार करने की और स्नातक को इस शर्त पर विदेशी छात्रवृत्तियाँ देनी शुरू की गई थीं कि वे वहाँ से लौटकर भी शिक्षक का ही कार्य करेंगे। इन्हें तीसरी योजना में भी जारी रखा जायगा। 'अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा-परिषद्' ने सिफारिश की है कि तकनीकी विषय पढ़ाने वालों की वेतन-दरें ऊँची कर दी जायें। आशा है कि इस सिफ़ारिश के कारण भी कुछ अधिक लोग इस पेशे की ओर आकृष्ट होंगे।"[1]

१. तीसरी पंचवर्षीय योजना : प्रारम्भिक रूपरेखा, पृ० १०५

उपरिकथित समस्यायें प्रौद्योगिक शिक्षा के मार्ग को अवरुद्ध कर रही हैं। हमने उनके समाधान के लिये कुछ सुझाव प्रस्तुत किये हैं। यदि इन सुझावों को स्वीकार करके कार्यान्वित कर दिया जाय, तो आशा की जा सकती है कि प्रौद्योगिक शिक्षा शीघ्र ही अपने प्रशस्त मार्ग पर अग्रसर होने लगेगी।

## सारांश

**प्रौद्योगिक शिक्षा की आवश्यकता**—किसी देश अथवा राष्ट्र की सम्पन्नता का आधार विज्ञान तथा प्रौद्योगिक शिक्षा है। यदि देश में इस शिक्षा की प्रगति हो रही है, तो राष्ट्र की उन्नति अवश्य होगी। संयुक्त राज्य अमेरिका, सोवियत रूस, जर्मनी और जापान के उदाहरण हमारे समक्ष हैं। भारत में कच्चे माल और खनिज पदार्थों का अभाव नहीं है। यदि हमारे देश में विज्ञान तथा प्रौद्योगिक विषयों का पूर्ण ज्ञान रखने वाले व्यक्ति हों, तो इनका उपयोग होने लगेगा और भारत का आर्थिक विकास हो जायगा।

**प्राचीन काल में प्रौद्योगिक शिक्षा**—प्राचीन काल में प्रौद्योगिक शिक्षा का भारत में अत्यधिक विस्तार था, परन्तु यह शिक्षा विद्यालयों में न दी जाकर पिता द्वारा पुत्र को परम्परागत रूप से दी जाती थी।

**मुस्लिम काल में प्रौद्योगिक शिक्षा**—मुस्लिम काल में प्रौद्योगिक शिक्षा का वही रूप रहा जो प्राचीन काल में था। इस काल में ललित कलाओं, सुख-ऐश्वर्य की वस्तुओं, सूती व्यवसाय, रेशमी वस्त्र आदि के उत्पादन को विशेष प्रोत्साहन मिला।

**अंग्रेजी राज्य में प्रौद्योगिक शिक्षा**—भारत में परम्परागत रूप में प्रौद्योगिक शिक्षा देने की जो प्रणाली चल रही थी, उसका गला स्वार्थी अंग्रेजों ने घोट दिया। फलस्वरूप इस देश के सभी उद्योग चौपट हो गये। भारत को अंग्रेजी माल से भर दिया गया। उद्योगों के चौपट होने से असंख्यों शिल्पकार बेकार हो गये और अगणित काल के गाल में पहुँच गये। ऐसी दशा में भारत में जो प्रौद्योगिक शिक्षा पिता से पुत्र को अनेकों पीढ़ियों से प्रदान की जा रही थी, उसका सदैव के लिये अन्त हो जाना स्वाभाविक था।

**१८०० से १८८२ तक**—प्रौद्योगिक शिक्षा की ओर सरकार का ध्यान सर्व प्रथम १८७७-७८ के 'दुर्भिक्ष-आयोग' द्वारा आकर्षित किया गया, पर फिर भी सरकार ने इस शिक्षा की अवहेलना की।

**१८८२ से १९०२ तक**—कांग्रेस ने १८८७ में होने वाले अपने तीसरे अधिवेशन में सरकार से प्रौद्योगिक शिक्षा की माँग की और अन्य अधिवेशनों

में इस माँग को दोहराती रही। परन्तु निज स्वार्थ मे लिप्त भारत की अंग्रेजी सरकार इस माँग को निरन्तर ठुकराती रही।

१९०२ से १९२१ तक—सरकार ने 'भारतीय शिक्षा आयोग' की सिफारिश को स्वीकार करके विभिन्न प्रान्तों मे हाई स्कूल के पाठ्य-क्रम मे प्रौद्योगिक तथा व्यावसायिक विषयों को स्थान दिया।

१९२१ से १९३७ तक—प्रौद्योगिक शिक्षा प्राप्त करने केलिये कुछ विद्यार्थियो को छात्र-वृत्तियाँ दी गईं। 'मारिसन समिति' ने इन छात्रवृत्तियों के सम्बन्ध में कुछ सुझाव दिये, पर उनसे कोई लाभ नहीं हुआ। लार्ड लिटन की अध्यक्षता मे नियुक्त की गई समिति ने सुझाव दिया कि भारत मे प्रौद्योगिक, प्राविधिक तथा प्रौद्योगिक सस्थाओं का निर्माण किया जाय। फलस्वरूप भारत में ३ प्रौद्योगिक विद्यालय स्थापित किये गये।

१९३७ से १९४७ तक—भारत मे युद्ध सामग्री का उत्पादन करने के कारण इस काल में प्रौद्योगिक शिक्षा की विशेष प्रगति हुई परन्तु उसे संतोषजनक नहीं कहा जा सकता।

स्वतन्त्र भारत में प्रौद्योगिक शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण—भारतीयों का प्रौद्योगिक शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण परिवर्तित होरहा है। उन्हें यह विश्वास हो गया है कि देश का आर्थिक विकास करने के लिये उत्पादन की प्रक्रियाओं में आधुनिक प्रौद्योगिकी की विधियों का प्रयोग करना है। फलतः प्रौद्योगिक शिक्षा का विस्तार तीव्र गति से हो रहा है।

स्वतन्त्र भारत में शिक्षा पर प्रौद्योगिक संघात—स्वातन्त्र्योत्तर काल में देश के औद्योगीकरण के साथ-साथ प्रौद्योगिक तथा प्राविधिक शिक्षा की भी प्रगति हुई है। १९४७ में केवल ६,६०० छात्रों को प्रौद्योगिक तथा प्राविधिक शिक्षा देने का प्रबन्ध था। १९५३ में १२,७०० छात्रों के लिये इस शिक्षा की व्यवस्था कर दी गई। १९५८-५९ में इंजीनियरिंग तथा टेकनॉलोजी के डिग्री पाठ्यक्रमों वाले ८३ कॉलिज तथा डिप्लोमा पाठ्य-क्रम के १४६ पॉलीटेकनीक थे। १९५८-५९ में विभिन्न प्रौद्योगिक, प्राविधिक एवं इंजीनियरिंग संस्थाओ के विकास के लिये १३६.२० लाख रूपये दिये जाने का अनुमान है एवं १९५९-६० में १४५.१६ लाख रुपये की व्यवस्था को गई है।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में प्रौद्योगिक शिक्षा—'इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ़ साइन्स' का विकास; १४ इंजीनियरिंग कॉलिजों की स्थापना; विशेष व्यावसायिक विषयों का शिक्षण; प्रौद्योगिक, प्राविधिक एवं व्यावसायिक स्कूलों की स्थापना; जूनियर बहुद्योगीय स्कूलों का निर्माण तथा प्रौद्योगिक स्कूलों का शिलान्यास।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में प्रौद्योगिक शिक्षा—प्रथम योजना में स्थापित

शिक्षा-संस्थाओं का विकास, स्नातकोत्तर पाठ्य-क्रमों एवं इंजीनियरिंग टेकनॉलाजी के अनुसंधान की व्यवस्था, तीन उच्चतर टेकनिकल संस्थाओं की स्थापना और डिग्री स्तर की ९ संस्थाओं तथा डिप्लोमा स्तर की २१ संस्थाओं का निर्माण।

आधुनिकतम् औद्योगिक गतिविधियाँ—३८ विज्ञान मन्दिरों की स्थापना, मद्रास में 'इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ़ टेकनॉलाजी' की स्थापना, १९५६-६० में ४० पोलिटेकनीकों और ९ इंजीनियरिंग कॉलेजों की स्थापना, बड़े पैमाने पर औद्योगिक तथा प्राविधिक छात्रों को सहायता व १११ अनुसंधान छात्रवृत्तियाँ।

औद्योगिक शिक्षा की समस्यायें—ये समस्यायें अग्रलिखित हैं—(१) औद्योगिक शिक्षा के प्रति अनुचित दृष्टिकोण, (२) औद्योगिक विद्यालयों का अभाव, (३) संकीर्ण पाठ्य-क्रम, (४) शिक्षा का अनुपयुक्त माध्यम, (५) प्रायोगिक शिक्षा का न्यून महत्त्व, (६) अध्ययन समाप्ति के उपरान्त विकास का अभाव, और (७) शिक्षकों का अभाव।

## सहायक पुस्तकों की सूची


1. *The Leader*, Republic Day Supplement, 1959.
2. *Report of the Indian Idustrial Commission*, 1916-18.
3. *Report of the Commission on Indian Students in England.*
4. *Oxford Pamphlets on Indian Affairs*, No. 15.
5. Sir Richard Livingstone : *Some Tasks for Education.*
6. Jawahar Lal Nehru : *The Discovery of India.*
7. Bagwan Dayal : *The Development of Modern Indian Education.*

८. बी० एन० लूनिया : भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का विकास

९. सुन्दर लाल : भारत में अंग्रेजी राज

१०. आज़ादी का तेरहवाँ वर्ष

११. प्रथम पंचवर्षीय योजना

१२. द्वितीय पंचवर्षीय योजना

१३. तीसरी पंचवर्षीय योजना : प्रारम्भिक

## TEST QUESTIONS

1. What, in your opinion, is the importance of Technological Education ? How has this need been met in Free India ?
2. Briefly describe the technological impact on education during the British rule and since the achievement of independence.
3. ✓ Give an account of the technological activities from 1950 to 1960.
4. ✓ What problems are being faced in the expansion of technological education ? How can they be tackled ?

—: o :—

अध्याय ८

# शिक्षा पर सामाजिक-आर्थिक संघात[1]

महान् यूनानी दार्शनिक अरस्तू (Aristotle) का कथन है कि "मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है।" वह समाज में रहकर अन्य व्यक्तियों के साथ अपना जीवन व्यतीत करता है। समाज के सदस्य अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये एक-दूसरे से अपने सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करते हैं। सामाजिक अंतर्क्रिया (Social Interaction) के कारण उनके सामाजिक सम्बन्धों में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है और सामाजिक सम्बन्धों के परिवर्तन के कारण समाज का परिवर्तन होता रहता है। यदि हम अपने समाज के इतिहास का अवलोकन करें, तो हमें स्पष्ट रूप से अनुभव हो जायगा कि जब से हमारे समाज का प्रादुर्भाव हुआ है, तबसे उसमें समय-समय पर परिवर्तन होता आया है। बहुत दूर नहीं, अपितु आज से १०-१५ वर्ष पूर्व हमारे समाज का रूप वह नहीं था, जो आज है। सामाजिक परिवर्तन के अनेकों कारण हैं। मार्क्स (Marx) के अनुसार सामाजिक परिवर्तन का प्रमुख कारण आर्थिक सम्बन्धों का संघर्ष होता है। यह संघर्ष समाज के पर्यावरण में परिवर्तन करता है और पर्यावरण समाज तथा शिक्षा-संस्थाओं में परिवर्तन करता है।

## सामाजिक परिवर्तनों का शिक्षा पर प्रभाव

यदि हम मार्क्स (Marx) की सामाजिक परिवर्तन की आर्थिक व्याख्या को स्वीकार कर लें, तो हम कह सकते हैं कि समाज की आर्थिक रचना की

1. Socio-Economic Impact upon Education.

नींव पर ही समाज की अधिरचना (Super Structure) खड़ी है। शिक्षा का कार्य इस अधिरचना को यथावत् बनाये रखना है। शिक्षा का रूप वही होता है, जिसकी माँग समाज द्वारा की जाती है। अन्य शब्दों में शिक्षा समाज की आवश्यकताओं, मान्यताओं तथा उद्देश्यों के अनुकूल होती है। प्रत्येक समाज का अपना एक विशिष्ट संगठन है। उसके अपने मूल्य तथा प्रवृत्तियाँ होती हैं। उसकी अपनी निश्चित परम्परायें होती हैं। उसका अपना एक लक्ष्य होता है और उसी दिशा में वह अग्रसर होना चाहता है। उदाहरणार्थ, जैन समाज तथा आर्य समाज दोनों के संगठन, मान्यतायें एवं परम्परायें एक-दूसरे से भिन्न हैं। परन्तु इन दोनों तथा अन्य समाजों के संगठन की इकाई मानव है। मानव समाज के अन्य सदस्यों के सहयोग से उसके संगठन, सिद्धान्तों तथा नीतियों का निर्माण करता है। अतः समाज में परिवर्तन लाने के लिये उसके सदस्यों के दृष्टिकोणों में परिवर्तन करना आवश्यक होता है। यह कार्य शिक्षा के द्वारा किया जाता है। जर्मनी के अधिनायक हिटलर ( Hitler ) ने सामाजिक परिवर्तनों के कारण शिक्षा का रूपान्तर किया और शिक्षा के परिवर्तित रूप से अपने देश के समाज की रूप-रेखा को बदला। जर्मन बालकों तथा बालिकाओं को प्रारम्भ से ही यह शिक्षा दी जाती थी कि जर्मन जाति संसार की सर्वश्रेष्ठ जाति है, वह विश्व पर शासन करने के लिये उत्पन्न हुई है। वह अपना उद्देश्य तभी प्राप्त कर सकती है, जब सब जर्मन व्यक्ति एक नेता का अनुसरण करें, और एक दल के रूप में संगठित होकर रहें। जर्मन प्रजाति की श्रेष्ठता तथा यहूदियों की निम्नता का भाव उनमें कूट-कूट कर भर दिया जाता था। यही कारण था कि जर्मनी के निवासियों में यह विचार पूर्ण रूप से प्रविष्ट हो गया था कि उन्हें अपने देश की प्रगति के लिये अपना सर्वस्व अर्पण कर देना है।

विश्व के जिन देशों में महान् क्रान्तियाँ हुई हैं, उन्होंने वहाँ की सामाजिक संरचना को परिवर्तित कर दिया। फलस्वरूप वहाँ की शिक्षा के रूप में परिवर्तन हुआ। १७८९ की फ्रांस की राज्यक्रान्ति (French Revolution) ने वहाँ के निवासियों में विद्रोह की भावना भर दी और वहाँ आतंक का राज्य स्थापित हो गया। फलस्वरूप सामाजिक मूल्यों तथा मान्यताओं में अन्तर आ गया। जनता राजसत्ता की विरोधी हो गई। १८०२ में नैपोलिन (Napoleon) फ्रांस का सम्राट् बना। उसने पुनः प्राचीन राजसत्ता का प्रारम्भ करके समाज के रूप को परिवर्तित किया। इस कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिये उसने शिक्षा का रूपान्तर किया। प्रत्येक नगर में विद्यालयों की स्थापना की गई। शिक्षकों को राज्य की ओर से वेतन दिया जाने लगा। पेरिस के विश्वविद्यालय का

पुनः संगठन किया गया। सब विद्यालयों में राजभक्ति की शिक्षा देने के लिए विशेष रूप से बल दिया गया।

फ्रांस में जिस राज्य-क्रान्ति का सूत्रपात हुआ था, उसने न केवल फ्रांस अपितु यूरोप के अन्य अनेकों देशों के सामाजिक जीवन पर भी गहरा प्रभाव डाला। फ्रांसीसी राज्यक्रान्ति के तीन आदर्श थे—समानता, स्वाधीनता और भ्रातृभाव (Equality, Liberty and Fraternity)। अर्थात् १७८६ से १८१४ तक यूरोप में जिस नवीन समाज के निर्माण का प्रयत्न किया गया, उसके ये ही आधार स्तम्भ थे। शिक्षा को नवीन समाज के अनुकूल बनाने के लिये अनेकों देशों में उसका रूप परिवर्तित किया गया। बर्लिन, ब्रेस्लो, लन्दन और न्यूयार्क के विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई, या उनका पुनः संगठन किया गया। शिक्षा के रूपान्तर के कारण यूरोप में जिस नव-जीवन का प्रारम्भ हुआ वह इस युग के लेखकों तथा कवियों की रचनाओं में भली-भाँति प्रतिबिम्बित होता है। फ्रांस के विक्टर ह्यूगो (Victor Hugo) और लामार्तीन (Lamartine) जैसे साहित्यिक क्रान्ति-युग की ही उपज थे। ब्रिटेन में बायरन (Byron) और शैले (Shelley) और जर्मनी में हाइन (Heine) जैसे साहित्यिकों पर भी इस युग की भावनाओं का प्रभाव बहुत स्पष्ट है।

उपरिलिखित उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि सामाजिक परिवर्तनों का शिक्षा पर प्रभाव पड़ता है और शिक्षा सामाजिक परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण साधन है। इतना ही नहीं, शिक्षा समाज को किसी भी दिशा में मोड़ सकती है। वह उन्नति भी कर सकता है और अवनति भी। अतः सामाजिक सिद्धान्तों, आदर्शों तथा मूल्यों के परिवर्तन के साथ-साथ शिक्षा के रूप में भी परिवर्तन होता रहता है।

## आर्थिक परिवर्तनों का शिक्षा पर प्रभाव

समाज में होने वाले आर्थिक परिवर्तनों का भी शिक्षा पर प्रभाव पड़ता है। आर्थिक प्रगति के साथ-साथ शिक्षा की प्रगति और उसका रूपान्तर होना अनिवार्य है। इंगलैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति (Industrial Revolution), जिसका काल १७५० से १८५० तक माना जाता है, के फलस्वरूप देश का अति त्वरित गति से औद्योगीकरण हुआ। अनेकों नवीन औद्योगिक नगरों का निर्माण हुआ और श्रमिक वर्ग का जन्म हुआ। इस सामाजिक परिवर्तन के फलस्वरूप १८६७ के 'सुधार अधिनियम' (Reform Act) के द्वारा अनेकों अशिक्षित श्रमिकों तथा अन्य व्यक्तियों को मताधिकार प्रदान किया गया।

परन्तु इस मताधिकार का उचित प्रयोग करने के लिये अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा आवश्यक समझी गई। लो (Lowe) का कथन था : "हमें अपने स्वामियों (मतदाताओं) को शिक्षित करना चाहिये।" (We must educate our masters.") अतः प्राथमिक शिक्षा को राष्ट्रीय आवश्यकता मान कर १८७० में प्रथम शिक्षा अधिनियम (First Education Act) पारित किया गया।[1]

रूस में १९१७ में बोल्शेविकों ने क्रान्ति द्वारा राजशक्ति प्राप्त करके अपने देश के समाज में आमूल-चूल परिवर्तन कर दिया। वहाँ की आर्थिक व्यवस्था को पूर्णतः बदल डाला। कारखानों पर से पूंजीपतियों के स्वत्व का अन्त हो गया और उनका संचालन श्रमिकों की एक प्रबन्ध समिति द्वारा किया जाने लगा। बड़े-बड़े कारखाने, रेलवे, खानें आदि राज्य की सम्पत्ति हो गईं। बोल्शेविक लोग भली-भांति समझते थे कि उनके सिद्धान्त तभी सफल हो सकते हैं, जब कि साधारण कृषक-श्रमिक जनता की समृद्धि हो, उन्हें भर पेट भोजन और पहिनने को वस्त्र मिलें, उनके आराम में वृद्धि हो और वे अपने को सुखी एवं संतुष्ट करें। साम्यवाद (Communism) का आदर्श तो यह है कि "सबको उनकी आवश्यकता के अनुसार प्राप्त हो।"

रूस में इस आर्थिक व्यवस्था और उससे सम्बन्धित परिवर्तनों का प्रभाव शिक्षा पर भी पड़ा। अपने साम्यवादी आदर्श के अनुसार साम्यवादी सरकार ने रूस के सभी बालकों तथा बालिकाओं के लिये शिक्षा को सुलभ बनाने का अभिनन्दनीय प्रयास किया है। पिछड़े हुए व्यक्तियों को शिक्षा के क्षेत्र में बढ़ाने के लिये कम्युनिस्टों ने विशेष चेष्टा की है। "रूस के विशाल साम्राज्य के अन्तर्गत अनेक ऐसी जातियों का भी निवास था, जो किसी भी वर्णमाला या लिपि से अपरिचित थीं। कम्यूनिस्टों ने इनकी भाषा को लेखबद्ध करने के लिये इन्हें वर्णमाला और लिपि का ज्ञान प्रदान किया, जिसमें ये अपनी भाषा को लिखकर साहित्य का निर्माण करने में सफल हुईं। परिणाम यह हुआ कि उजबक, काजक आदि भाषाओं के साहित्य का विकास शुरू हुआ और धीरे-धीरे ये भाषायें इतनी अधिक विकसित हो गईं कि इनके माध्यमों से उच्च शिक्षा का प्राप्त कर सकना भी सम्भव हो गया। रूस में १११ विभिन्न भाषाओं में पुस्तकों का प्रकाशन शुरू हुआ और विविध जातियों के लोगों को यह अवसर मिला कि वे अपनी मातृभाषा में शिक्षा प्राप्त कर सकें। इस प्रयत्न का परिणाम यह हुआ कि १९४१ में रूस में अशिक्षितों की संख्या केवल १० प्रतिशत रह गई। इस

1. J. A. R. Marriott : *England Since Waterloo*, p. 530.

प्रसंग में यह ध्यान रखना चाहिये कि बाल्शेविक क्रान्ति से पूर्व रूस की ७९ प्रतिशत जनता सर्वथा अशिक्षित थी।"[1]

उपरोक्त के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं कि सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षिक प्रक्रियाओं का पारस्परिक सम्बन्ध है। किसी भी देश की शिक्षा, उसके रूप, उसके उद्देश्यों एवं उसके संगठन पर, वहाँ होने वाले सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तनों का प्रभाव पड़ता है और उसका रूपान्तर होता रहता है। भारत के सम्बन्ध में भी यह बात सत्य है।

## ब्रिटिश शासन-काल में शिक्षा पर सामाजिक-आर्थिक संघात

सन् १८४८ तक भारत का एकीकरण हो गया था। इसके दस वर्ष पश्चात् ब्रिटिश पार्लियामेण्ट ने भारत-सरकार का दायित्व सीधे अपने हाथ में ले लिया। यह व्यवस्था लगभग एक सौ वर्षों तक जारी रही। इन वर्षों में भारत में क्रान्तिकारी, सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तन हुए और उनका भारतीय शिक्षा पर अति व्यापक प्रभाव पड़ा। इसका अध्ययन हम सुविधा की दृष्टि से निम्नाङ्कित कालों में करेंगे :

### उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में

मुग़ल सम्राट् औरंगजेब की मृत्यु (१७०७) के उपरान्त देश में अशान्ति तथा अराजकता फैल गई थी। ऐसी स्थिति में शिक्षा-संस्थाओं को धन का अभाव हो गया था। फलस्वरूप वे उत्तरोत्तर अवनति को प्राप्त हो रही थीं। १८वीं शताब्दी के अन्त तक भारत में होने वाली सामाजिक तथा आर्थिक अव्यवस्था के कारण भारतीय शिक्षा की काया पर्याप्त रूप से जीर्ण और जर्जर हो गई थी। १८२३ तक भारत के अधिकांश भाग पर अंग्रेजों की सत्ता स्थापित हो चुकी थी। १८३५ से १८३८ तक ऐडम (Adam) द्वारा भारत-सरकार के समक्ष प्रस्तुत की गई रिपोर्टों से ज्ञात होता है कि उस समय भारत में शिक्षा का उचित प्रबन्ध था और वह इस देश की प्राचीन परम्पराओं पर आधारित थी। यह शिक्षा किसी वर्ग-विशेष के लिये न होकर जन साधारण की शिक्षा की माँग की पूर्ति करती थी। परन्तु शिक्षा-संस्थाओं के पास धन का अभाव होने के कारण उनकी निरन्तर अवनति हो रही थी। ब्रिटिश शासन-सत्ता स्थापित हो जाने के उपरान्त देश में सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तन होने [illegible]। मिशनरियों ने १८१३ तक से अपने धार्मिक सिद्धान्तों का

---

[1] [illegible] विद्यालंकार : यूरोप का आधुनिक इतिहास, पृष्ठ ८३०

प्रचार करके भारतीय जनता के सामाजिक दृष्टिकोण को पूर्णरूप से परिवर्तित करने का प्रयास किया। फलस्वरूप अनेकों भारतीयों ने अपने धर्म का परित्याग करके ईसाई धर्म को स्वीकार किया। इतना ही नहीं, मिशनरियों ने शिक्षा-संस्थायें स्थापित करके भारतवासियों से सम्पर्क स्थापित किया और उनके द्वारा अपने धर्म का प्रचार भी किया। इन शिक्षा-संस्थाओं का रूप भारत की देशी शिक्षा-संस्थाओं से पूर्णतया भिन्न था।

इन नवीन शिक्षा-संस्थाओं के समक्ष देशी शिक्षा-संस्थायें न टिक सकीं। कारण यह था कि मिशनरियों द्वारा स्थापित शिक्षा-संस्थाओं के लिए धन का अभाव नहीं था। इसके विपरीत देशी शिक्षा-संस्थाओं में धन की न्यूनता में दिन प्रतिदिन वृद्धि हो रही थी। एक तो उनके पास पहिले से ही धन का अभाव था, दूसरे अंग्रेजों की नीति के कारण भारत में ऐसे क्रान्तिकारी आर्थिक परिवर्तन हुए जिनका प्रभाव देशी शिक्षा-संस्थाओं पर भी पड़ा और शनैः शनैः उनका अस्तित्व सदैव के लिये समाप्त हो गया।

भारत में होने वाले आर्थिक परिवर्तनों ने जनता को निर्धनता के गहरे गर्त्त में ढकेल दिया। अंग्रेजों के द्वारा यह किस प्रकार किया गया, इसका वर्णन करते हुए प्रसिद्ध अंग्रेज तत्ववेत्ता, हर्बर्ट स्पेन्सर (Herbert Spencer) सन् १८५१ में लगभग सौ वर्ष के ईस्ट इण्डिया कम्पनी के भारतीय शासन का सिंहावलोकन करते हुए लिखता है: "कल्पना कीजिये कि उनकी (अंग्रेजों की) करतूतें कितनी काली रही होंगी, जब कि कम्पनी के डाइरेक्टरों तक ने यह स्वीकार किया कि 'भारत के आन्तरिक व्यापार में जो बड़ी-बड़ी पूँजियाँ कमाई गई हैं, वे इतने महान् अन्यायों तथा अत्याचारों द्वारा प्राप्त की गई हैं, जिनसे बढ़कर अन्याय तथा अत्याचार कभी किसी देश या किसी युग में भी उनने में नहीं आये। 'अनुमान कीजिये कि वन्सीटॉर्ट (Vansittart) ने समाज की जिस दशा का वर्णन किया है वह कितनी वीभत्स रही होगी जब कि वन्सीटॉर्ट हमें बताता है कि अंग्रेज भारतवासियों को विवश करके, जिस भाव चाहते थे उनसे माल खरीदते थे, और जिस भाव चाहते थे उनके हाथ बेचते थे, और जो कोई इन्कार करता था, उसे बेंत या कारावास का दण्ड देते थे। विचार कीजिये कि उस समय देश की क्या दशा रही होगी, जबकि अपनी किसी यात्रा का वर्णन करते हुए वारेन हेस्टिंग्स लिखता है कि 'हमारे पहुँचते ही लोग अधिकांश छोटे-छोटे कस्बों और सरायों को छोड़-छोड़कर भाग जाते थे।' आज के दिन तक साहब लोग हाथियों पर बैठ कर निर्धन

किसानों की खड़ी फ़सलों में से जाते हैं और गाँव के लोगों से बिना मूल्य दिये रसद वसूल कर लेते हैं।"[1]

अंग्रेज़ों के इन हृदयहीन कृत्यों से जनता की आर्थिक दशा कैसी रही होगी और समाज में कितनी अव्यवस्था फैल गई होगी, इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। ऐसी दशा में भारतीय शिक्षा का पनपना असम्भव था, और हुआ भी ऐसा ही। अपनी असहाय अवस्था में भारत की निर्धन जनता ने अपनी प्राचीन शिक्षा को तिलांजलि देकर अंग्रेज़ी के अध्ययन में अपना प्रत्यक्ष हित देखा। इसका अर्जन करके राजपद प्राप्त हो सकता था और जीविकोपार्जन की समस्या को भी हल किया जा सकता था। अतः अंग्रेज़ी शिक्षा की माँग बढ़ी। देशी शिक्षा ज्यों-त्यों करके कुछ समय तक चली, परन्तु उसके उपरान्त वह प्रायः निष्प्राण हो गई।

## उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में

उन्नीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध धर्म एवं समाज के सुधारवादी कार्यों के महान् आन्दोलनों के लिये प्रसिद्ध है।[2] वस्तुतः इस काल में भारत में युगान्तर प्रारम्भ होता है। यह आधुनिकीकरण का श्री गणेश था। इसका

1. "Imagine how black must have been their deeds when even the Directors of the Company admitted that, 'the vast fortunes acquired in the inland trade have been obtained by a scene of the most tyrannical and oppressive conduct, that was ever known in any age or country.' Conceive the atrocious state of society described by Vansittart who tells us that the English compelled the natives to buy or sell at just what rates they pleased on pain of flogging or confinement. Judge to what a pass things must have come when, in describing a journey, Warren Hastings says, 'Most of the petty towns and serais are deserted at our approach'. Down to our own day, so called gentlemen will ride their elephants through the crops of impoverished peasants and will supply themselves with provisions from the native villages without paying for them."—Herbert Spencer : *Social Statics*.
2. "The second half of the nineteenth century was marked by a strong wave of reforming activities in religion and society."—Majumdar, Raychaudhari and Datta. : *An Advanced History of India*, p. 876.

सूत्रपात तब हुआ, जब भारतीयों ने पश्चिमी शिक्षा, सभ्यता तथा संस्कृति से प्रभावित होकर ज्ञान एवं प्रकाश के लिये अपना मुख पश्चिम की ओर मोड़ा और देश का आधुनिकीकरण करके सर्वाङ्गीण सामाजिक सुधार की ज्योति को जगमगाया।

"उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक हमारे देश में धर्मान्धता, अन्धविश्वास, अस्पृश्यता, सामाजिक रूढ़ियां, कुप्रथायें आदि ऐसे दोष उत्पन्न हो गये थे कि हमारा सामाजिक और आर्थिक जीवन जीर्ण और जर्जरित हो गया था, उसकी जीवन शक्ति क्षीण हो चुकी थी। अंग्रेज़ों की विशिष्ट व्यापारिक नीति के कारण भारत का आर्थिक जीवन अस्त-व्यस्त और असंतुलित हो गया था। दरिद्रता और भुखमरी का ताण्डव नृत्य होने लगा था और उद्योग-धन्धे विनिष्ट हो गये थे। फलतः आर्थिक विकास अवरुद्ध हो गया था और समृद्धि का प्रभाव शुष्क हो गया था। इस आर्थिक दुर्दशा ने भारत के सामाजिक जीवन को भी प्रभावित किया। विभिन्न ललितकलाओं की प्रगति रुक गई, जीवन नीरस हो गया और भारत का प्राचीनतम आध्यात्मिक स्रोत सूख गया। पश्चिम के प्रभाव के अन्तर्गत धीरे-धीरे इन दोषों का निवारण किया गया और आर्थिक तथा सामाजिक जीवन की प्रगति के साथ-साथ आधुनिकीकरण भी किया गया।"[१]

सामाजिक परिवर्तन—जब १८८५ में कांग्रेस की स्थापना हुई, तब यह अनुभव किया गया कि समाज की दशा में सुधार करना आवश्यक है। फलस्वरूप १८८८ से कांग्रेस की प्रत्येक बैठक के साथ-साथ प्रतिवर्ष 'राष्ट्रीय समाज-सुधार परिषद्' के अधिवेशन भी होने लगे। इनमें प्रतिवर्ष स्त्री-शिक्षा के प्रचार बाल-विवाह एवं पर्दे के विरोध, विधवाओं और अछूतों की दशा सुधारने, अन्तर्जातीय खान-पान एवं विवाहों के प्रोत्साहन पर प्रस्ताव पास किये जाने लगे। १८९० में समाज-सुधार का प्रबल समर्थक 'इंडियन सोशल रिफ़ार्मर' (Indian Social Reformer) नामक साप्ताहिक पत्र भी प्रकाशित किया जाने लगा। १८९७ में बम्बई एवं मद्रास में समाज-सुधार के लिये प्रान्तीय संगठन बनाये गये।

उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में सती-प्रथा, कन्या-वध, बाल-वध आदि दूषित प्रथाओं को कानून बनाकर अनियमित ठहरा दिया गया। प्रारम्भ में जनता ने इन कार्यों को धर्म के विरुद्ध समझकर इनका विरोध किया था,

---

१. बी० एन० लूनिया : भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का इतिहास, पृष्ठ ४६६

परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इनके महत्व को स्पष्टतया समझने लगी थी और इनकी पूर्ण रूप से विरोधी हो गई थी। परिणामस्वरूप १९वीं शताब्दी के अन्त तक इन सब बातों का पूर्णतया अन्त हो जाने के कारण समाज में एक आश्चर्यजनक परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगा था। सामाजिक परिवर्तन में कुछ अन्य कारकों ने भी योग दिया। १८५६ में भारत-सरकार ने विधवा-विवाह को जायज ठहराने के लिये एक क़ानून बनाया। शिक्षित व्यक्तियों ने जाति-भेद को समाप्त करना प्रारम्भ कर दिया। रेलों एवं होटलों ने भी छुआ-छूत को दूर करने में बड़ी सहायता की। आर्य-समाज ने जाति के बन्धनों को तोड़ने का पूर्ण प्रयास किया। कारखानों की स्थापना होने से जाति के अनुसार पेशों का बन्धन समाप्त हो गया। हरिजनोद्धार के लिये आर्य-समाज, ब्रह्म-समाज एवं प्रार्थना-समाज ने कार्य किये। आगे चलकर गांधी जी ने इनके उद्धार के लिये अथक प्रयास किये। इन समस्त कारकों ने १९ वीं शताब्दी के अन्त तक भारतीय समाज की रूप-रेखा को पूर्णतः परिवर्तित कर दिया।

**आर्थिक परिवर्तन**—उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत के आर्थिक पुनरुत्थान की कहानी भी देश के इतिहास का एक महत्वपूर्ण अध्याय बन गई है। भारत में अंग्रेजी राज्य की जड़ें ज्यों-ज्यों गहरी पहुँचती गईं, त्यों-त्यों इस देश में दरिद्रनारायण का प्रभावक्षेत्र बढ़ता गया। अंग्रेजों ने देश के उन्नत उद्योग-धन्धे एक-एक करके नष्ट कर दिये और परिणामस्वरूप लाखों कारीगर बेकार हो गये। विवश होकर उन्होंने कृषि का सहारा लिया। हमारे विदेशी शासकों का स्वार्थ इसी में था कि भारतीय जनता की आजीविका का एकमात्र साधन कृषि हो जाय, जिससे कि उन्हें निर्यात के लिये कच्चा माल बहुत कम मूल्य पर मिलता रहे और इंगलैण्ड का बना माल यहाँ अच्छे मूल्य पर बिक सके।[1] अंग्रेजों की इस आर्थिक नीति का परिणाम यह हुआ कि वह दिन आ पहुँचा जब भारत भर में पेट-पीठ मिले लोग दृष्टिगत होने लगे। अनेकों यूरोपीय प्रशासकों ने अपनी आँसू भरी आँखों से देखा था कि भारतीयों की कैसी दुर्दशा हो गई थी। लार्ड विलियम बैंटिक (Lord William Bentinck) ने लिखा था: "भारत में व्यापारिक क्रांति का भीषण दुष्प्रभाव पड़ा है जिससे देश में सर्वत्र निर्धनता छा गई है, और उससे अनेकों वर्गों के कष्टों में वृद्धि हो गई है, जो हमारी आँखों के सामने है और ऐसा उदाहरण व्यापारिक इतिहास में कहीं ढूँढ़ने से भी नहीं मिलेगा।"

---

१. अमरनाथ अग्रवाल : भारत की आर्थिक समस्यायें, पृष्ठ ६४

जब औद्योगिक क्रान्ति (Industrial Revolution) के कारण इङ्गलैण्ड के निवासी प्राविधिक ज्ञान में दिन दूनी, रात चौगुनी उन्नति कर रहे थे, तब भारत पराधीनता के क्लोरोफ़ार्म में बेसुध पड़ा था। आखिरश: एक लम्बी बेहोशी के बाद भारत जागा और उसका आर्थिक पुनरुत्थान प्रारम्भ हुआ, परन्तु धीमी गति से। 'अमेरिका मे गृहयुद्ध (१८६१-६५) छिड़ने के कारण भारत के कपड़ा उद्योग को यूरोपीय ढाँचा स्वीकार करने के लिये प्रोत्साहन मिला और भारत ने धीरे-धीरे सूती मिल बनाने आरम्भ कर दिये जिसके कारण आज वह कपड़ा के उत्पादन की वर्तमान सुदृढ़ स्थिति मे आ गया है। इसके बाद मे अन्य उद्योगों का सूत्रपात हुआ जिनमे इस्पात और लोहा, सीमेंट चीनी आदि उद्योगो के क्रमशः नाम गिनाये जा सकते हैं। यद्यपि भारतीय पूँजी के आगे आने मे हिचकिचाहट-सी नजर आती रही, किन्तु बाद मे औद्योगिक कारखानों में यह पूँजी धड़ाधड़ लगने लगी। एशिया के अंग्रेजी उपनिवेशो, विशेषतः बर्मा और मलाया मे तथा अमरीकी प्रदेशों मे भारतीय पूँजी की खपत होने लगी और एक बार भारतीय व्यापारिक फर्म उन प्रदेशों में खुलने लगे जहाँ कुछ शताब्दियों पहिले हाथ फैलाकर भारतीय व्यापारियों के साहस और सद्भावना का स्वागत किया जाता था।"[१]

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में उपरिवर्णित सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तनों का शिक्षा पर क्या प्रभाव पड़ा, इसका उल्लेख हम नीचे कर रहे हैं।

शिक्षा पर प्रभाव—उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्रो मे जो क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए उनके फलस्वरूप राष्ट्रीय चेतना का आविर्भाव हुआ। देश के नेताओं ने अनुभव किया कि वे राष्ट्र के नवनिर्माण का कार्य तभी सम्पन्न कर सकेंगे, जब देश के नवयुवकों को राष्ट्रीय विद्यालयो में राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत कर दिया जायगा। परिणामस्वरूप भारत के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक शिक्षा का विस्तार करने के लिये स्कूलों और कालिजों का निर्माण तीव्र गति से किया जाने लगा।

भारतीयों के इस कार्य का प्रभाव यहाँ के शासकों पर भी पड़ा। उन्होंने सहायता-अनुदान (Grant-in-aid) सम्बन्धी नियम बनाये और गैर-सरकारी स्कूलों को आर्थिक सहायता देकर, धनाभाव की चिन्ता से मुक्त किया। फलतः वे एकाग्रचित्त होकर शिक्षा-कार्य मे जुट गये।

सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों के कारण शिक्षा के सभी अवयवों को प्रगति

---

१. के० एम० पणिक्कर : भारतीय इतिहास का सर्वेक्षण, पृष्ठ २३७

सारांश में, १९ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में शिक्षा का व्यापक प्रसार हुआ। उसके सभी अंग विकसित हुए और भारत की समस्त जनता के लिये शिक्षा सुलभ हो गई। शिक्षा का रूप प्रायः वही रहा, जो १९ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में था। पुस्तकीय ज्ञान पर यथावत् बल दिया गया, परन्तु माध्यमिक स्तर पर उसमें औद्योगिक विषयों को सम्मिलित किया गया। शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी ही रहा, जिससे भारतीय भाषाओं का विकास न हो सका। भारतवासियों को अंग्रेजी शिक्षा से अधिक लाभ होने के कारण अंग्रेजी विद्यालयों की ही स्थापना हुई। उनकी व्यवस्था पाश्चात्य ढंग पर की गई। यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि शिक्षा का प्रसार नगरों में ही हुआ। ग्रामों तक वह प्रवेश न कर सकी, क्योंकि देश में होने वाले सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तन नगरों तक ही सीमित रहे और ग्रामों में उनका प्रवेश न हो सका। परिणामस्वरूप वहाँ शिक्षा का रूपान्तर नहीं हुआ और ग्रामीण पाठशालायें ही शिक्षा का केन्द्र बनी रही, जिनमें शिक्षा प्राचीन ढंग से दी जाती थी।

### बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में

उन्नीसवीं शताब्दी में भारत में जिस सामाजिक तथा आर्थिक पुनरुत्थान का सूत्रपात हुआ था, उसमें बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में विलक्षण तीव्रता आ गई। परिणामस्वरूप किस प्रकार के सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तन हुए, उनका संक्षिप्त विवरण अधोलिखित पंक्तियों में अंकित किया जा रहा है :

सामाजिक परिवर्तन—ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, दक्षिणी शिक्षा-समिति, थियोसोफ़िकल सोसाइटी और रामकृष्ण मिशन १९ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से सामाजिक उत्थान के कार्य में संलग्न थे। २० वीं शताब्दी में भी उन्होंने अपने कार्य-क्रमों को जारी रखा। इन कार्य-क्रमों के अन्तर्गत अस्पृश्यता-निवारण, हरिजनोद्धार, शिक्षा-प्रसार तथा सामाजिक कुरीतियों के निवारण को स्थान दिया गया। १९०५ में गोखले ने 'सर्वेन्ट्स आफ़ इंडिया सोसाइटी' (Servants of India Society) की स्थापना की, जिसका प्रमुख उद्देश्य भारत-माता की सेवा करना था। १९११ में नारायण मल्हार जोशी ने बम्बई में 'सोशल सर्विस लीग' (Social Service League) का संगठन किया जिसका मुख्य लक्ष्य जनसाधारण के लिये जीवन तथा कार्य की उत्तम दशायें प्राप्त करना था। इस लीग ने १५ वर्षों में वयस्कों के लिये १७ रात्रि-विद्यालय और ११ पुस्तकालय स्थापित किये।

१९१४ में हृदय नाथ कुंजरू ने इलाहाबाद में 'सेवा समिति' (Seva Samiti) का निर्माण किया, जिसका उद्देश्य शिक्षा, स्वास्थ्य और सफ़ाई में उन्नति करना था। उसी वर्ष श्रीराम बाजपेई ने 'सेवा समिति ब्वॉय स्काउट्स

हुई । प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में पर्याप्त प्रगति हुई और उसके स्थानीय कर लगाये गये । १८८२ के 'भारतीय शिक्षा आयोग' (Education Commission) की सिफारिश के अनुसार प्राथमिक भार स्थानीय संस्थाओं को सौंप दिया गया ।

माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में भी प्रगति हुई । परन्तु समाज पर शिक्षा तथा संस्कृति के बढ़ते हुए प्रभाव के कारण माध्यम के रूप भाषाओं की उपेक्षा की गई और अंग्रेजी को प्रोत्साहन दिया गया। परिवर्तनों के कारण औद्योगिक विषयों की शिक्षा की माँग बढ़ी। सभी प्रान्तों में औद्योगिक पाठ्यक्रम प्रारम्भ किया गया ।

परिवर्तित सामाजिक तथा आर्थिक आवश्यकताओं के कारण उच्च की ओर सरकार का ध्यान गया और उसने १८५७ में कलकत्ता, बम्बई मद्रास में विद्यालयों का शिलान्यास किया । १८८२ में पंजाब विश्व की आधारशिला रखी गई । समाज में राष्ट्रीय चेतना के उदय होने के अनेकों भारतीयों ने अपने व्यक्तिगत प्रयास से उच्च शिक्षा के लिये स्थापित किये । इनमें पूना का फ़र्ग्यूसन कॉलेज, लाहौर का दयानन्द कॉलेज और बनारस का सेन्ट्रल हिन्दू कॉलेज था ।

इस काल में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति में विशेष परिवर्तन हुआ स्त्री-शिक्षा के प्रति जनता का दृष्टिकोण बदला । इसका श्रेय प० ईश्वर विद्यासागर, अगारकर, महादेव गोविन्द रानाडे और वैराम जी मालाबारी है । इन निस्स्वार्थ समाज-सेवकों ने कन्या विद्यालयों के निर्माण के लिये से धन एकत्रित करने में अथक प्रयास किया और देश के विभिन्न भागों बालिका-विद्यालयों का निर्माण किया । समाज-सुधारकों के कार्यों से प्राप्त करके स्वयं स्त्रियों ने शिक्षा के प्रति अपनी रुचि व्यक्त की और वे तथा व्यावसायिक शिक्षा की दिशा में भी अग्रसर हुई ।

हम ऊपर संकेत कर चुके हैं कि इस अवधि में हरिजनोद्धार के विशेष प्रयत्न किये गये । मिलों और फ़ैक्ट्रियों की स्थापना की गई, साथ साथ काम करने के कारण छुआ-छूत तथा जाति व्यवस्था के बन्धन होते चले गये । फलतः निम्न जातियों की सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति परिवर्तन हुआ । इस दिशा में महात्मा फुले, ब्रह्म-समाज, प्रार्थना-समाज आर्य-समाज ने अति श्लाघनीय कार्य किया । उनके आन्दोलनों का प्रभाव हुआ कि १६ वीं शताब्दी के अन्त तक भारतीयों के मस्तिष्क से छुआ-छूत भावना बहुत कुछ निकल गई । परिणामतः अछूतों के बालक सार्वजनिक स्कूलों में प्रवेश करने लगे ।

द्वार के कार्य में सबसे अधिक योग महात्मा गांधी ने दिया। परिणामतः हरिजन अपने राजनीतिक तथा सामाजिक अधिकारों के प्रति जागरूक हुए। कुछ समय से शिक्षा प्राप्त करने के कारण वे इसके लाभ को पूर्णतः समझ गये। उनमें ज्ञान-पिपासा की वृद्धि हुई और वे शिक्षा प्राप्त करने के अपने अधिकार की माँग करने लगे। इस कार्य में उन्हें अपने नेताओं—डाक्टर बी० आर० अम्बेदकर और एम० सी० राजा से विशेष सहायता प्राप्त हुई।

आर्थिक परिवर्तन—उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत में आर्थिक अभ्युत्थान का युग प्रारम्भ हो गया था। बीसवी सदी के प्रारम्भ से स्वदेशी आन्दोलन ने प्रबल रूप धारण किया, जिससे हमारे उद्योगों को पर्याप्त प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। देश मे साबुन, दियासलाई, पेंसिल आदि के अनेकों छोटे-बड़े कारखानो का निर्माण हुआ। परन्तु सरकार की अनुदार आर्थिक नीति के कारण हमारे उद्योग-धधे पनप न सके। प्रथम महायुद्ध (१९१४-१८) के काल में देश के उद्योग-धन्धो की कुछ उन्नति हुई क्योकि हमारे लिये विदेशों से माल प्राप्त करना कठिन था। इस्पात, वस्त्र और पटसन के उद्योगो ने पर्याप्त उन्नति की प्रथम और द्वितीय महायुद्धो के अन्तरिम काल (१९१९-३९) में चीनी, लोहा, वस्त्र, लोहा व इस्पात, दियासलाई, कागज आदि अनेको उद्योगों को सरकारी सरक्षण की सुविधा मिल जाने के कारण औद्योगिक विकास की गति निस्सन्देह अपेक्षाकृत तेज थी। द्वितीय महायुद्ध (१९३९-४५) में इगलैण्ड, अमेरिका, जर्मनी, जापान आदि देशो के उद्योग युद्ध-सम्बन्धी आवश्यकताओ की पूर्ति करने में फँसे रहने के कारण भारत को अपना माल न भेज सके। फलतः भारतीय उद्योगों का सराहनीय विकास हुआ।

२० वी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में उद्योगों के क्रमिक विकास से जनता के जीवन मे आर्थिक परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगे। विशाल औद्योगिक नगरों में विभिन्न जातियों के लाखों श्रमिक निवास करने तथा कल-कारखानों में कार्य करने लगे। पर्याप्त धन मिलने के कारण उनकी आर्थिक दशा में सुधार हुआ। साथ-साथ काम करने और विभिन्न मनोरजनों में भाग लेने के कारण उनका भेद-भाव समाप्त होना प्रारम्भ हुआ और उनके दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ। उन्होने सामान्य तथा औद्योगिक शिक्षा के मूल्य को समझा और वे अपने बच्चों के लिये उसे सुलभ बनाने के लिये क्रियाशील हुए।

शिक्षा पर प्रभाव—उपरोक्त सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तनों का शिक्षा के सभी अंगों पर व्यापक प्रभाव पड़ा। राष्ट्रीय आन्दोलन ने इस कार्य में योग दिया। भारतीयों ने विदेशी सरकार से शिक्षा प्राप्त करने के अधिकार की बलपूर्ण शब्दों में माँग की। १९११ में गोखले ने प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य

एसोसियेशन' (*Seva Samiti Boy Scouts Association*) का गठन किया।

उपर्युक्त सभी संगठनो के प्रयासों के फलस्वरूप भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों में जागृति की लहर दौड़ गई, जिससे उनके विचारों, आदतों तथा रीति-रिवाजों में बहुत परिवर्तन हुआ। सबसे अधिक परिवर्तन स्त्रियों और अछूतों की स्थिति में हुआ। महात्मा गांधी के नेतृत्व में स्त्रियों तथा अछूतों के उत्थान में अतिशय योग प्राप्त हुआ। उन्होंने ही महिला तथा अछूत आन्दोलनों को नवीन स्फूर्ति प्रदान की।

१९१७ में भारत-मन्त्री मोण्टेग्यू (Montague) के भारत आने पर यहाँ की महिलाओं ने उनसे अपने राजनैतिक अधिकारों की माँग की। महिलाओं ने अपने आन्दोलनों को सुसंगठित रूप प्रदान करने के लिये अनेकों संस्थाओं का निर्माण किया। १९१७ में श्रीमती डोरोथी जिनराजदास ने 'महिला भारतीय संघ' (*Women's Indian Association*) की स्थापना की। १९२५ में 'भारतीय महिलाओं की राष्ट्रीय समिति' (National Council of Women in India) का निर्माण किया गया। १९२६ में 'अखिल भारतीय महिला सम्मेलन' (All India Women's Conference) का आयोजन किया गया। इन संस्थाओं ने अन्य माँगों के साथ-साथ शिक्षा-सम्बन्धी माँगें भी की जो इस प्रकार थीं:—*(१) बालिकाओं की शिक्षा की उचित व्यवस्था की जाय, (२) हाई स्कूल तक बालिकाओं को ऐसी शिक्षा दी जाय जिससे वे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पदार्पण कर सकें, और (३) बालिकाओं को अनिवार्य तथा निःशुल्क शिक्षा दी जाय।*

*महिला आन्दोलनों से प्रभावित होकर सरकार ने उनकी प्रायः सभी अड़चनों को दूर करने का प्रयास किया। १९३१ में स्त्रियों को प्रथम बार प्रान्तीय धारा-सभाओं एवं केन्द्रीय व्यवस्थापिका के लिये मत देने का अधिकार प्राप्त हुआ। १९३० के 'शारदा ऐक्ट' (Sharda Act) के अनुसार बाल विवाह का निषेध कर दिया गया।*

*इस शताब्दि में सवर्ण हिन्दुओं में जागृति प्रारम्भ हो गई थी और उन्होंने भारतीय समाज पर लगी अस्पृश्यता की कलंक-कालिमा को धो डालने का दृढ़ संकल्प कर लिया था। आर्य-समाज, ब्रह्म-समाज और प्रार्थना समाज पहिले से ही अछूतोद्धार के पुनीत कार्य में अपनी सेवाओं को अर्पित कर चुके थे। माननीय गोखले ने अस्पृश्यता को समूल नष्ट करने के लिए १९०५ में 'भारत सेवक समाज' की स्थापना की थी और वह लगातार कार्य कर रहा था। हरिजनों के उत्थान के लिए १९०६ में विट्ठलराव जी शिंदे ने बम्बई में 'दलित वर्ग उद्धार सभा' (Depressed Class Mission) स्थापित की। हरिजनों-*

शिक्षा देना था। १९२१ के उपरान्त जनता ने अपनी सामाजिक तथा आर्थिक आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिये व्यावसायिक शिक्षा की मांग का नारा बुलन्द किया। फलस्वरूप १९३७ तक व्यावसायिक शिक्षा का प्रवाह निर्बाध गति से रहा। तत्पश्चात् द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण उसमें शिथिलता आ गई। कानून, चिकित्सा, पशु-चिकित्सा, इंजीनियरिंग, वन विज्ञान, कला, वाणिज्य तथा कृषि की शिक्षा के लिये नवीन संस्थाओं का निर्माण हुआ और उनसे भारतीयों की परिवर्तित सामाजिक तथा आर्थिक आवश्यकतायें कुछ सीमा तक पूर्ण होगईं। हाई स्कूल के पाठ्यक्रम के अन्तर्गत औद्योगिक तथा व्यावसायिक विषयों को पहिले ही स्थान दिया जा चुका था। द्वितीय महायुद्ध की अवधि में ऐसे व्यक्तियों की माँग बढ़ गई थी, जो प्राविधिक शिक्षा प्राप्त कर चुके हों। इस शिक्षा से अधिक आर्थिक लाभ देखकर भारतीयों ने प्राविधिक शिक्षा का आन्दोलन प्रारम्भ किया। परिणामस्वरूप १९४६ में 'अखिल भारतीय प्राविधिक शिक्षा-समिति' (All India Council of Technical Education) का निर्माण किया गया, जिसका उद्देश्य सरकार को प्राविधिक शिक्षा के सम्बन्ध में परामर्श देना और प्राविधिक शिक्षा-संस्थाओं में सामंजस्य स्थापित करना था।

हम ऊपर लिख चुके हैं कि २० वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति में त्वरित गति से परिवर्तन हो रहा था और वे मनुष्यों के समान शिक्षा की माँग कर रही थीं। उदार समाज सेवकों ने उन्हें सहयोग दिया और सरकार ने उनकी माँगों को पूर्ण करने का प्रयास किया। फलतः प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च शिक्षा-संस्थाओं की संख्या में आशातीत वृद्धि हुई। स्त्रियों को उनकी सामाजिक आवश्यकताओं के अनुकूल शिक्षा देने के लिये १९१६ में पूना में 'एस० एन० डी० टी० इंडियन वीमेन्स यूनीवर्सिटी' की स्थापना की गई। समाज-सुधारकों के प्रयासों के फलस्वरूप स्त्रियों की सामाजिक स्थिति में जो क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे थे, उन्होंने स्त्री-शिक्षा की गति को और भी द्रुत कर दिया। १९२१ से १९३७ तक स्त्री-शिक्षा की प्रगति का बहुमुखी रूप दिखाई देने लगा। सामाजिक दृष्टिकोण में परिवर्तन हो जाने के कारण जनता सह-शिक्षा की विरोधी नहीं रही। अतः सभी प्रान्तों में सह-शिक्षा का प्रचलन हो गया। इसके अतिरिक्त शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर और प्रत्येक प्रकार की शिक्षा-शाला में लड़कियों की उपस्थिति एक सामान्य बात हो गई। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान में शिक्षित व्यक्तियों की माँग में वृद्धि होने के कारण अनेकों स्त्रियाँ नौकरी करने लगीं। नौकरी करने से स्त्रियों ने अपनी आर्थिक स्थिति को परिवर्तित पाया क्योंकि वे आर्थिक स्वतन्त्रता का उपभोग करने लगीं थीं। अतः उन्हें शिक्षा ग्रहण करने की अधिक प्रेरणा प्राप्त हुई।

ने के लिये केन्द्रीय धारा-सभा में एक विधेयक प्रस्तुत किया, पर उन्हें ने कार्य में सफलता नहीं प्राप्त हुई। उनके उदाहरण से प्रेरणा प्राप्त के विभिन्न प्रान्तों में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा अधिनियम पारित किये । हर्टाग समिति (Hartog Committee) ने प्राथमिक शिक्षा को लाभप्रद ाने के लिए अपव्यय (Wastage) तथा अवरोधन (Stagnation) का न्त करने के लिये महत्वपूर्ण सुझाव दिये। प्रान्तीय स्वशासन (१९३७-४७) कांग्रेसी मंत्रिमंडलों ने अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा को प्रचलित करने के प्रयत्न किये। प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में महात्मा गाँधी द्वारा प्रस्तुत की गई बेसिक शिक्षा की योजना को कार्यान्वित किया गया।

इस युग के सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तनों के कारण शिक्षा के प्रति लोगों की रुचि में वृद्धि हुई। फलस्वरूप शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर स्पष्ट प्रगति दृष्टिगत होने लगी। माध्यमिक विद्यालयों की संख्या में वृद्धि हुई। इन विद्यालयों में शिक्षा के माध्यम के स्थान पर अंग्रेजी को ही प्रतिष्ठित रखा गया। कारण यह था कि अंग्रेजी की शिक्षा से सामाजिक सम्मान में वृद्धि होती थी। परन्तु राष्ट्रीयता की भावना के उदय के कारण अंग्रेजी के प्रति समाज का दृष्टिकोण बदल रहा था। फलतः प्रान्तीय स्वशासन में प्रायः सभी माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम भारतीय भाषायें हो गई। आर्थिक परिवर्तनों के परिणामस्वरूप प्रान्तीय सरकारों ने टेकनिकल और कृषि हाई स्कूल खोले। वाणिज्य की शिक्षा का भी प्रबन्ध किया गया।

सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तनों ने उच्च शिक्षा के प्रसार में भी योग प्रदान किया। दो महायुद्धों तथा 'भारत छोड़ो' (Quit India) प्रस्ताव के कारण जन-साधारण में सर्वव्यापक जागृति का प्रादुर्भाव हो गया था और वह उच्च शिक्षा ग्रहण करने के लिये उत्कंठित हो गई थी। युद्धकालीन समय में व्यवसायी वर्ग को व्यापार में अत्यधिक लाभ हुआ था और वह उच्च शिक्षा संस्थाओं की स्थापना के लिये उदार धन-राशि देने को उद्यत था। परिणामतः २० वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में १६ विश्वविद्यालयों की आधार-शिला रखी गई और पुराने विश्वविद्यालयों का पुनः गठन किया गया।

सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तनों के कारण व्यावसायिक शिक्षा की माँग की गई। भारतीय जनमत इस पक्ष में था कि राष्ट्रीय शिक्षा में व्यावसायिक शिक्षा को उचित स्थान दिया जाय। ऐसा करने से ही देश का आर्थिक विकास हो सकेगा। परन्तु विदेशी सरकार ने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया। १९२१ में सम्पूर्ण देश में केवल ४४ व्यावसायिक शिक्षा संस्थायें थीं, जिनका प्रमुख उद्देश्य राजकीय विभागों के लिये भारतीयों को किसी उद्योग व व्यवसाय की

"सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न" होगा अर्थात् भारत पर किसी बाह्य शक्ति का अधिकार नहीं रहेगा। साथ ही भारत "गणराज्य" होगा अर्थात् भारत में किसी राजवंश का शासन नहीं होगा। फिर देश में 'लोकतन्त्रात्मक' राज्य होगा अर्थात् देश का शासन जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों से चलाया जायगा। नागरिकों को "विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता" होगी और उन्हें "सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय" प्राप्त होगा। इसका अर्थ यह हुआ कि भारत एक धर्म निरपेक्ष (Secular State) राज्य होगा, जिसमें समस्त नागरिक धर्म अथवा जाति के भेदभाव बिना, सामाजिक, आर्थिक तथा राजतिक अधिकारों का उपभोग करेंगे। इन सब परिवर्तनों के फलस्वरूप समाज की एक नवीन रूप-रेखा होगी।

दिसम्बर, १६५४ में भारतीय संसद ने घोषणा की कि भारत की अर्थनीति का सामान्य उद्देश्य 'समाजवादी आदर्श के समाज' (Socialistic Pettern of Society) की रचना है। इस समाज के गुण अथवा मूल उद्देश्य क्या होंगे, उनका स्पष्टीकरण करते हुए योजना-आयोग ने लिखा है: "रहन-सहन का ऊँचा मान, या जिसको कभी-कभी भौतिक उन्नति कहा जाता है, अपने आप में कोई लक्ष्य नहीं है। वस्तुतः यह बौद्धिक और सांस्कृतिक जीवन को उन्नत करने का एक साधन है। जिस समाज को अपना अधिकतर जन-बल और समय जीवन के निर्वाह-मात्र की आवश्यकतायें पूरी करने पर ही लगाना पड़ेगा, वह जीवन के उच्च लक्ष्यों की ओर उतना ही कम ध्यान दे सकेगा। आर्थिक विकास का उद्देश्य समाज की उत्पादक शक्ति को बढ़ा कर ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करना है कि परस्पर विरोधी प्रतिभाओं और प्रेरणाओं की अभिव्यक्ति और उपयोग अच्छे ढङ्ग से हो सकें। इसलिये विकास और आर्थिक उन्नति की गति आरम्भ से ही ऐसी होनी चाहिये कि वह समाज के बुनियादी उद्देश्यों के साथ मेल खाती रहे। किसी अविकसित देश के सामने अपने वर्तमान आर्थिक और सामाजिक ढाँचे से अधिक अच्छे परिणाम प्राप्त कर लेने का ही काम नहीं होता है, अपितु उन्हें इस प्रकार ढालने और पुनर्गठित करने का भी होता है कि वे अधिक उच्च और व्यापक सामाजिक मूल्यों के विकास में सहायक हों। इन गुणों या मूल उद्देश्यों को 'समाज का समाजवादी ढाँचा'(Socialistic Pattern of Society) शब्दों में बाँधा गया है।"[1]

'समाज का समाजवादी ढाँचा' का अभिप्राय यह है कि उन्नति के कार्यों की कसौटी निजी लाभ न होकर समाज का लाभ होना चाहिये, और विकास

१. द्वितीय पंचवर्षीय योजना, पृष्ठ २०-२१

सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तनों का प्रभाव हरिजनों पर भी पड़ा था और वे शिक्षा-अधिकार की माँग करने लगे थे। फलतः २० वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे हरिजनों को शिक्षा में आशातीत प्रगति हुई। १९२१ में प्रान्तीय शिक्षा का संचालन-सूत्र भारतीय मंत्रियों के हाथ में आ जाने के कारण हरिजन-शिक्षा की प्रगति में तेजी आ गई। १९३७ में विभिन्न प्रान्तों में कांग्रेसी मंत्रि-मंडलों का निर्माण हो जाने से हरिजनों की सभी शिक्षा-सम्बन्धी माँगें पूर्ण हो गईं।

इस अवधि की एक प्रमुख विशेषता थी प्रौढ़-शिक्षा। उद्योगों के विकास के कारण लाखों श्रमिक कल-कारखानों में कार्य करने लगे थे। उनमे शिक्षा के प्रति रुचि बढ़ रही थी। अतः उन्हें शिक्षा प्राप्त करने का अवसर प्रदान करने के लिये प्रौढ़-शिक्षा की व्यवस्था की गई। यह कार्य संगठित रूप मे १९३७ से भारत के सभी प्रान्तों में प्रारम्भ किया गया।

## स्वतन्त्र भारत में सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन

१५ अगस्त १९४७ को देश के सपूतों ने अपने असाधारण बलिदानों के पुरस्कारस्वरूप भारत माता को परतन्त्रता की बेड़ियों से मुक्त किया। शताब्दियों से पद-दलित भारतवासियों ने स्वतन्त्रता के वातावरण में एक नवीन युग में प्रवेश किया। उनकी वर्षों की साधना पूर्ण हुई और उन्होने अपनी इच्छानुसार देश की शासन-व्यवस्था संचालित करने के लिये २६ जनवरी, १९५० को भारत मे एक नवीन संविधान लागू किया। संविधान की प्रस्तावना में भारत की नवीन रूप-रेखा इन शब्दों मे अंकित की गई: "हम, भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण-प्रभुत्व-सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य बनाने के लिये, तथा उसके समस्त नागरिकों को: सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त करने के लिये, तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता सुनिश्चित करने वाली बन्धुता बढ़ाने के लिये दृढ़ संकल्प होकर……इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।[1]"

प्रस्तावना से स्पष्ट हो जाता है कि भारत का सामाजिक-आर्[illegible] गठन उससे पूर्णतया भिन्न होगा जो कि ब्रिटिश शासन-का[illegible]
संविधान के उपरोक्त शब्दों की व्याख्या करने [illegible]

१. अमरनन्दी: भारत का सं[illegible]

शब्दों में हम कह सकते हैं कि स्वतन्त्र भारत में शिक्षा पर सामाजिक-आर्थिक संघात स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हो रहा है।

## स्वतंत्र-भारत में शिक्षा पर सामाजिक-आर्थिक संघात

स्वतन्त्र भारत में सामाजिक-आर्थिक संघात के फलस्वरूप शिक्षा में जो परिवर्तन हो रहे हैं, उनका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है :

**प्राथमिक शिक्षा**—"किसी भी राष्ट्र का सामाजिक तथा आर्थिक विकास उसके निवासियों की शिक्षा पर निर्भर है।" इसी कथन को ध्यान में रखकर देश के नेताओं ने भारतीय संविधान में यह घोषित किया है कि १४ वर्ष तक की आयु के बालकों तथा बालिकाओं के लिये प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य तथा निःशुल्क होगी।[1] आयु की इस अवधि में शिक्षा से लाभ उठाकर भारत के भावी नागरिक अपने कर्त्तव्यों के प्रति जागरूक हो सकेंगे और परिवर्तित सामाजिक आर्थिक-व्यवस्था में अपना उचित स्थान ग्रहण कर सकेंगे। प्राथमिक शिक्षा का रूप बेसिक शिक्षा होगी जिसमें प्रत्येक छात्र को एक आधारभूत शिल्प का प्रशिक्षण दिया जायगा। इससे यह लाभ होगा कि छात्र बड़ा होकर, यदि वह चाहेगा, तो उस शिल्प में अधिक दक्षता प्राप्त करके अपना जीवन-यापन कर सकेगा। इससे समाज में बेकारी भी नहीं फैलेगी और छात्र एक नवयुवक के रूप में अपने को आर्थिक व्यवस्था के लिये उपयुक्त पायेगा।

**माध्यमिक शिक्षा**—माध्यमिक शिक्षा का रूपान्तर करके उसे देश की सामाजिक तथा आर्थिक आवश्यकताओं के अनुकूल बनाये जाने का प्रयास प्रारम्भ कर दिया गया है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये सरकार ने 'माध्यमिक शिक्षा-आयोग' द्वारा पाठ्य-क्रम के विभिन्नीकरण (Diversification of Courses) और बहुउद्देशीय विद्यालयों, (Multipurpose Schools) की स्थापना के प्रस्तावों को स्वीकार करके कार्यान्वित कर दिया है। इन विद्यालयों में छात्रों को अपनी अभिरुचियों तथा अभिनतियों के अनुकूल विषयों के चयन का अवसर प्राप्त होगा। इसके अतिरिक्त उन्हें अपने हाथ, मस्तिष्क, हृदय तथा शरीर के उचित उपयोग को शिक्षा का अवसर सुलभ होगा। फलतः उनका सर्वांगीण विकास होगा, जिससे वे नवीन समाज के लिये उपयोगी सिद्ध होंगे।

---

1. Article 45 of the Constitution Adopted by Free India on January 26, 1950.

के आदर्शों तथा सामाजिक और आर्थिक सम्बन्धों का गठन ऐसा होना चाहिये कि वे केवल राष्ट्रीय आय और नियोजन मे ही वृद्धि नहीं, अपितु आय और धन की अधिकाधिक समानता लाने में भी सहायक हों। उत्पादन, वितरण, खपत और पूँजी-विनियोग सम्बन्धी मुख्य निर्णय और वस्तुतः सभी सामाजिक और आर्थिक प्रश्नों के निर्णय—ऐसी संस्थाओं द्वारा किये जाने चाहिये जो सामाजिक उद्देश्यों की भावना से अनुप्रेरित हो। आर्थिक विकास के लाभ समाज के उन वर्गों को अधिकाधिक पहुँचने चाहिये जो कि अपेक्षाकृत कम सम्पन्न है और आय, धन तथा आर्थिक सत्ता का केन्द्रीकरण क्रमशः कम होता जाय। सब मिलाकर समस्या ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर देने की है कि उसमें वे व्यक्ति भी अपने जीवन का मान ऊँचा उठाने और देश की समृद्धि में अधिक भाग लेने मे समर्थ हो जायें जो कि अब तक संगठित प्रयत्नों के द्वारा की हुई उन्नति में बहुत कम भागीदार बन सके हैं और वैसा करने की कल्पना तक नहीं कर सके है। इस प्रक्रिया मे इस वर्ग के लोगों की आर्थिक और सामाजिक स्थिति ऊँची हो जायगी।

उपरोक्त आर्थिक तथा सामाजिक परिवर्तन लाने के लिये पंचवर्षीय योजनाओं को कार्यान्वित किया गया है। इनमे आर्थिक नियोजन (Economic Planning) को प्रमुख स्थान प्रदान किया गया है। इन योजनाओं के सामाजिक उपलक्षण (Social Implications) अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं क्योंकि वे भारतीय समाज में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर देंगे। इन योजनाओं के अनुसार भारत के संविधान मे बताये गये राज्य-नीति के निर्देशक सिद्धान्तों (Directive Principles of State Policy) का अनुसरण किया जायगा जिससे भारत में कल्याणकारी राज्य (Welfare State) की स्थापना होगी। इस राज्य मे ऐसी सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था होगी जो स्वतन्त्रता और लोकतान्त्रिक मूल्यों पर आधारित होगी, जिसमे जाति, वर्ग तथा मर्यादागत भेदभाव नहीं होगा और रोजी-रोजगार एवं उत्पादन में बहुत अधिक वृद्धि होगी तथा अधिक से अधिक सामाजिक न्याय (Social Justice) उपलब्ध होगा।

भारत में उपरिवर्णित सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तन लाने के लिये सरकार पूर्णरूपेण संलग्न है। परन्तु इस विशाल कार्य का सम्पन्न करने के उत्तरदायित्व को सरकार तभी पूर्ण कर सकेगी, जब उसे जनता का हार्दिक सहयोग प्राप्त होगा और यह तभी सम्भव होगा जब शिक्षा के द्वारा जन जन का दृष्टिकोण परिवर्तित कर दिया जायगा। इसी उद्देश्य से स्वतन्त्र भारत में शिक्षा का पुनर्गठन किया जा रहा है और उसे सामाजिक तथा आर्थिक मूल्यों, उद्देश्यों, आवश्यकताओं तथा परिवर्तनों के अनुकूल बनाया जा रहा है। इस

की ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। इसी उद्देश्य से चिकित्सा-शिक्षा की संस्थाओं की संख्या में वृद्धि की जारही है। १९५६ में मेडिकल कॉलेजों की संख्या ३० थी, जो १९६१ में ५५ हो जायगी। इसके अतिरिक्त देशी चिकित्सा प्रणालियों में प्रशिक्षण देने का भी कार्यक्रम सरकार ने कार्यान्वित कर दिया है। इसके लिए द्वितीय योजना में ६ करोड़ रुपये रखे गये थे और तृतीय योजना में अस्थायी रूप से ८ करोड़ रखे गये हैं।

**ग्रामीण उच्च-शिक्षा**—भारत ग्रामों का देश है। १९५१ की जनगणना के अनुसार इस देश की ८३ प्रतिशत जनता ग्रामों में निवास करती है। ब्रिटिश शासन-काल में इस विशाल ग्रामीण जन-समुदाय की उच्च शिक्षा की अवहेलना की गई थी। स्वतन्त्र भारत के नव-निर्माण के लिये ग्रामीणों के लिए उच्च शिक्षा की व्यवस्था को अनिवार्य माना गया है। यह स्वीकार किया गया है कि यदि ग्रामवासियों को उच्च शिक्षा का अवसर नहीं प्राप्त होगा, तो उनका सामाजिक तथा आर्थिक उत्थान नहीं हो सकेगा और वे समाज की नवीन व्यवस्था में अपना उचित स्थान ग्रहण नहीं कर सकेंगे। इसी विचार से प्रेरित होकर 'विश्वविद्यालय शिक्षा-आयोग' ( University Education Commission ) ने ग्रामीण विश्वविद्यालयों और उनसे सम्बद्ध स्नातक पूर्व कॉलेजों की स्थापना का सुझाव सरकार के समक्ष रखा।[1] सरकार ने आयोग के सुझाव को मान्यता प्रदान की है और 'रूरल इंस्टीट्यूट्स' ( Rural Institutes) की स्थापना कर रही है।

**स्त्री-शिक्षा**—भारतीय संविधान में लिंग के कारण व्यक्तियों से किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं किया गया है। स्वतन्त्र भारत में स्त्रियों को पुरुषों के समान सभी अधिकार प्रदान किये गये हैं। देश के सामाजिक तथा आर्थिक उत्थान में स्त्रियों के स्थान को महत्वपूर्ण माना गया है। अतः शताब्दियों से पददलित तथा शिक्षा से वंचित नारी के लिये सभी शिक्षा-संस्थाओं के द्वार खोल दिये गये हैं। इतना ही नहीं, उनको शिक्षा प्राप्त करने की विशेष सुविधायें प्रदान की जा रही हैं। वस्तुतः इस कार्य में राष्ट्रीय नेता राष्ट्रपिता महात्मा गांधी द्वारा प्रदर्शित पथ पर अग्रसर हो रहे हैं। गांधी जी का कथन था : "जहाँ तक स्त्रियों की शिक्षा का प्रश्न है, मैं इस बात में निश्चित नहीं हूँ कि क्या उनकी शिक्षा मनुष्यों की शिक्षा से भिन्न होना चाहिये और इसे कब प्रारम्भ होना चाहिये। परन्तु मेरा यह दृढ़ विचार है कि स्त्रियों को शिक्षा की वे ही सुविधायें प्राप्त होनी चाहिये, जो मनुष्यों को प्राप्त हैं और जहाँ

1. *Report of University Education Commission*, p. 575.

वद्यालय शिक्षा—विश्वविद्यालय शिक्षा को समाज के समाजवादी
युक्त बनाने की चेष्टा प्रारम्भ करदी गई है। इस उद्देश्य से
शिक्षा' (General Education) की दो योजनायें तैयार की गई
मुख्य योजना में प्राकृतिक विज्ञान, सामाजिक विज्ञान आदि से
मूल विषयों के अध्ययन की 'सामान्य शिक्षा' सभी स्नातक-पूर्व
graduates), गैर व्यावसायिक (Non-Professional) सकायों के
निवार्य होगी। वैकल्पिक योजना में डिग्री पाठ्य-क्रम के प्रथम तथा
वर्षों में 'सामान्य शिक्षा' के लिये सप्ताह में ६ घन्टों (Period) के
पन की व्यवस्था की जायगी। इसके अतिरिक्त विश्वविद्यालयों में विज्ञान
क्षा की सुविधाओं का विस्तार किया जा रहा है। यह इसलिये किया
रहा है जिससे कि भारत की नवीन आर्थिक व्यवस्था में, जिसमें उद्योगों का
ल्य होगा, कार्यकर्ताओं को सरलता पूर्वक प्राप्त किया जा सके। "लक्ष्य
रखा गया है कि इस ( तीसरी ) योजना के अन्त तक विज्ञान के विद्या-
र्थियों का अनुपात लगभग ४० प्रतिशत हो जाय। विद्यालयों में विज्ञान के
क्षकों, इंजीनियरी तथा अन्य तकनीकी संस्थाओं में विद्यार्थियों और उद्योगों
कार्यकर्ताओं आदि की बढ़ती हुई मांग पूरी करने के लिये ऐसा करना
अत्यन्त आवश्यक है।"[1]

प्राविधिक शिक्षा[2]—भारत की अर्थ-नीति के अन्तर्गत देश का औद्योगी-
करण अति तीव्र गति से किया जा रहा है। नवीन उद्योगों के लिये प्राविधिक
शिक्षा प्राप्त कर्मचारियों की निरन्तर अधिकाधिक संख्या में आवश्यकता होगी।
अतः सरकार ने प्राविधिक शिक्षा के प्रति उदार नीति अपनाई है। फलस्वरूप
द्वितीय योजना की अवधि में इंजीनियरी के कालेजों की संख्या ६५ से बढ़कर ९७
और उनमें प्रविष्ट किये जा सकने वालों की संख्या ५,८८८ से बढ़कर १३,१६५
हो गई है। पोलिटेक्नीकों की संख्या ११४ से बढ़कर १९७ और प्रति वर्ष
प्रविष्ट किये जा सकने वालों की संख्या १०,४८४ से बढ़कर २४,०२० हो गई
है। उद्योगों के विकास के कारण तीसरी योजना के समय ४५,००० स्नातक
और ८०,००० डिप्लोमाधारियों की आवश्यकता पड़ने की सम्भावना है। यह
सब पूरी हो जायगी।[3]

चिकित्सा-शिक्षा—'समाज के समाजवादी ढांचे' में नागरिकों के स्वास्थ्य

---

१. तीसरी पंचवर्षीय योजना : प्रारम्भिक रूप-रेखा, पृष्ठ १०१
2. Technical Education.
३. तीसरी पंचवर्षीय योजना : प्रारम्भिक रूप-रेखा, पृष्ठ १०२

समस्या को हल करने के लिये अंग्रेजी का अध्ययन प्रारम्भ किया। १६ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में कांग्रेस, आर्य-समाज, ब्रह्म-समाज एवं प्रार्थना-समाज ने सामाजिक सुधार किये। इस काल में भारत की आर्थिक दशा में सुधार हुआ। इन सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तनों के फलस्वरूप शिक्षा का तीव्र गति से प्रसार हुआ। सरकार ने गैर-सरकारी स्कूलों को आर्थिक सहायता दी। प्राथमिक शिक्षा का भार स्थानीय संस्थाओं को सौंप दिया गया। माध्यमिक विद्यालयों में औद्योगिक पाठ्य-क्रम प्रारम्भ किया गया। स्त्रियों तथा हरिजनों की सामाजिक स्थिति में परिवर्तन होने के कारण उनकी शिक्षा की माँग में वृद्धि हुई। २० शताब्दी के पूर्वार्द्ध में 'सर्वेन्ट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी', 'सोशल-सर्विस लीग' आदि की स्थापना के कारण सामाजिक सुधार में तीव्रता आ गई। महिला संगठनों ने शिक्षा की माँग की। सवर्ण हिन्दुओं में जागृति हुई। इस काल में आर्थिक अभ्युत्थान भी हुआ। विश्व-युद्धों के कारण बाहर से माल आना बन्द हो गया। फलतः देश में अनेकों उद्योग स्थापित हुए। उनमें कार्य करने वालों की आर्थिक दशा में सुधार हुआ। इन सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों के कारण भारतीयों ने शिक्षा-अधिकार की माँग की। गोखले ने प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने का विधेयक केन्द्रीय धारा-सभा में प्रस्तुत किया। हर्टाग समिति ने प्राथमिक शिक्षा को अधिक लाभप्रद बनाने के लिये अपव्यय तथा अवरोधन को समाप्त करने के लिये सुझाव दिये। माध्यमिक विद्यालयों की संख्या में वृद्धि हुई। टेकनिकल और कृषि हाई स्कूल खोले गये। व्यावसायिक शिक्षा की माँग की गई। प्राविधिक शिक्षा का आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। स्त्री-शिक्षा की विशेष प्रगति हुई। हरिजनों की शिक्षा-सम्बन्धी माँगें पूर्ण हुईं। प्रौढ़ शिक्षा का कार्य-क्रम प्रारम्भ किया गया।

**स्वतन्त्र भारत में सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन**—स्वतंत्र भारत को सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य का रूप दिया गया है। देश एक धर्म-निरपेक्ष राज्य होगा। नागरिकों में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं होगा। भारत की अर्थनीति का सामान्य उद्देश्य 'समाजवादी आदर्श के समाज' की रचना है। आर्थिक विकास के लाभ समाज के उन वर्गों के अधिकाधिक पहुँचाये जायेंगे जो अपेक्षाकृत कम सम्पन्न हैं। देश के नव निर्माण के लिये पंचवर्षीय योजनायें कार्यान्वित की गई हैं। भारत की भावी सामाजिक तथा आर्थिक रचना भविष्य में पूर्णतः समाजवादी ढंग की हो जायगी। समाज के इसी रूप के अनुसार शिक्षा को निरन्तर परिवर्तित किया जा रहा है।

**स्वतंत्र भारत में शिक्षा पर सामाजिक-आर्थिक संघात**—देश के सामाजिक

आवश्यक हो, वहाँ उनको शिक्षा की विशेष सुविधायें प्रदान की जायें।[1]

शिक्षा के अन्य कार्य-क्रम—नव-भारत की सामाजिक तथा आर्थि आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए शिक्षा के अन्य कार्य-क्रमों का भी आयो जन किया गया है। इनके अन्तर्गत हैं :—अनुसूचित जातियों, अनुसूचि आदिम जातियों तथा पिछड़े वर्गों की शिक्षा; विकलांगों की शिक्षा (Educatio of the Handicapped ); संगीत, नृत्य, ललित कलाओं एवं प्रौढ़ शिक्षा।

## सारांश

सामाजिक परिवर्तनों का शिक्षा पर प्रभाव—समाज की आर्थिक एव की नींव पर समाज की अधिरचना खड़ी होती है। शिक्षा का कार्य अधिरचना को यथावत् बनाये रखना है। इस शिक्षा का रूप वही होता जिसकी माँग समाज द्वारा की जाती है। हिटलर और मुसोलिनी ने सामाजि परिवर्तनों के अनुकूल शिक्षा का रूपान्तर किया और शिक्षा की सहायता समाज के रूप को परिवर्तित किया।

आर्थिक परिवर्तनों का शिक्षा पर प्रभाव—समाज की आर्थिक प्रगति साथ-साथ शिक्षा की प्रगति और उसका रूपान्तर होता है। इंगलैंड औद्योगिक क्रान्ति के कारण जो आर्थिक परिवर्तन हुए, उनका प्रभाव शि पर पड़ा। रूस की क्रान्ति ने उस देश की आर्थिक व्यवस्था को पूर्णतः परिवर्त कर दिया। साम्यवादी सरकार ने रूस के सभी बालकों तथा बालिकाओं लिये शिक्षा को सुलभ बनाने का अभिनन्दनीय प्रयास किया है।

ब्रिटिश शासन-काल में शिक्षा पर सामाजिक-आर्थिक प्रभाव—१९ शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारत में सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन हुए, जिन प्रभाव शिक्षा पर पड़ा। मिशनरियों द्वारा स्थापित की गई शिक्षा संस्था का [illegible] देशी शिक्षा-संस्थाओं के लिये था। धनाभाव के कारण देशी शिक्ष संस्थाओं का ह्रास होता चला गया। धन-हीन जनता ने औद्योगिक [illegible]

---

1. "As for women's education I am not sure whether it should be different from men's and when it should begin. But I am strongly of opinion that women should have the same facilities as men and even special facilities where necessary."—M. K. Gandhi

S.I.

3. "The first half of the twentieth century was marked by uncommon socio-economic changes." What effect did these changes produce on education ?

4. Discuss briefly the socio-economic impact upon the major aspects of education in free India.

तथा आर्थिक परिवर्तनों को ध्यान में रखकर प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाया गया है, उसे बेसिक शिक्षा का रूप दिया है और उसमे प्रत्येक छात्र के लिये एक शिल्प का अध्ययन आवश्यक कर दिया गया है। माध्यमिक विद्यालयों के लिये पाठ्यक्रम का विभिन्नीकरण किया गया है और उसके अध्यापन की व्यवस्था बहुउद्देशीय विद्यालयों मे की गई है। विश्वविद्यालय की शिक्षा में 'सामान्य शिक्षा' की व्यवस्था की गई है और विज्ञान के शिक्षण के लिये विशेष आयोजन किया जा रहा है। उद्योगो मे कार्यकर्त्ताओं को पूर्ति करने के लिये प्राविधिक शिक्षा को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। ग्रामीणों के बौद्धिक विकास के लिये उच्च शिक्षा के 'रूरल इंस्टाट्यूट्स' स्थापित किये जा रहे हैं। स्त्रियों को शिक्षा को विशेष सुविधायें दी जा रही हैं।

## सहायक पुस्तकों की सूची


1. J. A. R. Marriott : *England Since Waterloo.*
2. Herbert Spencer : *Social Statics.*
3. Majumdar, Raychaudhri and Datta : *An Advanced History of India.*
4. M. K. Gandhi : *India of My Dreams.*
5. *Report of the University Education Commission.*
६. सत्यकेतु विद्यालंकार : यूरोप का आधुनिक इतिहास
७. बी० एन० लूनिया : भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का इतिहास
८. अमरनाथ अग्रवाल : भारत की आर्थिक समस्यायें
९. के० एम० पणिक्कर : भारतीय इतिहास का सर्वेक्षण
१०. अमर नन्दी : भारत का संविधान
११. द्वितीय पंचवर्षीय योजना
१२. तीसरी पंचवर्षीय योजना : प्रारम्भिक रूपरेखा


### *TEST QUESTIONS*

1. How do socio-economic changes affect education ? Support your answer by giving concrete example from history.
2. Write a short essay on : "The socio-economic impact upon education during the Br

में राजनैतिक शक्ति का हस्तक्षेप प्रारम्भ हुआ। सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जर्मनी के दो राज्यों—वरटमबर्ग ( Wurtemburg ) और सेक्सनी (Saxony) ने शिक्षा को अपने राजनैतिक अधिकार के अन्तर्गत ले लिया और शिक्षा की व्यवस्था को रूपान्तरित करके उसको नया जामा पहिनाया। अठारहवीं शताब्दी में हैनोवर (Hanover) के शासक जार्ज द्वितीय (George II) और प्रशा (Prussia) के शासक फ्रेडेरिक महान् (Frederick the Great) ने वरटमबर्ग तथा सेक्सनी का अनुकरण करके शिक्षा के रूप को परिवर्तित किया[1]। फ्रांस में राज्यक्रान्ति (Revolution) के समय तक प्राथमिक शिक्षा का कोई अस्तित्व नहीं था और उच्च-शिक्षा संस्थाओं पर अधिकार स्थापित करने के लिये चर्च और सरकार में संघर्ष चल रहा था। क्रान्तिकारियों ने प्राचीन सामाजिक व्यवस्था का अन्त करके समाज का पुनः गठन किया और राजसत्ता की दाह-क्रिया करके 'गणतंत्र' की स्थापना की।[2] इस राजनैतिक उथल-पुथल का शिक्षा पर अति व्यापक प्रभाव पड़ा। उसको पूर्णतया राज्य के अधीन करके उसका कायाकल्प किया गया। नेपोलियन ने 'गणतन्त्र' को उखाड़ फेंका और फ्रांस में राजसत्ता की पुनः दृढ़ स्थापना करने के लिये शिक्षा-व्यवस्था पर अपना एक मात्र अधिकार स्थापित किया और आदेश दिया कि सभी शिक्षालयों में राजभक्ति की शिक्षा प्रदान की जाय[3]। इतिहास में ऐसे उदाहरणों का अभाव नहीं है, जो यह प्रमाणित करते हैं कि शिक्षा पर राजनैतिक संघात होता है। जहाँ तक भारत का सम्बन्ध है, उसे भी अपवाद नहीं कहा जा सकता है। यहाँ भी शिक्षा पर राजनैतिक संघात हुआ है और हो रहा है और समय-समय पर होने वाले राजनैतिक परिवर्तनों ने शिक्षा के रूप एवं उसकी व्यवस्था में अन्तर उत्पन्न किया है। यह किस प्रकार हुआ है, इस पर हम नीचे विहंगम दृष्टि डाल रहे हैं।

## ब्रिटिश शासन-काल में शिक्षा पर राजनैतिक संघात

अंग्रेज किस प्रकार यहाँ तुला लेकर आये, उन्होंने किस प्रकार यहाँ कार-

---

1. T. Raymont : *The Principles of Education*, p. 44.
२. महाजन, गहराना और सेठी : आधुनिक शासन विधान, पृष्ठ ७१२
3. "All these schools were directed to take as the bases of their teaching of the ethical principles of Christianity, *Royalty to the head of the state*, and obedience to the statutes of university."—Carlton J. H. Hayes : *A Political and Cultural History of Modern Europe*, Vol. I, p. 655.

## अध्याय ९

# शिक्षा पर राजनैतिक संघात[1]

शिक्षा तथा समाज दोनों अविच्छिन्न रूप से परस्पर गुंथे हुए हैं। शिक्ष
समाज में ही फलती-फूलती है और समाज भी शिक्षा की छाया में अपने क
अधिक प्राणवान, सजग तथा सुसंस्कृत बनाता है। एक की प्रगति पर दूसरे की
प्रगति निर्भर है और एक की अवनति बहुत अंशों तक दूसरे के नाश क
कारण बन जाती है।

शिक्षा का रूप समाज के रूप का परिवर्तन कर सकता है। शिक्षा अपनी
व्यवस्था को रूपान्तरित करके एक ऐसी आर्थिक अथवा राजनीतिक व्यवस्था
का निर्माण कर सकती है, जो वर्तमान से पूर्णतः भिन्न हो। यदि कोई प्रभुत्व
सम्पन्न राज्य किसी विशिष्ट सामाजिक व्यवस्था की स्थापना करना चाहता है,
तो उसे शिक्षा का सहारा लेना पड़ता है। शिक्षा द्वारा रूपान्तरित किये हुए
समाज में स्थिरता होती है। यही कारण है कि सत्ताधारी राज्य अपनी राज-
नैतिक शक्ति का प्रयोग करके शिक्षा के रूप को परिवर्तित करते हैं। अनेकों
राज्यों और अनेकों राजनीतिक परिवर्तनों के समय ऐसा किया गया है। इस
सम्बन्ध में इतिहास से कितने ही उदाहरण दिये जा सकते हैं।

मध्य-युग में योरुप के देशों में शिक्षा की व्यवस्था चर्च द्वारा की जाती
थी। चर्च ही शिक्षकों की नियुक्ति करता था, विद्यालयों का व्यय-भार वहन
करता था, और शिक्षा के उद्देश्यों तथा आदर्शों को निश्चित करता था। जब
योरुप में पुनः जागरण के कारण नवयुग का सूत्रपात हुआ, तो शिक्षा-व्यवस्था

---

1. Political Impact upon Education.

में अपनी राजनैतिक नीति के अन्तर्गत अंगरेजों ने क्रान्ति के उपरान्त जिस दमन चक्र का सहारा लिया, उसने भारतीयों के देश-प्रेम तथा राष्ट्रीय चेतना को बलवती बनाया और फलस्वरूप शिक्षा का भारतीयकरण हुआ।

### १८८२ से १६०५ तक

इस काल की प्रमुख घटना राष्ट्रीयता की भावना का प्रबल प्रवाह था। भारतीय अपने राजनैतिक अधिकारों के प्रति सजग होने लगे। वे शिक्षा के लाभों को समझ कर विदेशी सरकार से उसकी माँग करने लगे। राजनीति में पटु अंग्रेजों ने उनको भुलावा देने के लिये 'भारतीय शिक्षा-आयोग' ( Indian Education Commission) की नियुक्ति की, जिसने शिक्षा के सभी स्तरों को उन्नत करने के लिये विवेकपूर्ण सुझाव दिये। उनमें से भारत-सरकार ने उन्हीं को स्वीकृति प्रदान की जिनसे उनके राजनैतिक हित की पूर्ति होती थी। उदाहरणार्थ, आयोग का सुझाव था कि प्राथमिक शिक्षा को सरकार का संरक्षण प्रदान किया जाय और उसे स्थानीय संस्थाओं को हस्तान्तरित कर दिया जाय। सरकार ने केवल द्वितीय सुझाव को ही स्वीकार किया क्योंकि उसने प्राथमिक शिक्षा का भार स्थानीय संस्थाओं को सौंप कर उससे अपना पीछा छुड़ाया। इस प्रकार सरकार ने प्राथमिक शिक्षा पर व्यय किये जाने वाले धन की बचत करके, उसे अपनी राजसत्ता को दृढ़ करने में व्यय किया। आयोग द्वारा 'सहायता-अनुदान' सम्बन्धी जो सुझाव दिये गये, उनको सरकार ने स्वीकार करके माध्यमिक विद्यालयों के लिये कार्यान्वित किया। ऐसा करते समय सरकार ने अपने राजनैतिक हित का ध्यान रखा। उसे अंग्रेजी शिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकता थी और उन्हें माध्यमिक शिक्षा को प्रोत्साहित करके ही उपलब्ध किया जा सकता था। परन्तु इसका एक परिणाम और निकला। ग़ैर-सरकारी स्कूलों को आर्थिक सहायता मिलने से भारतीयों द्वारा व्यक्तिगत विद्यालयों का निर्माण किया गया और माध्यमिक शिक्षा तीव्र गति से प्रवाहित होने लगी। सरकार द्वारा अपने राजनैतिक उद्देश्यों के पूर्ति के लिये माध्यमिक शिक्षा का जो प्रसार किया गया, उसका प्रभाव उच्च शिक्षा पर भी पड़ा। उसका भी निरन्तर विस्तार होता गया। परन्तु अंग्रेजों ने माध्यमिक शिक्षा के समान उसको भी पुस्तकीय ज्ञान प्राप्त करने का आधार रखा। अंग्रेज तो केवल अपने राज्य-संचालन में उच्च शिक्षा-प्राप्त भारतीयों को चाहते थे। उन्हें इस बात से क्या प्रयोजन था कि शिक्षा का रूप ऐसा हो, जिससे वह व्यक्तियों को समाज का लाभप्रद सदस्य बना सके।

इस समय तक अंग्रेजी सरकार को यह पूर्णतया विदित हो गया था कि भारत पर अपना शासन स्थापित रखने के लिये, उन्हें मुसलमानों से अधिक

अध्याय ६

# शिक्षा पर राजनैतिक संघात[1]

शिक्षा तथा समाज दोनों अविच्छिन्न रूप से परस्पर गुंथे समाज मे ही फलती-फूलती है और समाज भी शिक्षा की छाप अधिक प्राणवान, सजग तथा सुसंस्कृत बनाता है। एक की प्रग प्रगति निर्भर है और एक की अवनति बहुत अंशो तक दूस कारण बन जाती है।

शिक्षा का रूप समाज के रूप का परिवर्तन कर सकता है। व्यवस्था को रूपान्तरित करके एक ऐसी आर्थिक अथवा राजनी का निर्माण कर सकती है, जो वर्तमान से पूर्णत: भिन्न हो। यदि सम्पन्न राज्य किसी विशिष्ट सामाजिक व्यवस्था की स्थापना कर तो उसे शिक्षा का सहारा लेना पड़ता है। शिक्षा द्वारा रूपान्त समाज में स्थिरता होती है। यही कारण है कि सत्ताधारी राज्य नैतिक शक्ति का प्रयोग करके शिक्षा के रूप को परिवर्तित करते राज्यों और अनेकों राजनीतिक परिवर्तनों के समय ऐसा किया ग सम्बन्ध में इतिहास से कितने ही उदाहरण दिये जा सकते हैं।

मध्य-युग में योरप के देशों में शिक्षा की व्यवस्था चर्च द्वारा थी। चर्च ही शिक्षकों की नियुक्ति करता था, विद्यालयों का व्यय करता था, और शिक्षा के उद्देश्यों तथा आदर्शों को निश्चित करता योरप में पुन: जागरण के कारण नवयुग का सूत्रपात हुआ, तो शिक्ष

1. Political Impact upon Education.

में अपनी राजनैतिक नीति के अन्तर्गत अंगरेजों ने क्रान्ति के उपरान्त जिस दमन-चक्र का सहारा लिया, उसने भारतीयों के देश-प्रेम तथा राष्ट्रीय चेतना को बलवती बनाया और फलस्वरूप शिक्षा का भारतीयकरण हुआ।

## १८८२ से १९०५ तक

इस काल की प्रमुख घटना राष्ट्रीयता की भावना का प्रबल प्रवाह था। भारतीय अपने राजनैतिक अधिकारों के प्रति सजग होने लगे। वे शिक्षा के लाभों को समझ कर विदेशी सरकार से उसकी माँग करने लगे। राजनीति में पटु अंग्रेजों ने उनको भुलावा देने के लिये 'भारतीय शिक्षा-आयोग' ( Indian Education Commission) की नियुक्ति की, जिसने शिक्षा के सभी स्तरों को उन्नत करने के लिये विवेकपूर्ण सुझाव दिये। उनमें से भारत-सरकार ने उन्हीं को स्वीकृति प्रदान की जिससे उनके राजनैतिक हित की पूर्ति होती थी। उदाहरणार्थ, आयोग का सुझाव था कि प्राथमिक शिक्षा को सरकार का संरक्षण प्रदान किया जाय और उसे स्थानीय संस्थाओं को हस्तान्तरित कर दिया जाय। सरकार ने केवल द्वितीय सुझाव को ही स्वीकार किया क्योंकि उसने प्राथमिक शिक्षा का भार स्थानीय संस्थाओं को सौंप कर उससे अपना पीछा छुड़ाया। इस प्रकार सरकार ने प्राथमिक शिक्षा पर व्यय किये जाने वाले धन की बचत करके, उसे अपनी राजसत्ता को दृढ़ करने में व्यय किया। आयोग द्वारा 'सहायता-अनुदान' सम्बन्धी जो सुझाव दिये गये, उनको सरकार ने स्वीकार करके माध्यमिक विद्यालयों के लिये कार्यान्वित किया। ऐसा करते समय सरकार ने अपने राजनैतिक हित का ध्यान रखा। उसे अंग्रेजी शिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकता थी और उन्हें माध्यमिक शिक्षा को प्रोत्साहित करके ही उपलब्ध किया जा सकता था। परन्तु इसका एक परिणाम और निकला। गैर-सरकारी स्कूलों को आर्थिक सहायता मिलने से भारतीयों द्वारा व्यक्तिगत विद्यालयों का निर्माण किया गया और माध्यमिक शिक्षा तीव्र गति से प्रवाहित होने लगी। सरकार द्वारा अपने राजनैतिक उद्देश्यों के पूर्ति के लिये माध्यमिक शिक्षा का जो प्रसार किया गया, उसका प्रभाव उच्च शिक्षा पर भी पड़ा। उसका भी निरन्तर विस्तार होता गया। परन्तु अंग्रेजों ने माध्यमिक शिक्षा के समान उसको भी पुस्तकीय ज्ञान प्राप्त करने का आधार रखा। अंग्रेज तो केवल अपने राज्य-संचालन में उच्च शिक्षा-प्राप्त भारतीयों को चाहते थे। उन्हें इस बात से क्या प्रयोजन था कि शिक्षा का रूप ऐसा हो, जिससे वह व्यक्तियों को समाज का लाभप्रद सदस्य बना सके।

इस समय तक अंग्रेजी सरकार को यह पूर्णतया विदित हो गया था कि भारत पर अपना शासन स्थापित रखने के लिये, उन्हें मुसलमानों से अधिक

...प्रति रत्तमात्र भी ध्यान नहीं दिया गया। शिक्षा प्राप्त करके उच्च ...नेको व्यक्ति ब्रिटिश राज्य के स्तम्भ के रूप में अपने देशवासियों के ...आन्दोलन के प्रबल विरोधी हो गये।

...मार्च १८३५ के प्रस्ताव द्वारा सरकारी निर्णय प्रकाशित किया गया : ...सरकार का महान् उद्देश्य भारतवासियों में यूरोपीय साहित्य और ...का प्रसार करना होना चाहिये और शिक्षा के लिये जो निधि हैं, उनका ...उपयोग अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रसार में ही होगा।"[1] इस प्रकार अपनी ...तिक आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिये कम्पनी के शासकों ने अंग्रेज़ी ...त्साहन देकर देशी शिक्षा का गला घोटने में कोई कसर न उठा रखी। ...द्देश्य की पूर्ति करने के लिये १८४४ में लार्ड हार्डिंज (Hardinge) ने ...णा की कि अंग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों को सरकारी नौकरियों में प्राथ... ...ता दी जायगी। इसका प्रत्यक्ष फल यह हुआ कि अंग्रेज़ी की दिन दूनी, ...चौगुनी उन्नति होने लगी और शिक्षा का चरम लक्ष्य नौकरी करना ...जाने लगा। अंग्रेज़ों का पूर्ण आधिपत्य स्थापित करने के लिये अंग्रेज़ी ...शिक्षा का माध्यम बना दिया गया। इसने भी प्राच्य शिक्षा के ह्रास में ...दिया। अंग्रेज़ों का राजनैतिक हित इसी बात में था कि भारतीय अपनी ...वीन शिक्षा से अनभिज्ञ रहकर अपनी संस्कृति का विस्मृत कर दें और अंग्रेज़ी ...अध्ययन करके पाश्चात्य सभ्यता तथा संस्कृति के उपासक बन जायें।

**...८५३ से १८८२ तक**

१८५७ की क्रान्ति ने अंग्रेज़ शासकों की आँखें खोल दीं और वे इस ...निष्कर्ष पर पहुँचे कि भारत में अपनी राजनैतिक सत्ता बनाये रखने के लिये ...मिशनरियों के धर्म-प्रचार के कार्य पर अंकुश लगाना आवश्यक है। उन्होंने ...किया भी ऐसा ही। परिणाम यह हुआ कि भारतीयों को व्यक्तिगत रूप से ...शिक्षा-प्रसार का कार्य करने के लिये विस्तृत क्षेत्र मिल गया। क्रान्ति के उप... ...रान्त अंग्रेज़ों द्वारा भारतीयों पर जो अत्याचार किये गये, उन्होंने यहाँ के ...निवासियों के हृदयों में विदेशी शासकों के प्रति घृणा की भावनायें भर दीं। देश... ...प्रेम की भावना जो पहिले ही आविर्भूत हो चुकी थी, अब एक प्रबल लहर के ...रूप में सम्पूर्ण देश में फैल गई। राष्ट्रीय चेतना का निश्चय रूप से विकास ...होने लगा। फलस्वरूप समस्त देश में सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक ...क्षेत्रों में क्रान्तिकारी परिवर्तन करने के लिये भारतीय कटिबद्ध हो गये। इस ...उद्देश्य की प्राप्ति के लिये वे शिक्षा-प्रसार के कार्य में जुट गये। सारांश

1. V. A. Smith : *Oxford History of India*, p. 670.

*में अपनी राजनैतिक नीति के अन्तर्गत अंगरेजों ने क्रान्ति के उपरान्त जिस* दमन चक्र का सहारा लिया, उसने भारतीयों के देश-प्रेम तथा राष्ट्रीय चेतना को बलवती बनाया और फलस्वरूप शिक्षा का भारतीयकरण हुआ।

**१८८२ से १९०५ तक**

इस काल की प्रमुख घटना राष्ट्रीयता की भावना का प्रबल प्रवाह था। भारतीय अपने राजनैतिक अधिकारों के प्रति सजग होने लगे। वे शिक्षा के लाभों को समझ कर विदेशी सरकार से उसकी माँग करने लगे। राजनीति मे पटु अंग्रेजों ने उनको भुलावा देने के लिये 'भारतीय शिक्षा-आयोग' ( Indian Education Commission) की नियुक्ति की, जिसने शिक्षा के सभी स्तरों को उन्नत करने के लिये विवेकपूर्ण सुझाव दिये। उनमें से भारत-सरकार ने उन्ही को स्वीकृति प्रदान की जिनसे उनके राजनैतिक हित की पूर्ति होती थी। उदाहरणार्थ, आयोग का सुझाव था कि प्राथमिक शिक्षा को सरकार का संरक्षण प्रदान किया जाय और उसे स्थानीय संस्थाओं को हस्तान्तरित कर दिया जाय। सरकार ने केवल द्वितीय सुझाव को ही स्वीकार किया क्योंकि उसने *प्राथमिक शिक्षा का भार स्थानीय संस्थाओं को सौंप कर उससे अपना पीछा* छुड़ाया। इस प्रकार सरकार ने प्राथमिक शिक्षा पर व्यय किये जाने वाले धन की बचत करके, उसे अपनी राजसत्ता को दृढ़ करने में व्यय किया। आयोग द्वारा 'सहायता-अनुदान' सम्बन्धी जो सुझाव दिये गये, उनको सरकार ने स्वीकार करके माध्यमिक विद्यालयों के लिये कार्यान्वित किया। ऐसा करते समय सरकार ने अपने राजनैतिक हित का ध्यान रखा। उसे अंग्रेजी शिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकता थी और उन्हें माध्यमिक शिक्षा को प्रोत्साहित करके ही उपलब्ध किया जा सकता था। परन्तु इसका एक परिणाम और निकला। ग़ैर-सरकारी स्कूलों को आर्थिक सहायता मिलने से भारतीयों द्वारा व्यक्तिगत विद्यालयों का निर्माण किया गया और माध्यमिक शिक्षा तीव्र गति से प्रवाहित होने लगी। सरकार द्वारा अपने राजनैतिक उद्देश्यों के पूर्ति के लिये माध्यमिक शिक्षा का जो प्रसार किया गया, उसका प्रभाव उच्च शिक्षा पर भी पड़ा। उसका भी निरन्तर विस्तार होता गया। परन्तु अंग्रेजों ने माध्यमिक शिक्षा के समान उसको भी पुस्तकीय ज्ञान प्राप्त करने का आधार रखा। अंग्रेज तो केवल अपने राज्य-संचालन में उच्च शिक्षा-प्राप्त भारतीयों को चाहते थे। उन्हें *इस बात से क्या प्रयोजन था कि शिक्षा का रूप ऐसा हो, जिससे वह व्यक्तियों* को समाज का लाभप्रद सदस्य बना सके।

इस समय तक अंग्रेजी सरकार को यह पूर्णतया विदित हो गया था कि भारत पर अपना शासन स्थापित रखने के लिये, उन्हें मुसलमानों से अधिक

सहयोग प्राप्त हो सकता है। अतः उन्होंने 'फूट डालो और राज करो' (Divide and rule) राजनीति का प्रतिपादन किया। इसी उद्देश्य से उन्होंने मुसलमानों को शिक्षा की अधिक उत्तम सुविधायें दीं जिससे कि शिक्षित मुसलमान भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के दृढ़ स्तम्भ बन सकें। हिन्दुओं को अपनी इस राजनैतिक युक्ति से अनभिज्ञ रखने के लिये अंग्रेज शासकों ने घोषित किया कि मुसलमानों की शिक्षा को इसलिये प्रोत्साहन दिया जा रहा है, क्योंकि वह अत्यन्त पिछड़ी हुई दशा में है। भारत के विदेशी शासकों की इच्छा पूर्ण हुई। उन्होंने मुसलमानों को शिक्षित करके और इस प्रकार राजकीय पदों के लिये उन्हें हिन्दुओं का प्रतिद्वन्द्वी बनाकर अपने राजनैतिक उद्देश्य की प्राप्ति की। शिक्षित मुसलमानों ने अन्त समय तक विदेशी सरकार को हार्दिक सहयोग प्रदान किया और अन्त में भारत को दो खण्डों में विभक्त करवा दिया।

कूटनीतिज्ञ अंग्रेज यह बात भली-भांति जानते थे कि हरिजनों के प्रति सवर्ण हिन्दू घृणास्पद व्यवहार करते हैं। अतः उनका यह विचार उचित ही था कि हरिजनों को शिक्षा की सुविधायें प्रदान करके उन्हें भी मुसलमानों के समान ब्रिटिश शासन का समर्थक बनाया जा सकता है। इसी लक्ष्य को अपने समक्ष रखकर अंग्रेजों ने हरिजनों की शिक्षा की विशेष व्यवस्था की। परन्तु यहाँ उनकी राजनैतिक चाल को सफलता नहीं प्राप्त हुई। महात्मा गांधी के प्रयासों के कारण हरिजन हिन्दू समाज से पृथक् न हो सके।

१८९९ में लार्ड कर्जन (Curzon) वाइसराय होकर भारत आया। वह एक धुरंधर विद्वान और कुशल राजनीतिज्ञ था। उसने शिक्षा सम्बन्धी जिस राजनीति को अपनाया उससे भारतीय शिक्षा का परम कल्याण हुआ। उसने 'भारतीय विश्वविद्यालय आयोग' (Indian Universities Commission) की नियुक्ति करके उच्च शिक्षा का स्तर ऊँचा उठाया, माध्यमिक विद्यालयों में मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाकर भारतीय भाषाओं को पुनर्जीवित किया, प्राथमिक शिक्षा का विस्तार करके जन-साधारण को शिक्षित करना सरकार का स्पष्ट कर्त्तव्य बताया तथा देश की आवश्यकताओं को समझ कर कृषि, कला और स्त्रियों की शिक्षा को विशेष रूप से प्रोत्साहन दिया। शिक्षा-सुधार के जिस आन्दोलन का उसने सूत्रपात किया, उसकी गति में आज तीव्रता दृष्टिगोचर हो रही है। उसी की प्रेरणा के फलस्वरूप स्वतन्त्र भारत की शिक्षा में मातृभाषाओं के साथ-साथ पाश्चात्य विज्ञानों को समाविष्ट करके शिक्षा को संश्लिष्ट करने की अनेकानेक चेष्टायें की जा रही हैं।

### १९०५ से १९२१ तक

१८८५ में 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' की स्थापना हो चुकी थी। इस

प्रयासों के फलस्वरूप "भारत के राजनीतिक वातावरण में १८६६ से १६०४ तक निरुद्ध शान्ति रही। यह शान्ति आने वाले झंझावत की द्योतक थी। सन् १६०५ के अन्तिम महीनों में यह झंझावत फूट पड़ा और इसका प्रकोप सर्वत्र विशेष कर बंगाल में चार वर्ष तक रहा।"[1] इसका ब्रिटिश राजनीति पर गम्भीर प्रभाव पड़ा। शिक्षा भी उससे वंचित न रही।

१६०५ में बंगाल का विभाजन किया गया। यह सुनकर सम्पूर्ण बंगाल एक साथ उठ खड़ा हुआ और कांग्रेस ने राष्ट्रीय आन्दोलन प्रारम्भ करने का निश्चय किया। इस आन्दोलन के चार मुख्य अंग थे—स्वराज्य की प्राप्ति, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार, स्वदेशी वस्तुओं की मांग और राष्ट्रीय शिक्षा की मांग। यहाँ हमें केवल यह देखना है कि कांग्रेस के इस राजनैतिक आन्दोलन और उसके विरुद्ध अंग्रेजों द्वारा अपनाई गई प्रतिक्रियावादी राजनीति का शिक्षा पर क्या प्रभाव पड़ा।

कांग्रेस ने जो आन्दोलन प्रारम्भ किया वह बंगाल के स्कूलों और कॉलिजों के विद्यार्थियों में विशेष रूप से प्रिय हो गया। राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत उन्होंने विभाजन-विरोधी सभाओं का आयोजन किया। इस पर सरकार का दमन चक्र चला। "जिला मेजिस्ट्रेटों ने शिक्षण संस्थाओं के अध्यक्षों को यह आदेश दिया कि यदि किसी स्कूल के विद्यार्थियों ने आन्दोलन में भाग लिया तो उक्त स्कूल को सरकारी सहायता नहीं दी जायगी; उसके विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति के लिये प्रतिद्वन्द्विता करने का अधिकार नहीं होगा और विश्वविद्यालय द्वारा उनको अङ्गीकार नहीं किया जायगा।"[2] जब इस आदेश पर भी विद्यार्थी राजनीति से पृथक नहीं हुए, तब उनको विद्यालयों से निकाल दिये जाने की धमकी दी गई। छात्रों ने इसका उत्तर स्वयं ही विद्यालयों का बहिष्कार करके दिया। इन नवयुवकों की शिक्षा का प्रबन्ध करना राष्ट्रीय कर्त्तव्य समझा गया। अतः बंगाल में गुरुदास बनर्जी की अध्यक्षता में 'राष्ट्रीय शिक्षा-समिति' (Society for the promotion of National Education in Bengal) का संगठन किया गया। इस समिति ने राष्ट्रीय हाई स्कूलों और कलकत्ता के 'नेशनल कॉलिज' की स्थापना की। राष्ट्रीय शिक्षा का आन्दोलन टैगोर के 'ब्रह्मचर्य आश्रम' (अब विश्वभारती) और 'गुरुकुलों' के रूप में भी दृष्टिगोचर हुआ।

१६२० में कांग्रेस के नागपुर के अधिवेशन में महात्मा गांधी ने जनता से विभिन्न प्रान्तों में राष्ट्रीय स्कूलों और कालेजों को स्थापित करने की अपील

१. गुरुमुख निहालसिंह : भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास, पृष्ठ १७२

2. Nevinson : *The New Spirit in India*, p. 185.

की ।[1] फलस्वरूप अलीगढ़ विश्वविद्यालय के छात्रों ने अपने विश्वविद्यालय के राष्ट्रीयकरण की माँग की । जिन विद्यार्थियों ने इस आन्दोलन में भाग लेकर विश्वविद्यालय का बहिष्कार किया था, उनकी शिक्षा की व्यवस्था करने के लिये मौलाना मुहम्मदअली ने अलीगढ़ में 'जामिया मिलिया इस्लामिया' (जो अब दिल्ली में है) नामक विश्वविद्यालय स्थापित किया । इस काल में और भी राष्ट्रीय शिक्षालय स्थापित हुए, यथा—बिहार विद्यापीठ, काशी विद्यापीठ, बंगाल राष्ट्रीय विश्वविद्यालय, तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ, गुजरात विद्यापीठ आदि ।

राष्ट्रीय आन्दोलन ने अंग्रेजों की आँखें खोल दीं । उन्हें विश्वास हो गया कि तत्कालीन शिक्षा-प्रणाली और उसके उद्देश्यों में परिवर्तन करना आवश्यक है । फलस्वरूप १९१३ में 'शिक्षा-नीति सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव'(Government Resolution on Educational Policy) प्रकाशित किया गया जिसमें प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा की उन्नति तथा विस्तार की योजनायें प्रस्तुत की गईं । १९१७ में 'कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग' ( Calcutta University Commission ) की नियुक्ति की गई, जिसके परामर्श के फलस्वरूप १९१६ से १९२१ तक ७ नये विश्वविद्यालयों की स्थापना की गई ।

राष्ट्रीय शिक्षा के आन्दोलन से प्रभावित होकर प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने की दिशा में पग उठाया गया । सर्व प्रथम १९०६ में बड़ौदा-नरेश ने एक अधिनियम बनाकर अपने राज्य के सभी बच्चों के लिये प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य कर दिया ।[2] इस उदाहरण से प्रेरित होकर गोखले ने १९११ में समस्त देश के लिये प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने के लिये केन्द्रीय धारा-सभा में अपना विधेयक प्रस्तुत किया, पर उन्हें सफलता नहीं मिली । गोखले की इस असफलता में सफलता निहित थी क्योंकि १९२० तक 'प्राथमिक शिक्षा अधिनियम' पारित करके पंजाब, संयुक्त प्रान्त, बंगाल, बिहार व उड़ीसा, बम्बई, मध्यप्रान्त एवं मद्रास में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बना दिया गया ।

### १९२१ से १९३७ तक

१९१९ के 'भारत-सरकार अधिनियम' (Government of India Act) के अनुसार १९२१ में भारत में द्वैध शासन-प्रणाली (Dyarchy) की स्थापना

1. Dr. Pattabhi Sitaramayya : *History of the National Congress*, Vol. I, p. 203.
2. *The Gazetteer of the Baroda State*, p. 312.

की गई और शिक्षा को लोकप्रिय मंत्रियों को सौंप दिया गया। परन्तु यहाँ भी कूटनीति परायण अंग्रेज अपनी राजनैतिक चाल को काम में लाये। उन्होंने वित्त-विभाग पर अंग्रेज मंत्रियों का अधिकार रखा। परिणाम यह हुआ कि भारतीय मंत्रियों को शिक्षा का प्रसार करने में अनेकों कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। फिर भी उन्होंने कुछ प्रान्तों में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के अधिनियम पारित किये, औद्योगिक प्रशिक्षण को प्रोत्साहित किया, वयस्क शिक्षा की दिशा में रचनात्मक कदम उठाये एवं शिक्षा सम्बन्धी अन्य कार्य भी किये।

देश में जिस राजनैतिक जागृति का प्रादुर्भाव हो चुका था उससे भारतीय यह भली-भाँति समझ गये थे कि ब्रिटिश सरकार उनके देश में व्यावसायिक शिक्षा का प्रसार केवल इसलिये नहीं करना चाहती थी, क्योंकि उससे इंगलैण्ड के उद्योगों को क्षति पहुँचती। अतः भारतीयों ने सरकार की नीति के विरुद्ध आन्दोलन प्रारम्भ किया। फलतः १९२१ से १९३७ तक व्यावसायिक शिक्षा का प्रभाव निर्बाध रहा। क़ानून, चिकित्सा, इंजीनियरिंग, पशु चिकित्सा, वन-विज्ञान, कला, कृषि और वाणिज्य की शिक्षा की सुविधाओं में विस्तार किया गया। सारांश में, इस काल में व्यावसायिक शिक्षा का प्रत्येक अवयव संशोधित तथा परिष्कृत होकर सुसंगठित बना।

**१९३७ से १९४७ तक**

१९३५ का 'भारत-सरकार अधिनियम' (Government of India Act) १९३७ में कार्यान्वित किया गया जिससे प्रान्तीय प्रशासन के सम्पूर्ण क्षेत्र में उत्तरदायी शासन की स्थापना हुई। राजनैतिक सत्ता में इस परिवर्तन के फलस्वरूप शिक्षा का भाग्य उदय हुआ। जिन ६ प्रान्तों में काँग्रेसी मन्त्रिमण्डलों का निर्माण हुआ, वहाँ की जनता को इस बात का पूर्ण आश्वासन हो गया कि शिक्षा के पुनर्गठन का कार्य सुचारु रूप से सम्पन्न किया जायगा। परन्तु भारत के दुर्भाग्य से द्वितीय विश्व-युद्ध प्रारम्भ होने पर अंग्रेजों की नीति से मतभेद होने के कारण काँग्रेसी मन्त्रिमण्डलों ने अपने पद त्याग दिये। फलतः जनता की आशा पर असमय ही तुषारापात हो गया। १९४६ में भारत का सौभाग्य सूर्य फिर उदय हुआ और ८ प्रान्तों में काँग्रेसी मन्त्रिमण्डलों का निर्माण हुआ। उसी वर्ष बनने वाली 'अन्तरिम सरकार' (Interim Government) में जवाहरलाल नेहरू वाइसराय की कार्यकारिणी समिति के उपसभापति नियुक्त हुए। फलतः केन्द्रीय सरकार के शिक्षा-विभाग पर भारतीयों का अधिकार स्थापित हो गया।

उपर्युक्त काल में तत्कालीन राजनैतिक स्थिति के कारण प्रशासन-कार्य में

भारतीयों का अधिकार अधिक हो गया। फलतः शिक्षा में नव-
हुआ। नेहरू की अध्यक्षता में केन्द्रीय सरकार ने शिक्षा को प
देना प्रारम्भ किया। केन्द्रीय शिक्षा-नीतियों में सामंजस्य स्था
केन्द्रीय सरकार को शिक्षा-सम्बन्धी विषयों पर परामर्श देने
शिक्षा सलाहकार बोर्ड' (Central Advisory Board of E
पुनर्जीवित किया गया। केन्द्रीय सरकार से प्रोत्साहन प्राप्त कर
अङ्गों का विकास हुआ। स्त्रियों, हरिजनों तथा प्रौढ़ों की शिक्ष
रूप से ध्यान दिया गया।

राजनैतिक जागरण के इस काल में राष्ट्र-प्रेमी नेताअ
शिक्षा के विकास की पुरातन विधियों में कोई आकर्षण नहीं
अपनी नवीन योजनाओं का परीक्षण करने के लिये उत्कण्ठि
योजनायें थीं :—विद्यामन्दिर योजना, वालंटरी स्कूलों की योज
शिक्षा की योजना। प्रथम योजना को प्रतिपादित करने वा
तत्कालीन शिक्षा-मंत्री पं० रविशंकर शुक्ल थे। द्वितीय योज
कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल ने क्रियान्वित किया था। परन्तु इन दोन
अधिक सफलता प्राप्त नहीं हुई। तीसरी योजना का प्रतिपाद
द्वारा किया गया था। इस योजना को भारत के लिये इतन
गया है कि स्वतन्त्र भारत में प्राथमिक शिक्षा को बेसिक शि
जा रहा है।

### एक समीक्षा

हमने गत पृष्ठों में ब्रिटिश शासन-काल में शिक्षा पर राज
सजीव चित्र अङ्कित करने का प्रयास किया है। इस संघात
भारतीय शिक्षा और उसकी प्रणाली में समय-समय परिवर्तन
वर्तनों के फलस्वरूप कतिपय प्रभाव दृष्टिगत होते हैं। पहिला
कि भारत ने अपनी प्राचीन शिक्षा और उसकी प्रणाली का
अंग्रेजी शिक्षा और उसकी पद्धति को अपनाया। कतिपय भार
को भूरि-भूरि प्रशंसा की है। वे निस्संकोच रूप से स्वीकार क
शिक्षा ने भारत में युग-परिवर्तन का कार्य किया। यदि भारत
शिक्षा-व्यवस्था से चिपटा रहता, तो सम्भवतः इस देश में नवज
न प्रारम्भ हुआ होता और भारतीय सदैव पदाक्रान्त रहते।

दूसरा प्रभाव यह हुआ कि भारतीय अंग्रेजी माध्यम से शि
लगे। परिणाम यह हुआ कि उनको अपने साहित्य तथा भाषा

ज्ञान न प्राप्त हो सका। साथ ही भारतीय भाषाओं तथा भारतीय मस्तिष्क का विकास अवरुद्ध हो गया।

तीसरा प्रभाव यह हुआ कि शिक्षा में धर्म को कोई स्थान नहीं दिया गया जिससे शिक्षा पूर्णतया लौकिक हो गई। धार्मिक शिक्षा के अभाव में छात्रों का नैतिक पतन प्रारम्भ हो गया और उनमें अनुशासनहीनता तथा भक्तिहीनता का समावेश हो गया।

चौथा प्रभाव यह हुआ कि जनसाधारण शिक्षा से वंचित रह गई, क्योंकि अंग्रेजों के निस्यन्दन सिद्धान्त से केवल उच्च वर्गों को ही लाभ हुआ।

अन्तिम प्रभाव यह हुआ कि भारत मे राष्ट्रीय शिक्षा की माँग की गई। राष्ट्रीय विद्यालयों की स्थापना हुई, और प्राथमिक शिक्षा की नवीन योजनाओं का परीक्षण किया गया। इन योजनाओं मे बेसिक शिक्षा योजना अत्यधिक लाभप्रद सिद्ध हुई और स्वतन्त्र भारत ने जनसाधारण के हितार्थ उसे प्राथमिक शिक्षा का रूप दिया।

उपरोक्त के आधार पर हम निःसंकोच रूप से कह सकते हैं कि ब्रिटिश शासन काल में राजनैतिक कारणों से शिक्षा में जो परिवर्तन हुए उनके प्रभाव भारत के लिये हितकर भी हुए और अहितकर भी।

## स्वतन्त्र भारत में राजनैतिक परिवर्तन

ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध एक शताब्दी के अविश्रांत संघर्ष के पश्चात् भारत नवीन विचारों एवं आदर्शों को आत्मसात् करके स्वतन्त्र संसार के मंच पर अवतीर्ण हुआ। १५ अगस्त १९४७ को उसने नवीन युग के प्रांगण में प्रवेश किया। उस समय से लेकर आज तक "अपने भविष्य के बारे मे उसके सामने जो प्रश्न है वह यह है : भारत को पिछले पाँच हजार वर्षों से पीढ़ी पर पीढ़ी जिस जीवन सत्त्व की परम्परागत बपौती उपलब्ध होती आ रही है क्या वह उसे, निरन्तर जागरूक रहकर, अपने प्रयोजनात्मक प्रयास द्वारा उन्नति के उत्तरोत्तर उच्चतर शिखरों पर पहुँचाता रहेगा ?"[1] भारत के आत्म-बलिदानी एवं निस्स्वार्थी नेता जिन्होंने खून से होली खेलकर अपने देश को विदेशियों के चंगुल से मुक्त किया है, इस सम्बन्ध में आशापूर्ण हैं। भावी भारत के उज्ज्वल चित्र को अपने मानस-पटल पर अङ्कित किये हुए एक के बाद एक राजनैतिक परिवर्तनों को उपस्थित करके वे भारत को उस दिशा मे अग्रसर कर रहे हैं। इन राजनैतिक परिवर्तनों को उपस्थित करने के लिये उन्होने सर्व प्रथम एक नवीन संविधान का सहारा लिया। २६ जनवरी, १९५० को स्वतन्त्र भारत

१. के० एम० पणिक्कर : भारतीय इतिहास का सर्वेक्षण, पृष्ठ २५१

ा सविधान कार्यान्वित किया गया, उसका सूक्ष्म विश्लेषण करने से हमें
हो जाता है कि अंग्रेज़ों के प्रस्थान के उपरान्त देश मे किस प्रकार
रिवर्तन उपस्थित करने का प्रयास किया गया है । संविधान में घोषित
ा गया है :

भारत के समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनैति
न्याय प्राप्त होगा ।

. नागरिकों को विचार अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना
स्वतन्त्रता होगी ।

३. नागरिकों मे प्रतिष्ठा तथा अवसर की समता प्राप्त होगी ।

४. नागरिकों में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता सुनिश्चित करन
वाली बन्धुता की वृद्धि की जायगी ।

इसके अतिरिक्त भारतीय संविधान मे नागरिकों के कुछ मूलभूत अधिकारों
(Fundamental Rights) का प्रतिपादन किया गया है । इन अधिकारों की
एक शानदार सूची दी गई । "इस सूची में वर्णित अधिकारों के अनुसार सब
लोग कानून की दृष्टि मे एक समान समझे जायेंगे और सरकारी नौकरियो के
सम्बन्ध में सब नागरिकों को एक-सा मौका दिया जायगा । अस्पृश्यता का अंत
कर दिया गया है और राज्य द्वारा उपाधि वितरण की प्रथा का भी अन्त कर
दिया है । राज्य की ओर से केवल सैनिक और विद्वता सम्बन्धी उपाधियों का
वितरण होगा । सविधान सब नागरिको को भाषण सम्बन्धी स्वतन्त्रता,शान्ति-
पूर्वक सभा करने की स्वतन्त्रता, आवागमन तथा निवास सम्बन्धी स्वतंत्रता
सम्पत्ति प्राप्त करने रखने तथा बेचने की स्वतन्त्रता, तथा मनचाहा व्यवसाय या
पेशा करने का अधिकार देता है । संविधान ने बेगार और दास-प्रथा को एकदम
बन्द कर दिया है । १४ वर्ष से कम अवस्था वाले बालक कारखानों, खानों
अथवा अन्य खतरनाक काम में नहीं लगाये जा सकते हैं । संविधान नागरिकों
को धार्मिक तथा विचार सम्बन्धी स्वतन्त्रता देता है । अल्पसंख्यक जातियों को
अपनी भाषा, लिपि और संस्कृति की रक्षा करने का अधिकार प्राप्त है ।
अन्त मे यह कहा गया है कि इन अधिकारों के उपयोग के लिए नागरिक
उच्चतम न्यायालय की सहायता और संरक्षण मांग सकते हैं ।"[1]

१९४७ के राजनैतिक परिवर्तन और उसके फलस्वरूप १९५० में कार्या-
न्वित किये गये जिस संविधान की व्याख्या हमने ऊपर की है, उससे स्पष्ट हो
जाता है कि क्रान्तिकारी परिवर्तनों द्वारा हमारे समाज की एक नवीन रूप-रेखा
देने का सतत प्रयास किया जा रहा है, 'समाजवादी आदर्श के समाज' को स्था-

१—अमर नन्दी, भारत का संविधान, पृष्ठ, १० ।

पना की ओर सक्रिय पग उठाया जा रहा है। जिस प्रकार के समाज की स्थापना का प्रयास किया जा रहा है, उसके लिये अंग्रेजों द्वारा दी गई शिक्षा-व्यवस्था सर्वथा अनुपयुक्त रहेगी। कारण यह है कि कई दशाब्दियों से "हमारी शिक्षा-पद्धति राष्ट्रीय संस्कृति की विस्तृत नींव पर आधारित नहीं रही है और वह अपनी अतीत की उपलब्धियों या वर्तमान के महत्त्वपूर्ण कार्यों या अपने भविष्य की आशाओं से प्रेरणा प्राप्त नहीं करती है।"[1] अतः 'समाजवादी आदर्श के समाज' की स्थापना के लिये जिसमें उन्मुक्त आदान-प्रदान की सुगमता हो और आर्थिक तथा सामाजिक पद पर आधारित पूर्वाग्रहों के लिये कोई स्थान न हो, तो शिक्षा की व्यवस्था में परिवर्तन करना आवश्यक समझा गया। इसीलिये हमारी शिक्षा-व्यवस्था में शनैः शनैः परन्तु निरन्तर परिवर्तन किया रहा है और यह कहना पुनरुक्ति न होगी कि यह परिवर्तन राजनैतिक संघात के कारण हो रहा है। हम निम्नांकित पंक्तियों में इस राजनैतिक संघात के फलस्वरूप शिक्षा में होने वाले परिवर्तनों का विस्तृत अध्ययन करेंगे।

## स्वतन्त्र भारत में शिक्षा पर राजनैतिक संघात

राजनैतिक परिवर्तन के परिणामस्वरूप भारतीय समाज में जो महान् क्रांति परिलक्षित हो रही है, उसको सफल तथा पूर्ण बनाने के लिये वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था में आमूल परिवर्तन की आवश्यकता का अनुभव किया गया है। ६० से अधिक वर्षों के एक लम्बे राजनैतिक संघर्ष के उपरान्त हमें जो स्वतन्त्रता प्राप्त हुई है, उसने हमारे समक्ष महान् उत्तरदायित्व उपस्थित किये हैं। उनका भार सभालने के लिये हम नैतिक तथा बौद्धिक रूप से तैयार नहीं है। "हमने अपनी राजनीतिक सरगर्मियों के जरिये बहुत कुछ राजनीतिक शिक्षा प्राप्त की, परन्तु वह बुनियादी तौर पर रणकौशल की शिक्षा थी—हालांकि यह रण-कौशल मुख्यतः अहिंसात्मक लड़ाई का कौशल था। परन्तु सत्ता जनता के हाथ में आ जाने से और जो कुछ बुरा तथा प्रतिक्रियावादी तथा सामाजिक दृष्टि से अनुचित था उसकी केवल आलोचना करने के बजाय अच्छी तथा सामाजिक दृष्टि से वांछनीय चीजों का निर्माण करने की जो चुनौती हमें दी गई है, उसके कारण हमारे सामने नई आवश्यकतायें तथा नई समस्यायें उपस्थित हो गईं

1. "Our present system of education is not based on the broad foundations of national culture and does not derive its inspiration from the achievements of its past or the pre-occupations of its present or the hopes of its future." —K. G. Saiyidain : *Problems of Educational Reconstruction*. p. 13.

है और हमारे लिए अपने अन्दर नये गुण तथा नई प्रवृत्तियाँ पैदा करना आवश्यक हो गया है। यदि इस महान् तथा प्राचीन देश को जो अभी हाल में एक स्वतन्त्र राज्य बना है, जीवित रहना है—और क्रूर काल किसी की सुख-सुविधा की प्रतीक्षा नहीं करता !—तो उचित बौद्धिक तथा भावनात्मक वातावरण पैदा करने के लिये और उचित सामाजिक तथा नैतिक रवैये पैदा करने के लिए हमें बहुत साहसपूर्ण, द्रुतगामी तथा आमूल परिवर्तन करने वाली नीतियाँ अपनानी होंगी। जन-साधारण के विचारों को नए साँचे में ढालने के लिए शिक्षा निस्सन्देह एक शक्तिशाली उद्देश्य पूर्ण साधन है।"[1] इसीलिये राजनैतिक परिवर्तन से उत्पन्न होने वाली समस्याओं का समाधान करने के लिये भारतीय शिक्षा को एक नए साँचे में ढाला जा रहा है जिसके फलस्वरूप शिक्षा के क्षेत्र में निम्नांकित परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहे हैं। :

१. जन-साधारण की शिक्षा

भारत में 'धर्म निरपेक्ष कल्याणकारी लोकतन्त्र' की स्थापना की गई है। उसे तब तक सुदृढ़ एवं शक्तिशाली बनाना सम्भव नहीं है, जब तक कि उसकी आधार-शिला सुदृढ़ एवं शक्तिशाली न हो। वह आधार-शिला है इस देश की वह समस्त जनता जिसके ऊपर राज्य-सरकारों का विवेक-पूर्ण निर्वाचन निर्भर है तथा सम्पूर्ण राष्ट्र के मंगलमय स्वरूप का निर्धारण अवलम्बित है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए आवश्यक है, उस दिशा की ओर अग्रसर करने वाली जन-जन की उपयुक्त शिक्षा। इसीलिए भारत के संविधान की ४५ वीं धारा में स्पष्ट रूप से १० वर्ष के अन्दर १४ वर्ष तक की आयु के सभी बच्चों के लिए प्राथमिक शिक्षा निःशुल्क तथा अनिवार्य बनाने की घोषणा की गई है। जनसंख्या की विशालता और कुछ इलाकों के खास तौर पर पिछड़ा के होने के कारण अभी तक इस कार्य में पूर्ण सफलता नहीं प्राप्त हो सकी है। प्राथमिक शिक्षा को बेसिक शिक्षा का रूप प्रदान किया जा रहा है, जिससे बालक किसी शिल्प का ज्ञान प्राप्त कर सकें और अध्ययन की समाप्ति के उपरान्त उसमें दक्षता प्राप्त करके अपनी आजीविका की समस्या को हल करें तथा समाज के लाभप्रद सदस्य बन सकें।

२. पाठ्य-क्रम का विभिन्नीकरण

माध्यमिक विद्यालयों के लिये विभिन्न पाठ्य-क्रम (Diversified Courses) का आयोजन किया गया है, जिससे विभिन्न अभिरुचियों तथा अभियोग्यताओं वाले छात्र अपने मनोनुकूल विषयों का अध्ययन करके अपने व्यक्तित्व का

1—हु० को० कबीर : शिक्षा की पुनर्रचना, पृष्ठ २०२-२०३।

सर्वाङ्गीण विकास कर सकें और विद्याध्ययन के उपरान्त समाज की विभिन्न माँगों की पूर्ति कर सकें तथा विश्वविद्यालयों की निरुद्देश्य भीड़ कम हो सके।

### ३. बहुउद्देशीय विद्यालय

हमारे माध्यमिक विद्यालय अभी तक एक-मार्गीय थे और वे विभिन्न अभिरुचियों, प्रवृत्तियों तथा मानसिक क्षमताओं वाले छात्रों की आवश्यकताओं को पूर्ण नहीं करते थे। फलतः उनके व्यक्तित्व का विकास अवरुद्ध हो जाता था। स्वतंत्र भारत में इन शिक्षाशालाओं को बहुउद्देशीय विद्यालयों में परिणत किया जा रहा है। उनमें विभिन्न पाठ्यक्रम और शिल्पों का शिक्षण किया जा रहा है। इससे लाभ यह होगा कि छात्रों को अपनी अभिरुचियों के अनुसार विषयों को चयन करने का अवसर प्राप्त होगा, उनके व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास होगा और वे किसी शिल्प में दक्षता प्राप्त करके किसी उद्योग में लग सकेंगे।

### ४. पाठ्य-वाह्य एवं पाठ्य-क्रम सहगामी क्रियायें[1]

पाठ्य-वाह्य एवं पाठ्य-क्रम सहगामी क्रियायें छात्रों की शारीरिक एवं मानसिक उन्नति में योग देती हैं, उनकी अभियोग्यताओं का विकास करती हैं और उनमें सफल सामुदायिक जीवन के लिये आवश्यक सामाजिक गुणों का समावेश करती हैं। यही कारण है कि भारतीय विद्यालयों में इन क्रियाओं पर विशेष बल दिया जा रहा है।

### ५. शिक्षा का राष्ट्रीयकरण

एच० जी० वेल्स (H. G. Wells) ने किसी प्रसंग में कहा था : "यदि आप इस बात का अनुभव करना चाहते हैं कि पीढ़ियों के बाद पीढ़ियाँ किस प्रकार पहाड़ी नदियों के समान –जी हाँ, पहाड़ी नदियों के समान विनाश की ओर बढ़ती जा रही हैं, तो किसी प्राइवेट स्कूल को ध्यान से देखिये।"[2] हमारे देश के अधिकांश प्राइवेट स्कूलों के विषय में यह बात सत्य उतरती है। इसका प्रमुख कारण यह है कि इन स्कूलों के पास धन का अभाव है। अतः वे छात्रों के लिए उचित शिक्षा का प्रबन्ध नहीं कर सकते हैं। फलस्वरूप छात्रों की वैयक्तिक क्षमताओं के विकास में बाधा पड़ती है, उनके विशिष्ट गुणों तथा

1. Extra-curricular and Co-curricular activities.
2. "If you want to feel the generations rushing to waste like rapids—like rapids—you should put your heart and mind into a private school."—H. G. Wells. Quoted by K. G. Saiyidain : *Problems of Educational Reconstruction*, p. 1.

समय छात्रों के समक्ष वास्तविक जीवन की स्थितियाँ एवं समस्यायें उपस्थित होगी। इनके विषय मे उन्हें विचार करना पड़ेगा एव इन्हें हल करने के लिये उन्हें विभिन्न प्रकार के ज्ञान तथा अपने माता-पिता, अध्यापकों, मित्रों आदि की आवश्यकता होगी। केवल इस बात के परिणामस्वरूप कि छात्र स्वयं कुछ गणित अथवा भूगोल अथवा भौतिकी का ज्ञान प्राप्त करने की आवश्यकता का अनुभव करेंगे, इस प्रकार के कार्य के प्रति उनका दृष्टिकोण बदलेगा। वे आनन्द पूर्वक उस कार्य को तन-मन से करेंगे और 'अपने आप कार्य करने' (Self-activity) के पाठ को सीखेंगे। इस प्रकार वे उचित भावना के साथ अपना साहस पूर्ण जीवन प्रारम्भ करेंगे। भारत की परिवर्तित राजनैतिक दशाओं मे ऐसे ही व्यक्तियो की आवश्यकता है।

### ७. स्कूल : एक सृजनात्मक वातावरण के रूप में

स्कूलों के वर्तमान वातावरण को इस प्रकार से आयोजित नहीं किया गया है कि वह बच्चों की अभिरुचियो को समझ सके और उन्हें अपनी अभिशक्तियो का उपयोग करने के लिये उचित माध्यम प्रदान कर सके। कारण यह है कि स्कूल आवश्यकता से अधिक औपचारिक तथा पुस्तकीय रहे हैं और अब भी हैं। उनके अन्तर्गत ज्ञानोपार्जन के प्रतीको एव साधनों के महत्व को असाधारण स्थान दिया जाता है और क्रियाशीलता एवं आत्माभिव्यक्ति की दिशा मे बच्चों की निरन्तर बढ़ती हुई आवश्यकताओ की ओर से मुँह मोड़ लिया जाता है। स्कूलों का दैनिक कार्यक्रम इतने कठोर बंधनों मे आबद्ध होता है कि बच्चों को उसके प्रति रंचमात्र भी आकर्षण नहीं होता है : "बच्चों की शारीरिक क्रियाशीलता की, उनके सृजनात्मक तथा सामाजिक आवेगों की, उनकी कुछ करने की, किसी चीज का निर्माण करने की, अपने चारों ओर की चीजो को लेकर कोई नया प्रयोग करने की इच्छा का जो दमन किया जाता है, उसके विरुद्ध उनकी प्रत्येक सहज-प्रवृत्ति पुकार-पुकार कर दुहाई देती है।[१]"

इस प्रकार की शिक्षा भारत के भावी नागरिकों की राजनैतिक तथा सामाजिक आवश्यकताओं को पूर्ण करने मे सफल नहीं हो सकती है। अत: देश के शिक्षा-विशेषज्ञो के समक्ष यह समस्या उपस्थित हुई कि स्कूलों के कार्य का पुनर्संगठन कुछ इस प्रकार से किया जाय कि उनके प्रति बच्चो का दृष्टिकोण

---

ry instinct in their being cries out against the repre- f their physical activity, their creative and social , their desire for doing, for construction, for ... with the environment."—K. G. Saiyi-

शील वातावरण के लिये बच्चों को शिक्षा दे।[1]" राजनैतिक परिवर्तन के कारण हमारे समाज, हमारे समुदाय के तकाज़े भी बदल गये हैं, अतः यह अनुभव किया गया है कि देश के विद्यालयों और उनकी शिक्षा को उन तकाज़ों के अनुकूल बनाया जाय। स्कूलों को सामुदायिक जीवन से पृथक् रख कर सदैव इस बात का भय रहेगा कि एक जड़ औपचारिकता उन पर छा जाय और वर्तमान वास्तविकताओं का स्थान अतीत की प्रेतात्माएँ ले लें। अतः सरकार ने घोषित किया है कि "हमारी समस्त शिक्षा-संस्थायें सामुदायिक कर्म-केन्द्र होंगी।[2]"

## ९. जनता कॉलेज

भारत ग्रामों का देश है। १९५१ की जनगणना के अनुसार इस देश की ८३ प्रतिशत जनता ग्रामों में निवास करती है। हमारी ग्रामीण जनता कितनी पिछड़ी हुई दशा में है, इसका उल्लेख करना निरर्थक है। जब तक इन व्यक्तियों को शिक्षित करके इनमें नेतृत्व के गुणों का विकास नहीं किया जायगा तब तक भारत की राजनैतिक तथा आर्थिक उन्नति की कल्पना करना व्यर्थ है। ग्रामीणों को शिक्षित करने का कार्य अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा और समाज-शिक्षा द्वारा सम्पन्न किया जा रहा है। उनमें नेतृत्व के गुणों का विकास करने के लिये 'जनता कॉलेजों' की स्थापना की गई है। साधारणतः लोगों का विचार है कि जनता कॉलेज उच्च शिक्षा के केन्द्र हैं, परन्तु ऐसा नहीं है। वस्तुतः ये प्रशिक्षण—स्थानीय नेतृत्व के प्रशिक्षण—के केन्द्र हैं और यह प्रशिक्षण केवल ग्राम-निवासियों को दिया जाता है। इन कॉलेजों में भारतीय इतिहास, भारतीय संविधान, भारतीय साहित्य, आर्थिक समस्याओं और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की प्रमुख बातों की शिक्षा दी जाती है[3]। चार मास का प्रशिक्षण प्राप्त करके ग्राम निवासी अपने-अपने ग्रामों को लौट जाते हैं और वहाँ समाज शिक्षा के कार्य-क्रम में जुट जाते हैं। इस प्रकार आशा की जाती है कि उनके प्रयासों के फलस्वरूप हमारे ग्रामों के निवासियों का उत्थान अल्प समय में हो हो सकेगा।

---

१. के० जी० सैयदैन : शिक्षा की पुनर्रचना, पृष्ठ ६३
2. "All our institutions will be communities at work." *Radio Broadcast by Dr. Zakir Husain, published in The Future of Education, A Symposium.*
3. *Teachers' Handbook of Social Education*, pp. 74-75.

## १०. शिक्षा का जनतंत्रीकरण

भारतीय संविधान के अनुसार देश के सभी व्यक्तियों को सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक न्याय प्राप्त है। भारत में 'धर्म-निरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य' की स्थापना की गई है। अस्पृश्यता का अन्त कर दिया गया है। इस प्रकार जाति, धर्म, लिंग आदि के आधार पर व्यक्तियों में किसी प्रकार का भेद नहीं किया गया है। इन बातों को कार्य रूप में परिणत करने के लिये सभी सार्वजनिक विद्यालयों के द्वार सभी व्यक्तियों के लिये खोल दिये गये हैं। शिक्षा का जनतंत्रीकरण प्रारम्भ कर दिया गया है। निर्धन परन्तु योग्य छात्रों को शिक्षा का लाभ उठाने के लिये छात्रवृत्तियाँ देना प्रारम्भ कर दिया गया है। अनुसूचित जातियों, अनुसूचित आदिम जातियों और पिछड़े वर्गों के विद्यार्थियों को विशेष रूप से छात्रवृत्तियाँ प्रदान करके शिक्षा प्राप्त करने के लिये प्रोत्साहित किया जा रहा है।

## ११. प्रौढ़-शिक्षा

राष्ट्रीय जीवन में प्रौढ़-शिक्षा का अत्यधिक महत्व होता है। स्वतंत्रता-प्राप्ति से पूर्व तो प्रौढ़-शिक्षा केवल वांछनीय तथा आवश्यक प्रतीत होती थी देश के नेता जानते थे कि 'जन-साधारण' के बौद्धिक एवं सांस्कृतिक स्तर न बहुत काफी ऊँचा उठाये बिना वे किसी भी दिशा में आगे नहीं बढ़ सकते थे स्वतंत्रता-प्राप्ति के उपरान्त प्रौढ़-शिक्षा जीवन और मृत्यु का प्रश्न बन गई है। उसकी उपेक्षा करके अथवा उसे स्थगित करके भारत अपने लिये बहुत बड़ा खतरा मोल लेगा। "यदि हम एक ऐसी व्यावहारिक लोकतंत्रात्मक व्यवस्था का निर्माण करना चाहते हैं, जिसमें बहुमत की तर्कसंगत इच्छा की प्रधानता रहे, तो क्या इस बात का आश्वासन कर लेना आवश्यक नहीं है कि यह इच्छा विवेकपूर्ण हो और अपकारी उद्देश्यों तथा लक्ष्यों पर आधारित न होकर उपकारी उद्देश्यों तथा लक्ष्यों द्वारा प्रेरित हो। अशिक्षित लोगों का लोकतंत्र, जो अंधी भावनाओं और पूर्वाग्रहों के प्रवाह में बह जाते हैं और सहज ही स्वार्थी लफ़्फ़ाजों की तिकड़मों का शिकार हो जाते हैं, शान्ति, सुरक्षा तथा सुखी जीवन के लिये किसी भी दूसरी शासन-पद्धति की अपेक्षा अधिक खतरनाक सिद्ध हो सकता है।"[१]

"ऊपर बताई गई बातों से ज्ञात होता है कि यदि पहिले प्रौढ़-शिक्षा महत्वपूर्ण थी, तो अब वह जीवन और मृत्यु का प्रश्न बन गई है। हमें जनता में चीजों को परखने की क्षमता, आलोचनात्मक शक्ति और सामाजिक भावना का

---

१. के० जी० सैयदैन : शिक्षा की पुनर्रचना, पृष्ठ २०३-२०४

विकास करने में योग देना चाहिये ताकि वे कला के क्षेत्र में उत्कृष्ट तथा निकृष्ट के बीच, ज्ञान के क्षेत्र में सच और झूठ के बीच और आचरण के क्षेत्र में भले और बुरे के बीच अन्तर कर सकें। जब तक उनके जीवन को इन सभी दिशाओं में काफ़ी उन्नत नहीं बनाया जायगा, तब तक हम उनसे सुसंस्कृत, सामाजिक दृष्टि से न्यायपूर्ण और समृद्ध लोकतान्त्रिक व्यवस्था का निर्माण करने में अपनी भूमिका श्रेयस्कर ढंग से निभाने की आशा नहीं कर सकते हैं।"[१] प्रौढ़-शिक्षा की इसी आवश्यकता का अनुभव करके भारत-सरकार ने समाज-शिक्षा का व्यापक कार्यक्रम अदम्य उत्साह तथा स्फूर्ति से क्रियान्वित किया है।

## १२. शारीरिक-शिक्षा

शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करना है। मानसिक विकास के साथ-साथ उसका शारीरिक विकास भी होना आवश्यक है। स्वस्थ नागरिक देश के दृढ़ स्तम्भ हैं। राजनैतिक परिवर्तन के कारण भारत को जो स्वतंत्रता प्राप्त हुई है, उसको सुरक्षित रखने का भार देश के नवयुवकों के कंधों पर है। वर्तमान राजनैतिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति में जब विश्व के ऊपर युद्ध के काले बादल मँडरा रहे हैं, इन नवयुवकों की शारीरिक शिक्षा की उपेक्षा करना एक महान् भूल होगी। इसलिये हमारी राष्ट्रीय सरकार ने उनके लिये शारीरिक शिक्षा तथा खेल-कूद की विशेष तथा उत्तम व्यवस्था की है।

शारीरिक शिक्षा प्रदान करने वाली संस्थाओं एवं कॉलिजों के विकास के लिये निर्मित की गई 'राष्ट्रीय शारीरिक शिक्षा तथा मनोरंजन योजना' को क्रियान्वित कर दिया गया है। विभिन्न कार्यक्रमों के मध्य समन्वय स्थापित करने और सरकार को परामर्श देने के लिये एक 'केन्द्रीय शारीरिक शिक्षा तथा मनोरंजन परामर्श मण्डल' की स्थापना की जा चुकी है।

खेल-कूद के कार्यों को प्रोत्साहित करने के लिये अग्राङ्कित उपाय किये गये हैं:—(१) 'अखिल भारतीय खेल-कूद परिषद्' की स्थापना, (२) विभिन्न राज्यों में 'राज्य खेल-कूद परिषदों' की स्थापना, और (३) 'राजकुमारी खेल-कूद शिक्षण योजना' के अन्तर्गत देश में भारतीय एवं विदेशी खेल-कूद विशेषज्ञों की देखभाल में शिक्षण-केन्द्रों की स्थापना।

## १३. युवक कल्याण

युवक राष्ट्र की अमूल्य सम्पत्ति हैं। आज जब कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक वातावरण विषाक्त हो रहा है और एक देश दूसरे के विरुद्ध ज़हर उगल रहा

१. के० जी० सैयदैन : शिक्षा की पुनर्रचना, पृष्ठ २११

है, भारतीयों की आँखें अपने इन्हीं युवकों की ओर लगी हुई हैं। यही कारण है कि सरकार 'युवक कल्याण' ( Youth Welfare ) की योजनाओं का निर्माण करने में व्यस्त है। इन योजनाओं में अग्रलिखित उल्लेखनीय हैं :— (१) प्रति वर्ष अन्तर्विश्वविद्यालय सामारोह आयोजित किये जाते हैं तथा अन्तः कालेज समारोह सगठित करने के लिये विश्वविद्यालयों को सहायता दी जाती है, (२) युवा-नेतृत्व प्रशिक्षिण-शिविर लगाये जाते हैं, (३) ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक महत्त्व के स्थानो की यात्रा करने के लिये युवकों को वित्तीय सहायता दी जाती है, और (४) युवको में शारीरिक श्रम के प्रति प्रतिष्ठा-भाव जाग्रत करने का प्रयास किया जा रहा है।[1]

## १४. शिक्षा में सदाचार

राजनैतिक परिवर्तन के फलस्वरूप दासता से मुक्त होकर स्वतन्त्र भारत ने 'समाजवादी आदर्श के समाज' की स्थापना की घोषणा की है। इसमें सफलता तभी प्राप्त हो सकेगी जब नागरिकों में सहयोग तथा सहकारिता की भावनाओ का विकास किया जा सकेगा। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये यह वाँछित समझा गया है कि शिक्षा के सभी स्तरों पर छात्रों मे सदाचार और सामाजिक गुणों का विकास किया जाय। यह अधिकाधिक अनुभव किया जाने लगा है कि यदि शिक्षा में इन बातो पर विशेष ध्यान न दिया गया तो छात्र नागरिकों के रूप में 'समाजवादी आदर्श के समाज' में उपयुक्त स्थान न ले सकेंगे। इस विषय पर हाल में एक विशेष समिति ने विचार किया था। उसकी सिफ़ारिशों को 'केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड' ने स्वीकार कर लिया है और आदेश दिया है कि उनके अनुसार ऐसी पाठ्य-पुस्तकें तैयार कराये जायें, जिन्हें पढ़कर सदाचार और सामाजिक आदर्शों में बालकों का विश्वास दृढ़ हो तथा उनकी रुचि बढ़े।[2]

## १५. हिन्दी का विकास

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी का कथन था : "यदि हम एक राष्ट्र कहलाने के अधिकारी बनना चाहते हैं, तो हम मे समान रूप से अनेक बातें होनी चाहिये। हमारे विभिन्न सम्प्रदायों तथा उपसम्प्रदायों मे समान संस्कृति मिलती है। हमारी अर्न्हतायें समान हैं। हमें एक समान भाषा की भी आवश्यकता

१. भारत (वार्षिक संदर्भ-ग्रन्थ) पृष्ठ ८४
२. तीसरी पंचवर्षीय योजना : प्रारम्भिक रूपरेखा, पृष्ठ १०२

है।"[1] राजनैतिक परिवर्तन के फलस्वरूप १६४७ में भारत ने एक स्वतन्त्र राष्ट्र का रूप धारण किया और महात्मा गाँधी के कथनानुसार एक समान भाषा का अनुभव किया। विभिन्न भाषा-भाषी देश होने के कारण विभिन्न क्षेत्रों में निवास करने वाले व्यक्तियों में जो पार्थक्य दृष्टिगत हो रहा है, उसका अन्त करने के लिये और उनमें एक भाषा द्वारा सम्पर्क स्थापित करके घनिष्ठता की वृद्धि करने के लिये तथा इस प्रकार सम्पूर्ण भारत को एक राजनैतिक सूत्र में बाँधने के लिये यह अनिवार्य समझा गया कि सम्पूर्ण देश की एक राष्ट्र भाषा हो। महात्मा गाँधी तो हिन्दुस्तानी को इस पद पर आसीन करना चाहते थे, परन्तु कतिपय कारणों से यह पद हिन्दी को प्रदान किया गया है। केन्द्रीय सरकार हिन्दी के प्रचार एवं विकास सम्बन्धी कितनी ही विभिन्न परियोजनाओं को कार्यान्वित कर चुकी है और कर रही है।

उपरिलिखित तथ्यों के आधार पर हम यह निस्संकोच रूप से कह सकते हैं कि स्वतन्त्र भारत मे शिक्षा पर प्रबल राजनैतिक संघात हुआ है और इस संघात के प्रभाव से शिक्षा का कोई भी क्षेत्र अछूता नहीं बचा है। वस्तुतः शिक्षा-जगत मे अनेक परिवर्तन किये जा सके हैं और कितने ही अनेक परिवर्तनो के किये जाने की स्पष्ट सम्भावना है।

## सारांश

शिक्षा तथा समाज दोनों अविच्छिन्न रूप से परस्पर गुँथे हुये है। यदि किन्हीं राजनैतिक कारणों से समाज मे परिवर्तन होता है, तो शिक्षा मे भी अवश्य ही परिवर्तन होता है। जब योरुप में पुनः जागरण के कारण नवयुग का सूत्रपात हुआ, तब शिक्षा-व्यवस्था मे राजनैतिक शक्ति का हस्तक्षेप प्रारम्भ हुआ। फ्रांस की राज्य-क्रान्ति के पश्चात् शिक्षा को पूर्णतया राज्य के अधीन करके उसका कायाकल्प किया गया। नैपोलियन ने फ्रांस में सत्तारूढ़ होकर शिक्षा के रूप को पुनः परिवर्तित कर दिया।

ब्रिटिश शासन-काल में शिक्षा पर राजनैतिक सघात—ब्रिटिश शासन-

1. "If we are to make good our claim as one nation, we must have several things in common. We have a common culture running through a variety of creeds and sub-creeds. We have common disabilities. We need also a common language."—M. K. Gandhi : *India of my Dreams*, p, 203.

अध्याय १०

# शिक्षा में परीक्षण

बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में राष्ट्रीय आन्दोलन ने भारतीय आत्मा को उसकी गहराई तक हिला दिया था। भारतीय अंग्रेजों के अमानुषिक अत्याचार, अन्यायपूर्ण व्यवहार, साम्राज्यवादी नीति एवं देश के शोषण को देखकर क्रान्तिकारी भावनाओं से भर गये थे। परन्तु महात्मा गांधी के नेतृत्व में उन्होंने विध्वंसात्मक नीति का अनुसरण न करके अहिंसात्मक नीति का आलिंगन किया। उन्हीं के पथ-प्रदर्शन में भारत के निवासियों ने अंग्रेजी राज्य की जड़ों को निर्बल बनाने के अभिप्राय से विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार, स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग और राष्ट्रीय शिक्षा की माँग का नारा बुलन्द किया। शिक्षित भारतीय अंग्रेजी शिक्षा-प्रणाली को देश के लिये अहितकर समझने लगे थे। उन्हें विश्वास हो गया था कि राष्ट्रीय विद्यालयों में राष्ट्रीय शिक्षा की परियोजनाओं को कार्यान्वित करके और इस प्रकार नवयुवकों के दृष्टिकोण को परिवर्तित करके ही विशाल ब्रिटिश साम्राज्य से, जिसमें सूर्य कभी अस्त नहीं होता था, लोहा लिया जा सकता था। इसी के फलस्वरूप राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थाओं की आधारशिलायें रखी गईं और शिक्षा के क्षेत्र में नवीन परीक्षण किये गये। प्रस्तुत अध्याय का विषय इनमें से कतिपय प्रमुख परीक्षणों का वर्णन करना है। जिन परीक्षणों पर हम अपना ध्यान केन्द्रीभूत करेंगे, वे निम्नलिखित हैं :

(१) बेसिक शिक्षा— Basic Education
(२) विश्व-भारती— Vishwa Bharti
(३) अरविन्द-आश्रम— Arvind Ashram

Gurukula
Banasthali Vidyapub

४) गुरुकुल—
(५) वनस्थली विद्यापीठ—

## १. बेसिक शिक्षा

भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में बेसिक शिक्षा का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है। अविनाशलिंगम् के अनुसार बेसिक शिक्षा महात्मा गांधी द्वारा दिया गया "अन्तिम और सबसे अधिक मूल्यवान उपहार है।"[1] देश को स्वतन्त्र दिखाने तथा एक नवीन सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था का निर्माण करने के प्रयास में महात्मा गांधी ने बहुत समय पूर्व यह बात भली-भाँति समझ ली थी कि व्यक्तियों के उत्थान के बिना मानव-जाति का उत्थान नहीं किया जा सकता है और केवल उत्तम शिक्षा ही उत्तम स्त्री-पुरुषों का निर्माण कर सकती है। इस प्रकार महात्मा जी का दृढ़ विश्वास था कि सब प्रकार की उन्नति तथा सुधार का एकमात्र उपाय उत्तम शिक्षा है। भारत का भ्रमण करते हुए उन्होंने तत्कालीन भारतीय शिक्षा का सूक्ष्म अध्ययन किया और वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि भारतीय बच्चों को प्रदान की जाने वाली शिक्षा अनेकों दोषों से पूर्ण है।

### तत्कालीन शिक्षा-पद्धति के दोष

भारत की तत्कालीन शिक्षा-पद्धति के जिन दोषों के प्रति महात्मा गांधी ने संकेत किया, वे अधोलिखित हैं[2] :—

१. हमारी शिक्षा-पद्धति में पुस्तकों का प्रमुख स्थान है और वह पूर्ण-तया पुस्तकीय, साहित्यिक तथा शास्त्रीय है।

२. वह हमें ज्ञान तो देती है, पर हमें जीवन से उसका सम्बन्ध नहीं बताती है। हमारे ज्ञान में तो वृद्धि होती है, परन्तु हमारी बुद्धि तथा समझ में कोई उन्नति नहीं होती है।

३. ज्ञान भी अति कृत्रिम रूप से दिया जाता है, क्योंकि उसे अनेकों असम्बद्ध विषयों में विभाजित कर दिया जाता है। इससे हम बातों को जानने तो लगते हैं, परन्तु उनको समझते नहीं हैं।

४. हमारी शिक्षा व्यावहारिक कार्यकुशलता की अवहेलना करती है और उसमें सामाजिक निपुणता के विकास के लिये कोई स्थान नहीं है।

---

1. "The last and the most precious gift."—T. S. Avinashlingam : *Understanding Basic Education*, p. 1.
2. Hans Raj Bhatia : *What Basic Education Means*, p. 7.

५. हमारी शिक्षा मित्रभाव तथा सहयोग के स्थान में प्रतिस्पर्द्धा तथा प्रतिद्वन्दिता की भावना को प्रोत्साहित करती है।

६. इसका भारतीय संस्कृति से कोई सम्बन्ध नहीं है।

७. इसमें अंग्रेजी के पढ़ने-पढ़ाने को सर्वश्रेष्ठ स्थान दिया जाता है और मातृभाषा के प्रयोग को गौण स्थान दिया जाता है।

८. यह शिक्षा मँहगी है।

९. इसने शिक्षित तथा अशिक्षित व्यक्तियों के मध्य भेदभाव उत्पन्न कर दिया है।

१०. इस शिक्षा का लाभ कुछ ही व्यक्ति उठा रहे हैं, क्योंकि यह जन-साधारण की शिक्षा की अवहेलना करती है।

११. इसमें अपव्यय की मात्रा बहुत अधिक है। पहली कक्षा में प्रवेश करने वाले छात्रों में से केवल कुछ ही छात्र पाँचवीं कक्षा में पहुँचते हैं, और जो थोड़ा-सा ज्ञान वे प्राप्त करते हैं, वह जीवन में उनके काम नहीं आता है।

### महात्मा गांधी के शिक्षा-विषयक विचार

तत्कालीन भारतीय शिक्षा के दोषों को देखकर महात्मा गांधी इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि उससे देश तथा उसके निवासियों का कल्याण होना असम्भव है। अतः उन्होंने 'हरिजन' में उस शिक्षा के सम्बन्ध में अपने विचारों को व्यक्त करना प्रारम्भ किया, जो भारत के लिये उपयुक्त हो सकती थी। ३१ जुलाई, १९३७ के 'हरिजन' में उन्होंने अपने शिक्षा-विषयक विचारों को अधोलिखित शब्दों में व्यक्त किया :—

"राष्ट्र के रूप में हम शिक्षा में इतने पिछड़े हुए हैं कि यदि हमने शिक्षा का यह कार्य-क्रम धन पर आधारित किया, तो हम राष्ट्र के प्रति शिक्षा के अपने उत्तरदायित्वों को इस पीढ़ी में थोड़े समय में निर्वाह करने की आशा नहीं कर सकते हैं। अतः मैंने अपनी रचनात्मक योग्यता की ख्याति को संकट में डालकर यह प्रस्ताव करने का साहस किया है कि शिक्षा आत्म-निर्भर होनी चाहिये। शिक्षा से मेरा अर्थ है बच्चे एवं मनुष्य की सम्पूर्ण शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक शक्तियों का सर्वतोमुखी विकास। साक्षरता न तो शिक्षा का अन्त है और न आदि। यह तो अनेकों साधनों में से एक साधन है जिसके द्वारा मनुष्य एवं स्त्री को शिक्षित किया जा सकता है। साक्षरता स्वयं शिक्षा नहीं है। अतः मैं बच्चे की शिक्षा उसे एक उपयोगी हस्तशिल्प सिखा कर और जिस समय से वह अपनी शिक्षा प्रारम्भ करता है, उसी समय से उसे उत्पादन करने योग्य बनाकर प्रारम्भ करना चाहता हूँ। इस प्रकार यदि राज्य विद्या-

...में निर्मित वस्तुओं को लेने का उत्तरदायित्व ले ले, तो प्रत्येक विद्यालय
...म-निर्भर बनाया जा सकता है।[1]"

## अखिल भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन[2]

गांधी जी के शिक्षा-विषयक विचारों ने देश में हलचल मचा दी। उनके प्रस्तुत शिक्षा-योजना के उभय पक्षों को लेकर विचारकों में असाधारण वाद-विवाद प्रारम्भ हो गया। अतः गांधी जी ने देश के शिक्षा-मर्मज्ञों द्वारा अपनी योजना को जाँच कराना निश्चित किया। उस समय महात्मा जी वर्धा में थे। वहाँ २२ और २३ अक्टूबर १९३७ को मारवाड़ी हाई स्कूल की रजत-जयन्ती का समारोह होने वाला था। इस अवसर पर भारत के विभिन्न भागों से शिक्षा-विशेषज्ञों, राष्ट्रीय नेताओं एवं समाज-सुधारकों को आमन्त्रित किया गया और 'अखिल-भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन', जिसे 'वर्धा शिक्षा-सम्मेलन' भी कहते हैं, का आयोजन किया गया। इस सम्मेलन में गांधी जी ने सभापति का स्थान ग्रहण किया। उन्होंने सम्मेलन में भाग लेने वाले शिक्षा-विशारदों के समक्ष अपने शिक्षा-सम्बन्धी विचार व्यक्त किये। गम्भीर विचार-विमर्श के उपरान्त सम्मेलन ने निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किये, जो बेसिक शिक्षा-योजना के आधार हैं :

१. राष्ट्र के प्रत्येक बच्चे को सात वर्ष तक निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान की जाय।

---

1. As a nation we are so backward in education that we cannot hope to fulfil our obligations to the nation in this respect in a given time during this generation, if this programme is to depend on money. I have, therefore, made bold, even at the risk of losing a reputation for constructive ability, to suggest that education should be self-supporting. By education, I mean an all-round drawing out of the best in child and man–body, mind and spirit. Literacy is not the end of education nor even the beginning. It is only one of the means whereby man and woman can be educated. Literacy in itself is no education. I would, therefore, begin the child's education by teaching it a useful handicraft and enabling it to produce from the moment it begins its training. Thus every school can be made self-supporting, the condition being that the State takes over the manufacture of the schools." *Harijan*, July 31, 1937.
2. ...tional Education Conference,

२. शिक्षा का माध्यम मातृ-भाषा हो।
३. इस सम्पूर्ण अवधि में शिक्षा किसी हस्त एवं उत्पादक कार्य के माध्यम से दी जाय। अन्य विषय इस केन्द्रीय कार्य से सम्बन्धित रखे जायें। बच्चों की अन्य सभी योग्यताओं का विकास या उसको दिया जाने वाला शिक्षण, उसके वातावरण से पूर्णतः सम्बन्धित हो।
४. सम्मेलन को आशा है कि शनैः-शनैः शिक्षा की इस प्रणाली से अध्यापकों का वेतन निकलने लगेगा।[1]

## जाकिर हुसेन समिति[2]

उपरिलिखित प्रस्तावों को पारित करने के उपरान्त सम्मेलन ने जामिया मिलिया इस्लामिया, दिल्ली, के आचार्य डा० जाकिर हुसेन की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की। इसे 'जाकिर हुसेन समिति' के नाम से पुकारा जाता है। इस समिति का उद्देश्य वर्धा शिक्षा-सम्मेलन में पारित प्रस्तावों के अनुसार एक विस्तृत पाठ्य-क्रम तैयार करना था। इस समिति ने दिसम्बर १९३७ और अप्रैल १९३८ में दो रिपोर्टें प्रस्तुत कीं। प्रथम रिपोर्ट में वर्धा शिक्षा-योजना के आधारभूत सिद्धान्तों, उद्देश्यों, शिक्षकों तथा उनके प्रशिक्षण, विद्यालयों के संगठन, प्रशासन एवं निरीक्षण और कताई-बुनाई के विस्तृत पाठ्य-क्रम इत्यादि का विशद् वर्णन किया। द्वितीय रिपोर्ट में समस्त विषयों के पाठ्य-क्रम एवं उनको आधारभूत हस्त तथा उत्पादक कार्य से सम्बन्धित करने के उपायों पर अपना मत प्रकट किया।

इसी बीच 'ज़ाकिर हुसेन समिति' की प्रथम रिपोर्ट फ़रवरी १९३८ में हरिपुरा में होने वाले कांग्रेस के अधिवेशन में विचार विनिमय के लिये रखी गई और भारतीय शिक्षा को पुनर्संगठित करने के लिये उसे कांग्रेस की योजना स्वीकार कर लिया गया। इस योजना को कार्यान्वित करने के लिये अप्रैल १९३९ में सेवाग्राम में 'अखिल भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा-परिषद्'[3] की स्थापना की गई। इस परिषद् को 'हिन्दुस्तानी तालिमी संघ'[4] भी कहा जाता है। कारण यह है कि गान्धी जी इस नवीन शिक्षा को 'नई तालीम'[5] के नाम से पुकारते थे।

---

1. Hindustani Talimi Sangh, *Educational Reconstruction*, p. 82.
2. Zakir Husain Committee.
3. All-India National Education Board,
4. Hindustani Talimi Sangh.
5. Nai Talim.

## प्रथम खेर समिति

बेसिक शिक्षा योजना को १९३८ मे भारत के उन प्रान्तों
मंत्रिमंडल थे, क्रियान्वित कर दिया गया। जब केन्द्रीय सरकार
में प्रान्तीय सरकारो की अभिरुचि देखी, तो उसने भी इस
क्रियात्मक पग उठाने का निश्चय किया। इस उद्देश्य से
सलाहकार बोर्ड'[1] ने १९३८ में बम्बई के मुख्यमंत्री बी० जी०
क्षता मे 'वर्धा शिक्षा-योजना' की जाँच करने के लिये एक समि
की। इस समिति को 'खेर समिति' के नाम से पुकारा जाता है
नियुक्त की गई 'प्रथम खेर समिति' ने बेसिक शिक्षा-योजना का
करके निम्नलिखित सुझाव दिये :

१. सर्व प्रथम बेसिक शिक्षा की योजना को ग्रामीण क्षेत्रो
   किया जाय।
२. बेसिक शिक्षा ६ वर्ष से १४ वर्ष तक की आयु के बच्चों के
   वार्य हो; परन्तु ५ वर्ष की आयु वाले बच्चे भी बेसिक
   प्रवेश ले सकते हैं।
३. बेसिक स्कूलों को छोड़कर अन्य प्रकार के विद्यालयो मे प्रवे
   मति बच्चों को तभी दी जाय; जब वे ५ वी कक्षा पास कर
   वर्ष से अधिक आयु के हों।
४. छात्रो को उनकी मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा दी जाय।
५. बेसिक विद्यालय का पाठ्य-क्रम समाप्त करने वाले छात्रों के
   बाह्य परीक्षा की आवश्यकता नही है। इसके लिये विद्यालय
   रिक परीक्षा ही पर्याप्त होगी। उसमे उत्तीर्ण होने वाले छात्रो
   पत्र प्रदान किये जायँ।[2]

## द्वितीय खेर समिति

'केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड' ने 'प्रथम खेर समिति' को सिफ
स्वीकार कर लिया और १९३९ मे 'द्वितीय खेर समिति' की नियुक्ति
समिति का उद्देश्य बेसिक शिक्षा-प्रणाली और उच्च शिक्षा में समन्व
करना था। इसके लिये समिति ने निम्नलिखित सिफारिशें कीं :

---

1. Central Advisory Board of Education.
2. *Report of the Committee of the C. A. B. E. appo*

१. बेसिक शिक्षा का शिक्षा-काल ८ वर्ष का हो। ६ वर्ष की आयु से १४ वर्ष की आयु तक के बच्चे इस शिक्षा को ग्रहण करें।
२. ८ वर्ष की इस अवधि को दो प्रक्रमों (Stages) में विभाजित किया जाय—(अ) प्रथम प्रक्रम या जूनियर स्टेज, और (ब) द्वितीय प्रक्रम या सीनियर स्टेज। प्रथम में ५ वर्ष का और द्वितीय में ३ वर्ष का शिक्षा-काल हो।
३. जब विद्यार्थी जूनियर स्टेज की शिक्षा समाप्त कर लें; अर्थात् जब वे ५ वीं कक्षा पास कर लें, तभी उनको उत्तर-प्रायमिक (Post-primay) शिक्षा के अन्य किसी विद्यालय में प्रविष्ट होने की आज्ञा दी जाय।[1]

'केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड' ने उपर्युक्त सिफ़ारिशों को स्वीकृत किया और 'सार्जेन्ट-शिक्षा-योजना' में उनको क्रियान्वित किया गया।

### योजना की रूप-रेखा

बेसिक शिक्षा-योजना की रूप-रेखा निम्नलिखित प्रकार से है :

१. बेसिक शिक्षा की अवधि ८ वर्ष की है। यह शिक्षा ६ से १४ वर्ष तक की आयु के बालकों और बालिकाओं के लिये नि:शुल्क एवं अनिवार्य है।
२. शिक्षा का माध्यम मातृ-भाषा है और अंग्रेजी की शिक्षा नहीं दी जाती है।
३. सम्पूर्ण शिक्षा का सम्बन्ध किसी आधारभूत शिल्प (Basic Craft) से होता है, जिसे बच्चों की योग्यता तथा स्थान की आवश्यकताओं को देख कर चुना जाता है।
४. चुने हुए शिल्प की शिक्षा इस प्रकार दी जाती है कि वह बच्चों को उत्तम शिल्पी बना देती है, और जो वस्तुयें वे बनाते हैं, ऐसी होती हैं जिसका प्रयोग किया जा सकता है या जिनको बेच कर विद्यालय के व्यय के कुछ भाग की पूर्ति की जा सकती है।
५. इस शिल्प की शिक्षा यांत्रिक विधि से न दी जाकर इस प्रकार दी जाती है कि छात्र उसके सामाजिक तथा वैज्ञानिक महत्त्व से परिचित हो जाते हैं।[2]

---

1. *Report of the Second Wardha Education Committee of C. A. B. E. 1939, together with the Decision of the Board thereon*, P. 7.
2. K. G. Saiyidain in *Year Book of Education* (Evans Bros) 1940, p. 503.

## पाठ्य-क्रम

वेसिक शिक्षा के पाठ्य-क्रम में निम्नलिखित विषय होते हैं:

१. [illegible]रभूत शिल्प—अग्रलिखित आधारभूत शिल्पों में से को[illegible] [illegible] है :—(क) कृषि; (ख) कताई-बुनाई; (ग) लकड़ी का [illegible] मिट्टी का काम; (ङ) चमड़े का काम; (च) मछली पालना; [illegible] शाक एवं उद्यान-कर्म; (ज) बालिकाओं के लिये गृह वि[illegible] कोई अन्य शिल्प, जिसके लिये स्थानीय तथा भौगोलिक प[illegible] अनुकूल हों।

२. मातृ-भाषा।

३. गणित।

४. सामाजिक अध्ययन—इतिहास, भूगोल एवं नागरिक शास्त्र।

५. सामान्य विज्ञान—(अ) प्रकृति अध्ययन; (ब) वनस्पति शास्त्र; (स[illegible] शास्त्र; (द) रसायन-शास्त्र; (र) स्वास्थ्य विज्ञान; (ल) नक्षत्रों [illegible] (व) महान् वैज्ञानिकों एवं अन्वेषकों की कहानियाँ।

६. कला—रेखा-चित्रण एवं संगीत आदि

७. हिन्दी (जहाँ मातृ-भाषा नहीं है)

८. शारीरिक शिक्षा (व्यायाम एवं खेल-कूद)

पाँचवीं कक्षा तक सह-शिक्षा है और बालकों तथा बालिकाओं के [illegible] समान पाठ्य-क्रम है। इसके उपरान्त दोनों के लिये पृथक् विद्यालयो[illegible] व्यवस्था की गई है। ६ ठी और ७ वीं कक्षाओं में बालिकायें आधारभूत [illegible] के स्थान पर गृह-विज्ञान में उच्च पाठ्य-विषय ले सकती हैं। शिक्षा का मा[illegible] मातृभाषा है, परन्तु राष्ट्रभाषा अर्थात् हिन्दी का अध्ययन सब छात्रों के [illegible] अनिवार्य है। हिन्दी देवनागरी लिपि में पढ़ाई जाती है। जिन प्रान्तों [illegible] भाषा हिन्दी नहीं है, वहाँ उन स्थानों की प्रादेशिक भाषा पाठ्य-क्रम में प्रमु[illegible] भाषा के रूप में रहती है। पाठ्य-क्रम में धार्मिक शिक्षा को कोई स्थान न[illegible] दिया गया है।

## अध्यापन-विधि

बेसिक शिक्षा में अध्यापन विधि सामान्य शिक्षण-पद्धति से सर्वथा भिन्न [illegible] है। बेसिक शिक्षण-प्रणाली में अध्यापन का कार्य, क्रियाओं एवं अनुभवों के [illegible] माध्यम से किया जाता है। दूसरे शब्दों में शिक्षण-विधि इतनी व्यावहारिक [illegible] होती है कि बच्चे विभिन्न विषयों का ज्ञान एक ही समय में अर्जित करते हैं। [illegible] साथ ही उन्हें यह ज्ञान अल्प समय में ही उपलब्ध हो जाता है। विस्तार कर[illegible] से प्रत्येक कक्षा में शिक्षा निम्नांकित प्रकार से [illegible]

प्रथम कक्षा में बच्चों को अपनी मातृभाषा का मौखिक ज्ञान कराया जाता है। तदनन्तर बच्चे पढ़ना और उसके बाद लिखना सीखते हैं। जिस समय वे लिखना सीखते हैं, उस समय किसी आधारभूत शिल्प की जानकारी भी प्राप्त करते हैं। इस प्रकार ज्यों-ज्यों बच्चे आगे की कक्षाओं में पहुँचते हैं, वे विभिन्न विषयों के ज्ञान का अर्जन करते हैं। परन्तु उनको इन विषयों की शिक्षा स्वतन्त्र रूप से प्रदान न की जाकर किसी आधारभूत शिल्प के माध्यम से दी जाती है। गणित, सामाजिक विषय, सामान्य विज्ञान आदि के शिक्षण में इसी विधि का प्रयोग किया जाता है। यदि किसी विषय का कोई भाग आधारभूत शिल्प के माध्यम से नहीं पढ़ाया जा सकता है, तो उसे किसी अन्य विधि से पढ़ा दिया जाता है। पाठ्य-क्रम के समस्त विषय परस्पर-सम्बन्धित ज्ञान-क्षेत्रों के रूप में बच्चों के समक्ष प्रस्तुत किये जाते हैं। इस प्रकार ८ वर्ष के अन्त में बच्चों को सभी विषयों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो जाता है। साथ ही उन्हें आधारभूत शिल्प की इतनी अच्छी जानकारी हो जाती है कि उसकी सहायता से वे धनोपार्जन करने लगते हैं।

**अध्यापक**

बेसिक शिक्षा-प्रणाली में अध्यापकों का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। विद्यालयों के लिये उनका चुनाव करते समय उन अध्यापकों को वरीयता दी जाती है, जो उस क्षेत्र के निवासी होते हैं जहाँ विद्यालय स्थित हैं। शिक्षण कार्य के लिये पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को अधिमान (Preference) दिया जाता है।

बेसिक विद्यालयों में प्रशिक्षित अध्यापक ही नियुक्त किये जाते हैं। प्रशिक्षण विद्यालयों में वे ही व्यक्ति प्रवेश कर सकते हैं, जो या तो मेट्रीकुलेशन परीक्षा में उत्तीर्ण हो चुके हों या वर्नाक्यूलर फ़ाइनल परीक्षा पास करने के उपरान्त कम से कम दो वर्ष तक किसी विद्यालय में अध्यापन कार्य कर चुके हों। प्रशिक्षण-विद्यालयों में दो प्रकार का पाठ्य-क्रम होता है—(१) दीर्घकालीन प्रशिक्षण, और (२) अल्पकालीन प्रशिक्षण। प्रथम में प्रशिक्षण की अवधि ३ वर्ष है और द्वितीय में एक वर्ष। इस अवधि में छात्राध्यापकों को बेसिक विद्यालयों के सभी विषयों की शिक्षण-विधि का ज्ञान प्रदान किया जाता है।

**नामकरण के कारण**

यहाँ यह बता देना आवश्यक प्रतीत होता है कि इस शिक्षा का नाम 'बेसिक शिक्षा' क्यों रखा गया है। 'बेसिक' (Basic) शब्द का हिन्दी रूपान्तर

## पाठ्य-क्रम

बेसिक शिक्षा के पाठ्य-क्रम में निम्नलिखित विषय होते हैं:

१. आधारभूत शिल्प—अग्रलिखित आधारभूत शिल्पों में से कोई एक चुना जाता है :—(क) कृषि; (ख) कताई-बुनाई; (ग) लकड़ी का काम; (घ) मिट्टी का काम; (ङ) चमड़े का काम; (च) मछली पालना; (छ) फल शाक एवं उद्यान-कर्म; (ज) बालिकाओं के लिये गृह विज्ञान; (झ) कोई अन्य शिल्प, जिसके लिये स्थानीय तथा भौगोलिक परिस्थितियाँ अनुकूल हों।

२. मातृ-भाषा।

३. गणित।

४. सामाजिक अध्ययन—इतिहास, भूगोल एवं नागरिक शास्त्र।

५. सामान्य विज्ञान—(अ) प्रकृति अध्ययन; (ब) वनस्पति शास्त्र; (स) प्राणि-शास्त्र; (द) रसायन-शास्त्र; (र) स्वास्थ्य विज्ञान; (ल) नक्षत्रों का ज्ञान; (व) महान् वैज्ञानिकों एवं अन्वेषकों की कहानियाँ।

६. कला—रेखा-चित्रण एवं संगीत आदि

७. हिन्दी ( जहाँ मातृ-भाषा नहीं है )

८. शारीरिक शिक्षा ( व्यायाम एवं खेल-कूद )

पाँचवीं कक्षा तक सह-शिक्षा है और बालकों तथा बालिकाओं के लिये समान पाठ्य-क्रम है। इसके उपरान्त दोनों के लिये पृथक् विद्यालयों की व्यवस्था की गई है। ६ ठी और ७ वीं कक्षाओं मे बालिकायें आधारभूत शिल्प के स्थान पर गृह-विज्ञान मे उच्च पाठ्य-विषय ले सकती हैं। शिक्षा का माध्यम मातृभाषा है, परन्तु राष्ट्रभाषा अर्थात् हिन्दी का अध्ययन सब छात्रों के लिये अनिवार्य है। हिन्दी देवनागरी लिपि मे पढ़ाई जाती है। जिन प्रान्तों की भाषा हिन्दी नहीं है, वहाँ उन स्थानों की प्रादेशिक भाषा पाठ्य-क्रम मे प्रमुख भाषा के रूप मे रहती है। पाठ्य-क्रम मे धार्मिक शिक्षा को कोई स्थान नहीं दिया गया है।

## अध्यापन-विधि

बेसिक शिक्षा में अध्यापन विधि सामान्य शिक्षण-पद्धति से सर्वथा भिन्न है। बेसिक शिक्षण-प्रणाली में अध्यापन का कार्य, क्रियाओं एवं अनुभवों के माध्यम से किया जाता है। दूसरे शब्दों में शिक्षण-विधि इतनी व्यावहारिक होती है कि बच्चे विभिन्न विषयों का ज्ञान एक ही समय में अर्जित करते हैं। साथ ही उन्हें यह ज्ञान अल्प समय में ही उपलब्ध हो जाता है। विस्तार रूप से प्रत्येक कक्षा में शिक्षा निम्नाङ्कित प्रकार से प्रदान की जाती है :

प्रथम कक्षा में बच्चों को अपनी मातृभाषा का मौखिक ज्ञान कराया जाता है। तदनन्तर बच्चे पढ़ना और उसके बाद लिखना सीखते हैं। जिस समय वे लिखना सीखते हैं, उस समय किसी आधारभूत शिल्प की जानकारी भी प्राप्त करते हैं। इस प्रकार ज्यों-ज्यों बच्चे आगे की कक्षाओं में पहुँचते हैं, वे विभिन्न विषयों के ज्ञान का अर्जन करते हैं। परन्तु उनको इन विषयों की शिक्षा स्वतन्त्र रूप से प्रदान न की जाकर किसी आधारभूत शिल्प के माध्यम से दी जाती है। गणित, सामाजिक विषय, सामान्य विज्ञान आदि के शिक्षण में इसी विधि का प्रयोग किया जाता है। यदि किसी विषय का कोई भाग आधारभूत शिल्प के माध्यम से नहीं पढ़ाया जा सकता है, तो उसे किसी अन्य विधि से पढ़ा दिया जाता है। पाठ्य-क्रम के समस्त विषय परस्पर-सम्बन्धित ज्ञान-क्षेत्रों के रूप में बच्चों के समक्ष प्रस्तुत किये जाते हैं। इस प्रकार ८ वर्ष के अन्त में बच्चों को सभी विषयों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो जाता है। साथ ही उन्हें आधारभूत शिल्प की इतनी अच्छी जानकारी हो जाती है कि उसकी सहायता से वे धनोपार्जन करने लगते हैं।

**अध्यापक**

बेसिक शिक्षा-प्रणाली में अध्यापकों का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। विद्यालयों के लिये उनका चुनाव करते समय उन अध्यापकों को वरीयता दी जाती है, जो उस क्षेत्र के निवासी होते हैं जहाँ विद्यालय स्थित हैं। शिक्षण कार्य के लिये पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को अधिमान (Preference) दिया जाता है।

बेसिक विद्यालयों में प्रशिक्षित अध्यापक ही नियुक्त किये जाते हैं। प्रशिक्षण विद्यालयों में वे ही व्यक्ति प्रवेश कर सकते हैं, जो या तो मेट्रीकुलेशन परीक्षा में उत्तीर्ण हो चुके हों या वर्नाक्यूलर फ़ाइनल परीक्षा पास करने के उपरान्त कम से कम दो वर्ष तक किसी विद्यालय में अध्यापन कार्य कर चुके हों। प्रशिक्षण-विद्यालयों में दो प्रकार का पाठ्य-क्रम होता है—(१) दीर्घ-कालीन प्रशिक्षण, और (२) अल्पकालीन प्रशिक्षण। प्रथम में प्रशिक्षण की अवधि ३ वर्ष है और द्वितीय में एक वर्ष। इस अवधि में छात्राध्यापकों को बेसिक विद्यालयों के सभी विषयों की शिक्षण-विधि का ज्ञान प्रदान किया जाता है।

**नामकरण के कारण**

यहाँ यह बता देना आवश्यक प्रतीत होता है कि इस शिक्षा का नाम 'बेसिक शिक्षा' क्यों रखा गया है। 'बेसिक' (Basic) शब्द का हिन्दी रूपान्तर

'प्राधारभूत'। इसी प्रसङ्ग में 'बेसिक शिक्षा' के नामकरण के निम्नांकित [का]रणों को समझा जा सकता है :

- यह शिक्षा भारत की राष्ट्रीय सभ्यता, संस्कृति एवं शिक्षा-संगठन का आधार होगी।
- प्रत्येक भारतीय बच्चे को, यदि वह शारीरिक एवं मानसिक रूप से अस्वस्थ नहीं है, यह आधारभूत शिक्षा, अनिवार्य रूप से प्रदान की जायगी।
- यह आधारभूत शिक्षा प्रत्येक भारतीय-पुरुष अथवा स्त्री, धनी अथवा दरिद्र, हिन्दू अथवा मुसलमान, हरिजन अथवा ब्राह्मण की सामान्य सम्पत्ति होगी।
- इसका बच्चों की आधारभूत आवश्यकताओं एवं अभिरुचियों से घनिष्ठ सम्बन्ध होगा।
- यह शिक्षा सामुदायिक जीवन के आधारभूत व्यवसाय से सम्बन्धित होगी।
- यह शिक्षा सभी भारतीयों को ऐसा आधारभूत ज्ञान प्रदान करेगी, जो उनको अपने वातावरण को बुद्धिमत्तापूर्वक समझने एवं प्रयोग करने में सहायक सिद्ध होगा।
- इस शिक्षा का मध्य बिन्दु कोई आधारभूत शिल्प होगा, जिसका प्रयोग व्यक्तियों द्वारा अपने जीवन-निर्वाह के लिये किया जा सकेगा।

### [बेसि]क शिक्षा के आधारभूत सिद्धान्त

बेसिक शिक्षा के आधारभूत सिद्धान्त निम्नांकित हैं:

१. जनसाधारण की शिक्षा—गांधीजी का कथन था कि "जनसाधारण की [अशिक्]षा भारत का पाप और कलंक है। अतः उसका अन्त करना आवश्यक [है]।"* जब भारत में जनतन्त्र प्रणाली की स्थापना की गई, तब गांधी जी के [विचार] की गरिमा का अनुभव किया गया। इसको सफल बनाने के लिए यह [आवश्]यक समझा गया कि देश का प्रत्येक नागरिक अनिवार्य रूप से शिक्षित हो। [यह] शिक्षा केवल ज्ञान प्रदान करने वाली ही न हो, अपितु वह जीवन एवं [समाज] के लिए भी उपयोगी हो। बालक शिक्षा समाज एवं राष्ट्र के लिए आ-[वश्यक] समझी गई। अतः यह शिक्षा सम्पूर्ण राष्ट्र के लिए रखी गई है और [जनसा]धारण को इसके द्वारा अज्ञानता के कूप से बाहर निकाला जायगा।

---

* "Mass education is India's sin and shame and must be liquidated." M. K. Gandhi : *India of my Dreams*, p. 133.

२. अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा—गाँधी जी को भारत के लिए अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा में दृढ़ विश्वास था।[1] पराधीन भारत अपने बच्चों के लिए इस प्रकार की शिक्षा भी व्यवस्था करने में असफल रहा। स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त ६ से १४ वर्ष के सभी बालक-बालिकाओं के लिए प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने का निश्चय किया गया। इस शिक्षा को बेसिक शिक्षा का रूप दिया गया है।

३. हस्त-शिल्प की शिक्षा—भारत के लिए नवीन शिक्षा की रूप-रेखा प्रस्तुत करते हुए गाँधी जी ने ३१ जुलाई, १९३७ के 'हरिजन' में लिखा था : "साक्षरता स्वयं शिक्षा नहीं है। अतः मैं बच्चे की शिक्षा उसे एक उपयोगी हस्त-शिल्प सिखा कर, और जिस समय से वह अपनी शिक्षा प्रारम्भ करता है, उसे उत्पादन करने योग्य बना कर प्रारम्भ करना चाहता हूँ। मुझे विश्वास है कि ऐसी शिक्षा-प्रणाली से ही मस्तिष्क तथा आत्मा का सर्वोच्च विकास हो सकेगा। आवश्यकता केवल इस बात की है कि प्रत्येक हस्त-शिल्प की शिक्षा वैज्ञानिक ढङ्ग से दी जाय, न कि केवल यान्त्रिक विधि से जैसा कि वर्तमान समय में किया जाता है। इसका अभिप्राय यह है कि प्रत्येक बालक को 'क्यों और कैसे' का ज्ञान कराया जाय।[2]" गाँधी जी के इसी दृष्टिकोण से प्रेरित होकर बेसिक शिक्षा-प्रणाली में हस्तशिल्प को प्रमुख स्थान प्रदान किया गया है और समस्त विषयों की शिक्षा उसी के माध्यम से दी जाती है।

४. स्वावलम्बी शिक्षा—नवीन शिक्षा के आधारभूत सिद्धान्त का उल्लेख करते हुए गाँधीजी का कथन था कि "शिक्षा को स्वावलम्बी होना चाहिए; अर्थात् शिक्षा से पूँजी के अतिरिक्त वह सब धन मिल जाना चाहिए जो उसे प्राप्त करने

1. "I am a firm believer in the principle of free and compulsory Primary Education for India." M. K. Gandhi : *India of my Dreams* p. 187.

2. "Literacy in itself is no education. I would, therefore, begin the child's education by teaching it a useful handicraft and enabling it to produce from the moment it begins its training. I hold that the highest development of of the mind and the soul is possible under such a system of education. Only every handicraft has to be taught not merely mechanically as it done to-day but scientifically, i.e. the child should know the why and the wherefore of every process." *Ibid*, p. 186.

में व्यय किया गया है।[1]" अतः बेसिक शिक्षा में इस 'स्वावलम्बी पहलू' के प्रति विशेष ध्यान दिया गया है। बेसिक शिक्षा में यह स्वीकार किया जाता है कि यदि हस्तशिल्प की योजना को सावधानी से बनाया जाय, तो बच्चों द्वारा बनाई हुई वस्तुओं को बेचकर स्कूल का कुछ व्यय निकाला जा सकता है। "स्वावलम्बन बेसिक शिक्षा की तेजाबी जाँच है। बापू भारत की निर्धनता को शिक्षा-प्रसार में सबसे बड़ी बाधा मानते थे। इसे दूर करने के लिए उन्होंने यह योजना रखी कि शिक्षा के आधार-स्वरूप जो उद्योग चुना जाय, वह उत्पादक हो, अर्थात् उससे कुछ अधिक लाभ अवश्य हो। इस उपार्जन से पाठशाला का कुछ खर्च चल सकता है और शिक्षा स्वावलम्बी हो सकती है। बच्चे भी उद्योग-विशेष में निपुण होंगे और शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त आत्मनिर्भर बन सकेंगे।"

५. शिक्षा का माध्यम मातृभाषा—"बुनियादी शिक्षा का माध्यम मातृभाषा है। इतिहास हमें बताता है कि यदि किसी देश की संस्कृति को मिटाना हो, तो उसका साहित्य मिटा देना चाहिये। इसी सिद्धान्त पर विदेशियों ने हमारे देश में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी रखा। पर बुनियादी शिक्षा में मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा स्वाभाविक रूप तथा स्वतन्त्रता से दी जा सकती है।"[2]

६. शिक्षा में शारीरिक श्रम—बेसिक शिक्षा में शारीरिक श्रम को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। इससे हमारे ऐसे निर्धन देश के लिये दो लाभ होंगे। प्रथम, इससे बच्चों की शिक्षा का व्यय निकल आवेगा। द्वितीय, इससे उन्हें एक व्यवसाय की शिक्षा प्राप्त होगी, जिसके द्वारा इच्छा होने पर वे अपनी जीविका का उपार्जन कर सकेंगे। बेसिक शिक्षा में शारीरिक श्रम को स्थान देकर बच्चों को आत्म-विश्वासी बनाया जा सकेगा। राष्ट्र का सबसे अधिक पतन तभी होता है, जब हम शारीरिक श्रम से घृणा करना सीख लेते हैं।[3]

1. All education to be true must be self-supporting, that is to say, in the end it will pay its expenses excepting the capital which will remain intact." M. K. Gandhi : *India of my Dreams* pp. 188-189.
2. मलैया तथा मलैया : बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्त, पृष्ठ ७
3. "The introduction of manual training will serve a double purpose in a poor country like ours. It will pay for the education of our children and teach them an occupation on which they can fall back in after-life, if they choose, for earning a living. Such a system must make our children self-reliant. Nothing will demoralize the nation so much as that we should learn to despise labour." —M. K. Gandhi : *op. cit.*, p. 189.

७. सामाजिक शिक्षा—बेसिक शिक्षा का अन्तिम आधारभूत सिद्धान्त है प्रत्येक प्राणी में सहानुभूति एवं प्रेम उपस्थित करना, धनी और निर्धन व्यक्तियों का भेद समाप्त करना और उच्च तथा निम्न वर्गों में समता लाना। इस प्रकार बेसिक शिक्षा के द्वारा एक ऐसे नवीन समाज की स्थापना का प्रयास किया जा रहा है जो शोषणविहीन हो, जिसका आधार न्याय हो और जिसका मूलमंत्र अहिंसा तथा सत्य हो। इस प्रकार बेसिक शिक्षा द्वारा ऐसी सामाजिक शिक्षा प्रदान करने की योजना बनाई गई है जिससे समाज को नवीन जीवन प्रदान करने के लिये सजीव, स्वावलम्बी एवं उत्साही व्यक्तियों का निर्माण हो।

## बेसिक शिक्षा के उद्देश्य

बेसिक शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं :

१. नागरिकता के गुणों का विकास—प्रजातन्त्र-शासन-व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति शासन के प्रति उत्तरदायी होता है। राज्य के प्रति उसके कर्त्तव्य बढ़ जाते हैं। साथ ही उसे अनेको अधिकार भी प्राप्त हैं। वह इन कर्त्तव्यों तथा अधिकारों का निर्वाह तभी कर सकता है, जब वह इनके प्रति सजग हो। इसके लिये ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है, जो उसमें नागरिकता के गुणों का विकास करे। बेसिक शिक्षा में इस बात की ओर पूरा-पूरा ध्यान दिया गया है। जाकिर हुसेन समिति ने इस विषय में अपने विचारों को व्यक्त करते हुए लिखा है : "आधुनिक भारत में नागरिकता देश के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक जीवन में विस्तार से प्रजातांत्रिक होनी है। नई पीढ़ी को कम से कम इस बात का अवसर अवश्य मिलना चाहिये कि वह अपनी समस्याओं, अधिकारों एवं कर्त्तव्यों को समझे।"[1]

२. नैतिक विकास—आधुनिक समाज का उत्तरोत्तर नैतिक पतन होता जा रहा है। पार्थिव जीवन को प्रमुखता देने वाले व्यक्ति अपने स्वार्थों की दौड़ में अपने कर्त्तव्यों, सिद्धान्तों तथा आदर्शों को विस्मृत कर चुके हैं। समाज की इस पतनोन्मुख दशा को देखकर गाँधी जी ने शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति में नैतिकता को समाविष्ट करना बताया। उनके अनुसार : "मैंने सब से ऊँचा स्थान हृदय की संस्कृति या चारित्रिक निर्माण को दिया है और मुझे

1. "In modern India citizenship is destined to become increasingly democratic in social, political, economic and cultural life of the country. The new generation must at least have an opportunity of understanding its own problems and rights and obligations." *Educational Reconstruction*, p. 95.

अनुभव हुआ है कि सब को समान रूप से नैतिक शिक्षा दी जा सक
बात से कोई प्रयोजन नहीं है कि उनकी आयु और पालन-पोषण मे
अन्तर क्यों न हो।"[1]

बेसिक शिक्षा में नैतिक विकास की ओर पूर्ण ध्यान दिया गया
को कर्त्तव्य-परायणता, दूसरों के अधिकारों के प्रति सम्मान,
सहयोग और शान्ति एवं सत्यता के मार्ग का अनुसरण करने की
जाती है।

३. सांस्कृतिक उद्देश्य—प्रचलित शिक्षा-प्रणाली का एक मुख्य दो
कि उसमे भारतीय संस्कृति का पाठ न पढ़ाया जाकर बच्चों को पाश्च
में रंगा जाता है। वे अपनी परम्परागत संस्कृति से दूर हो जाते हैं। इ
वाली हानि के सम्बन्ध में गांधी जी ने लिखा है: "यदि किसी स्थि
जाकर एक पीढ़ी अपने पूर्वजों के प्रयत्नों से बिल्कुल अचेत हो जात
अपनी संस्कृति पर लज्जा करने लगती है, तो वह नष्ट हो जाती है।"[2]
गांधी जी ने अक्षरज्ञान से अधिक महत्त्व शिक्षा के सांस्कृतिक पहलू को
इसीलिये बेसिक शिक्षा में भारतीय शिल्पों को स्थान दिया गया है और
को सामाजिक परिस्थितियों के अनुकूल बनाया गया है।

४. त्रिविधि विकास—प्रचलित शिक्षा-प्रणाली मे केवल बुद्धि के वि
पर बल दिया जाता है और शारीरिक तथा आत्मिक विकास को पूर्णतः उ
की जाती है। अतः इस प्रकार व्यक्ति का केवल एकांगी विकास होता है,
विकास नही। बेसिक शिक्षा में मानसिक, शारीरिक एवं आत्मिक विकास
और पूरा ध्यान दिया गया है। पाठ्य-क्रम के लिये इस प्रकार के विषय
गये हैं जिनसे तीनों प्रकार का विकास होना निश्चित हो जाता है।

५. आर्थिक उद्देश्य—बेसिक शिक्षा में आर्थिक उद्देश्य के दो अभिप्रा
हैं। प्रथम, बच्चों द्वारा बनाई गई वस्तुओं से विद्यालय के व्यय की आंशि

---

1. "I had given the top place to the culture of the heart or the building of character, and I felt confident that moral training could be given to all alike, no matter how different their ages or upbringing."—Mahatma Gandhi : *Autobiography*, p. 408.
2. "If at any stage one generation goes completely out of ouch with the effort of its predecessors or in anywise s ashamed of itself or its culture, it is lost."—*Young ia. March* 20, 1924,

पूर्ति करना। द्वितीय, बेसिक शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् बालकों का बड़े होकर किसी उद्योग के द्वारा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करना।

६. सर्वोदय समाज—आज का भौतिकवादी समाज स्वार्थसिद्धि की नीति की नींव पर खड़ा है। समाज स्पष्ट रूप से दो वर्गों में विभाजित है—धनपति और धनहीन। दोनों ही वर्ग विकृत हैं। एक की विकृति का कारण धन की अधिकता है और दूसरे की विकृति का कारण धन का अभाव। धनपति शोषण की चिता पर खड़े होकर जीवन के आनन्द लूट रहे हैं। धनहीन व्यक्तियों को भर-पेट भोजन और तन ढकने लिये कपड़े भी नसीब नहीं होते हैं।

बेसिक शिक्षा का उद्देश्य इस विकृत समाज के स्थान पर सर्वोदय समाज की स्थापना करना है। सर्वोदय समाज मे स्वार्थ का स्थान परमार्थ, संग्रह की वृत्ति का स्थान त्याग की वृत्ति और शोषण का स्थान सेवा लेगी। इस समाज में श्रम की महत्ता होगी, पैसे की नहीं, और सहयोग तथा स्नेह की भावनायें होगी, ईर्षा और द्वेष की नहीं। इस समाज के निर्माण के लिये बेसिक शिक्षा इस बात पर बल देती है कि बच्चे सामूहिक तथा सहयोगी जीवन व्यतीत करें। इसीलिये बेसिक शिक्षा बच्चों मे त्याग, आत्मविश्वास, समाजसेवा, प्रेम आदि की उच्च भावनाओं को कूट-कूट कर भरने का प्रयत्न करती है।

## बेसिक शिक्षा की विशेषतायें

बेसिक शिक्षा की प्रमुख विशेषतायें निम्नांकित हैं:

१. मनोवैज्ञानिक आधार—बेसिक शिक्षा-प्रणाली का आधार मनोवैज्ञानिक है, क्योंकि इसमें पाठ्य-विषयों की अपेक्षा बालक को प्रधानता दी जाती है। बालक को हस्त-शिल्प का ज्ञान कराया जाता है, जिससे उसकी व्यावहारिक शक्ति को विकसित होने का पूर्ण अवसर प्राप्त होता है। बालक का प्राकृतिक विकास किसी कार्य के द्वारा ही हो सकता है। इस मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण को ध्यान में रख कर बेसिक शिक्षा में हस्तशिल्प को प्रमुखता दी गई है।

२. सामाजिक आधार—बेसिक शिक्षा-प्रणाली का आधार सामाजिक है, क्योंकि इसमें बालक के सामाजिक गुणों का विकास करने का प्रयास किया जाता है। इसी उद्देश्य से बेसिक शिक्षा में पुस्तकीय ज्ञान पर बल नहीं दिया जाता है। शिक्षा किसी आधारभूत शिल्प के चारों ओर केन्द्रित रहती है। इस प्रकार बालकों को एक व्यावहारिक ज्ञान प्रदान किया जाता है। साथ ही हस्त-शिल्प द्वारा उनमें आत्म-संयम, आज्ञा-पालन, सहयोग, सहिष्णुता आदि

गुणों का विकास किया जाता है। इन गुणों के फलस्वरूप वे समाज के उत्तम सदस्य बनते हैं और उसकी प्रगति में योग देते हैं।

३. आर्थिक आधार—बेसिक शिक्षा-प्रणाली का आधार आर्थिक है। इसके पक्ष में दो तर्क उपस्थित किये जा सकते हैं। प्रथम, बेसिक विद्यालयों में छात्रों को किसी शिल्प की शिक्षा दी जाती है। उनके द्वारा बनाई गई वस्तुओं को बेचकर विद्यालय और शिक्षा का व्यय यदि पूर्णरूप से नहीं तो आंशिक रूप से अवश्य निकल आता है। इससे बालकों को शिक्षा प्राप्त करना सुलभ हो गया है। भारत ऐसे निर्धन देश के लिये अंग्रेजी शिक्षा-प्रणाली इतनी मँहगी थी कि साधारण आर्थिक स्थिति के बालक उससे लाभ नहीं उठा पाते थे। द्वितीय, बालक हस्तशिल्प को सीख कर और उसमें प्रवीणता प्राप्त कर स्वतंत्र रूप से जीविकोपार्जन कर सकते हैं। इससे उनके भावी जीवन की आर्थिक समस्याओं का समाधान हो जाता है।

४. हस्तश्रम का महत्त्व—बेसिक शिक्षा में बालक हाथ से काम करने वाले व्यक्तियों को सम्मान की दृष्टि से देखते हैं और हस्तश्रम का महत्व समझते हैं। हमारे देश में सामाजिक व्यवस्था सदैव जात-पाँत के भेदभाव से ओत-प्रोत रही है और छोटे तथा बड़े व ऊँच तथा नीच का भेद जीवन एवं कार्य के प्रत्येक क्षेत्र में उत्पन्न होता है और स्वीकार किया जाता है। उच्च जातियों के व्यक्ति हाथ से काम नहीं करते हैं। इसके विपरीत, निम्न जातियों के व्यक्ति सदैव करते हैं। यही कारण है कि मानसिक कार्य श्रेष्ठ और हाथ का काम निकृष्ट समझा जाता है। "इस प्रकार के विचार और भेदभाव आज कल के नये प्रजातन्त्रवादी वातावरण में नहीं चल सकते हैं और प्रजातन्त्रवादी संस्थाओं की वृद्धि और विकास मे बाधा डालते हैं। हमें ऐसा समाज पैदा करना है, जिसमे जाति, सम्प्रदाय और रंग के संकुचित भेदभाव न रहें। जहाँ सब को बराबर सुविधायें मिलें और जिसमें सब लोगों से यह आशा की जाय कि वे राष्ट्र और देश की उन्नति और कल्याण के लिये प्रयत्नशील रहें। कितनी सेवा कोई देश की कर सकता है उसकी सामाजिक स्थिति पर ही नहीं बल्कि मानसिक श्रम पर भी निर्भर रहता है। हमें देश के उत्पादन में हाथ बटाना है, उसमे वृद्धि करनी है, सम्पत्ति वह नहीं है,जो हम भोगते हैं बल्कि वह है, जो हम पैदा करते हैं और नये निजाम में हाथ पर हाथ रखकर बैठने वालों का कोई स्थान नहीं है। काम ही हमारी पूजा है और सबको अपने हाथों से काम करना सीखना चाहिये।[१]" इन्हीं आवश्यकताओं को ध्यान मे रखकर

१. हंसराज भाटिया : बेसिक शिक्षा क्या है, पृष्ठ ५०-५१।

बेसिक शिक्षा-प्रणाली में हाथ के काम को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। जब छात्र स्वयं अपने हाथों से काम करना सीखते हैं, तब उन्हें हस्तश्रम के प्रति घृणा नहीं रह जाती है और वे उसकी महत्ता को समझने लगते हैं।

५. विद्यालय, गृह और समाज के जीवन में सामंजस्य—वर्तमान शिक्षा-प्रणाली का सर्वश्रेष्ठ दोष यह है कि उसके द्वारा विद्यालय, गृह और समाज के जीवन में सामंजस्य नहीं उपस्थित किया जाता है। बेसिक शिक्षा-प्रणाली इस दोष का निवारण करती है। शिक्षा का अभिप्राय केवल पुस्तकीय ज्ञान प्रदान करना नहीं है। सच्ची शिक्षा वही है, जिसका प्रयोग दैनिक जीवन में किया जा सके। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि व्यावहारिकता ही शिक्षा का प्राण है। हस्तशिल्प की शिक्षा प्राप्त करके बालक के व्यावहारिक ज्ञान में वृद्धि होती है और वह अपने को विद्यालय, गृह और समाज में प्रायः समान वातावरण में पाता है।

६. सहसम्बद्ध शिक्षण बेसिक शिक्षा में अपनाई गई शिक्षण-विधि विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण तथा आधुनिकतम है। इस विधि में बालक की समस्त शिक्षा का माध्यम कोई हस्तशिल्प अथवा क्रिया है। कृषि, कताई-बुनाई, लकड़ी, मिट्टी अथवा चमड़े के काम आदि में से बालक एक कार्य का चयन करके उसको करता है। तत्पश्चात् बालक को उस कार्य से सम्बन्धित अन्य ज्ञान प्रदान किया जाता है। इस प्रकार उसे हस्तकार्य अथवा अन्य क्रियाओं आदि के माध्यम से भाषा, इतिहास, भूगोल, नागरिक शास्त्र, सामान्य विज्ञान, कला आदि की शिक्षा प्रदान की जाती है। विभिन्न विषयों की हस्तशिल्प अथवा क्रिया के माध्यम से शिक्षा देने की विधि को 'सहसम्बद्ध शिक्षण' (Correlated Teaching) कहते हैं। इस विधि का आधार मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त है। 'सहसम्बद्ध शिक्षण' का आधार केवल हस्तकार्य अथवा कला-कौशल ही नहीं है, अपितु शिक्षण को बालक के भौतिक एवं सामाजिक वातावरण से भी सम्बद्ध किया जाता है। इस प्रकार शिक्षा केवल विद्यालय की चहार दीवारी तक ही सीमित नहीं रहती है, अपितु उसका सम्बन्ध विद्यालय के बाहर के प्राकृतिक एवं सामाजिक वातावरण से भी स्थापित हो जाता है।

७. ज्ञान एक अभिन्न-अखंड समष्टि—"बेसिक शिक्षा में ज्ञान एक अभिन्न अखंड समष्टि है और उसका अनेक असम्बद्ध, और कई बार, परस्पर अभिवर्जित विषयों में विभाजन निषिद्ध है।"[1] प्रचलित शिक्षा-प्रणाली के

1. "In Basic Education knowledge is treated as one unified whole and its division into a number of unrelated, and at times mutually exclusive subjects is not favoured."
—H. R. Bhatia : *What Basic Education Means*, p. 17.

अनुसार बालकों को जिन विभिन्न विषयों की शिक्षा दी जाती है, वे प्रायः एक दूसरे से असम्बद्ध होते हैं। फलतः बालक जिस ज्ञान का उपार्जन करता है, वह एक सम्पूर्ण इकाई के रूप में न होकर विभिन्न तथ्यों तथा नियमों का संकलन-मात्र होता है। क्योंकि विभिन्न विषयों का शिक्षण अलग-अलग किया जाता है, इसलिये छात्र उनमें पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करने में असमर्थ रहते हैं। इस प्रकार प्राप्त की हुई शिक्षा न तो छात्रों को संसार तथा जीवन की बातें समझने में सहायता देती है और न उनके व्यवहार तथा आचरण पर ही उत्तम प्रभाव पड़ता है।

बेसिक शिक्षा-प्रणाली में न तो बालक को गीली मिट्टी समझा जाता है जिसे कोई भी रूप दिया जा सके और न उसे रिक्त पात्र ही समझा जाता है, जिसे अध्यापक पुस्तकीय ज्ञान से भर दे। इसके विपरीत, बालक को क्रियाशील प्राणी समझा जाता है जिसमें आत्म-निर्देशन, आत्म-चेतन तथा आत्म-विकास की सामर्थ्य होती है। अतः बेसिक शिक्षा का पाठ्य-क्रम पुस्तकों की सूची न होकर उपयोगी एवं सुसम्बद्ध विषयों का कार्य-क्रम है। बालक को इन सभी विषयों का ज्ञान किसी उपयोगी हस्तशिल्प के द्वारा कराया जाता है। उदाहरणार्थ, लकड़ी का कार्य सिखाते समय बालकों को अच्छी तथा बुरी लकड़ी की पहचान, अच्छी इमारती लकड़ी के गुण, लकड़ी के प्रकार, लकड़ी से बनाई जाने वाली वस्तुओं के नाम तथा उनके चित्र बनाने, लकड़ी के व्यापार, अन्य देशों में उत्पन्न होने वाली लकड़ी और उसके विशेष प्रयोग आदि का व्यावहारिक तथा सुसम्बद्ध ज्ञान प्रदान किया जाता है।

८. बालक प्रधान शिक्षा — बेसिक शिक्षा बालक-प्रधान है। [illegible]

आवश्यक होता है।[1]"

बालक के प्रति बेसिक शिक्षा का यह दृष्टिकोण नवीन नहीं है। रूसो (Rousseau), पेस्टालोज़ी (Pestalozzi), फ्रोबेल (Froebel), एवं हर्बर्ट (Herbart) शिक्षा-शास्त्रियों ने बालको के व्यक्तित्व को सच्चा सम्मान दिया। उन्होंने कहा कि शिक्षा किसी भावी काल के लिये नहीं होती है, अपितु बालक का अपना निजी महत्त्व इसी समय तथा इसी काल मे होता है। "हमारे अपने युग में अमेरिका के बड़े दार्शनिक और शिक्षा-शास्त्री जान ड्यूई (John Dewey) ने बालक-प्रधान शिक्षा की लहर को दार्शनिक रूप और बल दिया जो आज 'नई शिक्षा' (New Education) अथवा 'आधुनिक स्कूल' (Modern School) के नाम से प्रचलित है तथा ड्यूई के विचारों से प्रेरित और ओत-प्रोत है। स्कूल में बालकों के व्यक्तित्व का उतना ही आदर होना चाहिये, जितना बड़ों के व्यक्तित्व का समाज में होता है।[2]"

बेसिक शिक्षा मे इसी सिद्धान्त को स्थान दिया गया है और साथ ही 'आधुनिक बाल-अध्ययन-आन्दोलन' (Modern Child-Study Movement) के इस सिद्धान्त को भी स्वीकार किया गया है कि क्योंकि बालकों में स्वभावगत विभिन्नतायें होती हैं, अतः शिक्षा-प्रणाली, पाठ्य-वस्तु और वातावरण को उनके स्वभाव के अनुकूल बनाया जाय। बेसिक शिक्षा-प्रणाली में बालकों की अभिरुचियों, भावनाओं तथा मानसिक विशेषताओं को ध्यान में रखकर उनकी शारीरिक, बौद्धिक तथा नैतिक शक्तियों का विकास किया जाता है। इस प्रकार बेसिक शिक्षा बालक का सर्वाङ्गीण विकास करने का प्रयास करती है।

६. क्रिया-प्रधान शिक्षा—बेसिक शिक्षा क्रिया-प्रधान है। इसमें सम्पूर्ण ज्ञान का आधार अनुभव माना गया है। इस अनुभव को प्राप्त करने का माध्यम कोई हस्तशिल्प होता है। बालक इस केन्द्रभूत हस्तशिल्प के क्षेत्र में सक्रिय रहते हुए और भी सम्बन्धित अनुभवों को प्राप्त करता है। उदाहरणार्थ, कातना सीखते समय बालक कपास, उसकी खेती, खेत के लिये मिट्टी व पानी, भारत में सूती उद्योग-धन्धों का व्यापार, व्यापार के सम्बन्ध में अंग्रेजों का भारत-आगमन, सूत के पोलों का गिनना आदि बातों का ज्ञान प्राप्त करता है। इस

1. "In the Basic system the centre of education is the child ........The Basic system regards the child as 'the educational customer' whose needs must be studied and understood, catered to and fulfilled."—Hans Raj Bhatia : *op. cit.*, p. 13.

२. हंसराज भाटिया : बेसिक शिक्षा क्या है, पृष्ठ १०

प्रकार उसे कताई के साथ कृषि, भूगोल, रसायन-शास्त्र, इतिहास, गणित आदि के अनुभव प्राप्त होते हैं। यही कारण है कि हस्तशिल्प में लगे हुए बालक बौद्धिक ज्ञान अथवा मानसिक अनुभव भी प्राप्त करते हैं। शिक्षा में यह सिद्धान्त 'करो और सीखो' (Do and Learn) कहा जाता है। पश्चिम के प्रगतिशील देशों में इस सिद्धान्त को अत्यधिक महत्त्व प्रदान किया गया है। अमेरिका के शिक्षा-शास्त्री जान ड्यूई ( John Dewey ) ने इसी सिद्धान्त के आधार पर 'क्रिया-प्रधान विद्यालय' (Activity School) स्थापित किया। किंडरगार्टन, फ्रोबेल एवं मांटेसरी स्कूल भी इसी सिद्धान्त पर आधारित हैं। बेसिक शिक्षा-पद्धति में भी इसी सिद्धान्त का पालन किया जाता है।

यह सिद्धान्त मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से बालक के स्वभाव के अनुकूल है। वह सदैव कुछ न कुछ करते रहना चाहता है। उसके अन्तर में जिज्ञासा, रचना, संचय आदि अनेकों नैसर्गिक प्रवृत्तियाँ होती हैं। बेसिक शिक्षा-प्रणाली में कुछ करने और बनाने पर बल दिया जाता है। अतः इससे बालक की इन नैसर्गिक प्रवृत्तियों और भीतरी माँगों की पूर्ति होती है। परिणामस्वरूप वह इस शिक्षा के प्रति आकर्षित होता है और बेसिक शिक्षा एवं बालक के जीवन में एक सामंजस्य स्थापित हो जाता है। इस प्रकार की शिक्षा अधिक आग्रह-पूर्ण और सप्रयोजन रूप धारण कर लेती है।

१०. शिक्षा का माध्यम : आधारभूत शिल्प—बेसिक शिक्षा का माध्यम कोई आधारभूत शिल्प होता है। यही शिल्प सभी विषयों के अध्ययन का माध्यम होता है। आधुनिक युग के सभी शिक्षा-विशेषज्ञ इस बात को स्वीकार करते हैं कि बालकों को किसी उत्पादक कार्य के द्वारा शिक्षा प्रदान करनी चाहिये क्योंकि इस प्रकार की शिक्षा जीवन से वास्तविक सम्बन्ध स्थापित करती है। शिल्प के कार्य में ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों को एक साथ कार्य करने का अवसर प्राप्त होता है। बालक ईमानदारी से परिश्रम करने का मूल्य समझने लगता है और उसकी व्यावहारिक बुद्धि तथा कुशलता का विकास होता है। इस प्रकार उसके व्यक्तित्व का विकास होता है। जाकिर हुसैन समिति ने बेसिक शिक्षा के महत्व को व्यक्त करते हुए अपने प्रतिवेदन में लिखा है कि इस शिक्षा से बालक का मनोवैज्ञानिक हित होगा। उसे साहित्यिक तथा सैद्धान्तिक प्राचीन शिक्षा-प्रणाली से, जिसके विरुद्ध उसकी आत्मा सदैव विद्रोह किया करती है, मुक्ति प्राप्त होगी। इस शिक्षा के द्वारा बालक केवल साक्षर ही नहीं होगा, अपितु उसकी शारीरिक, बौद्धिक तथा रचनात्मक शक्तियों का भी विकास होगा। इसका अर्थ होगा उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व की शिक्षा।

कुछ व्यक्तियों का विचार है कि बेसिक शिक्षा में शिल्प को स्थान देने का उद्देश्य बालकों को कारीगर बनाना है। इस आधाररहित तर्क का उत्तर देते हुए जाकिर हुसेन समिति के प्रतिवेदन में कहा गया है : "इस नवीन शिक्षा-पद्धति का प्रधान उद्देश्य यह कदापि नहीं है कि बालकों को ऐसे कारीगर बना दिया जाय कि वे यन्त्रवत् कार्य करते रहें वरन् इसका उद्देश्य यह है कि *शिल्प में निहित साधनों को शिक्षा के लिए उपयोग किया जा सके।*" अतः शिल्प में तीन गुणों का होना आवश्यक है :— (१) शिल्प अथवा उत्पादन कार्य ऐसा हो जिसका सम्बन्ध शिक्षा-विज्ञान से हो, (२) इस शिल्प का सम्बन्ध छात्र की क्रियाओं, रुचियों और भावी जीवन से हो, और (३) शिल्प ऐसा हो जिसमें *पाठ्य-क्रम के सम्पूर्ण अङ्गों का समावेश किया सके।*

११. स्वतन्त्रता-प्रधान प्रणाली—बेसिक शिक्षा-प्रणाली में अध्यापकों तथा छात्रों को कार्य करनेको अधिक स्वतन्त्रता रहती है।"जब शिक्षा का लक्ष्य यह समझा जाता है कि नवयुवक स्वच्छन्द और रचनात्मक आत्मक्रियाशीलता द्वारा पूर्णतम सम्भव वृद्धि और विकास पायें, तो छात्रों को पूरी स्वतन्त्रता रहनी चाहिए कि वे अपने आप सोचें, अपने काम का नक्शा अपनी रुचि और इच्छा से बनायें और अपनी शक्ति और रफ्तार से उस नक्शे व योजना को कार्य रूप में परिणत करने की चेष्टा करें।"[1] वर्तमान शिक्षा-पद्धति का प्रमुख दोष यह है कि उसमें आत्म-अभिव्यक्ति तथा रचनात्मक कार्य सम्भव नहीं हैं, क्योंकि उसमे केवल परीक्षा मे उत्तीर्ण होने के संकुचित लक्ष्य से रटने तथा निश्चित अवधि मे तथ्यों पर अधिकार कर लेने पर बल दिया जाता है। बेसिक स्कूलों मे छात्रों को कार्य करने का, कार्य मे रुचि लेने का और कार्य करके लाभप्रद *ज्ञान के अर्जन करने का पूर्ण अवसर प्राप्त होता है।* उनकी व्यक्तिगत माँगों को पूर्ण किया जाता है और वे अनुभव करते हैं कि स्कूल का निर्माण उन्हीं के लिये हुआ है और वह उन्हीं के हित में कार्य कर रहा है। परन्तु उनकी स्वतन्त्रता का अर्थ यह नहीं है कि वे स्कूल में जिस प्रकार चाहें कार्य करें। *उनकी स्वतन्त्रता को दो महत्त्वपूर्ण बातें नियमित करती हैं*—उनके अपने प्रयोग तथा प्रयोजन और उनकी कक्षाओं के अन्य छात्रों का हित। जब छात्र किसी एक निश्चित लक्ष्य की दिशा में कार्य करने का प्रयास करते हैं और जब वे अन्य विद्यार्थियों से मिल-जुलकर, और उनकी रुचि तथा हित को अपने समक्ष रख कर कार्य करते हैं, तब उनकी स्वतन्त्रता, आत्म-संयम और आत्म नियंत्रण मे परिणत हो जाती है। बेसिक शिक्षा मे अनुशासन का अभिप्राय बाह्य प्रतिबन्ध

---

१. हंसराज भाटिया : बेसिक शिक्षा क्या है, पृष्ठ ४७।

तथा दबाव से उत्पन्न की गई व्यवस्था नहीं है, अपितु उसका अर्थ है स्वतन्त्रता
का विवेकपूर्ण प्रयोग।

बेसिक शिक्षा में अध्यापकों को भी पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है। उन्हें न तो
कोई अटल पाठ्यक्रम ही चलाना पड़ता है और न कोई नियमबद्ध पाठ ही
ढ़ाने पड़ते हैं। उन्हें न तो पुस्तकों को समाप्त करने की चिन्ता होती है और
उन्हें परीक्षाओं का भय होता है। वे अपनी इच्छा के अनुसार प्रयोग तथा
रीक्षण कर सकते हैं और ऐसी विधियों एवं उपायों पर विचार कर सकते हैं
ा उन्हें काम में ला सकते हैं, जो उनके मस्तिष्क तथा योग्यता के विकास के
लिए आवश्यक हों और जिनसे स्कूल की आवश्यक माँगें पूर्ण हो सकें। वे
 संचित अनुभव के आधार पर अपने कार्य की विधि में जिस प्रकार का
रिवर्तन करना चाहें कर सकते हैं। सम्पूर्ण पाठ्य-क्रम पर उनका अधिकार
है। अन्य साधारण स्कूलों के अध्यापकों के समान वे इस बात का अनु-
हीं करते हैं कि वे केवल दूसरो के हाथ की कठपुतली हैं और पाठ्य-क्रम
रित करने, पुस्तकों के चयन करने, कार्य-क्रम निश्चित करने तथा परीक्षा
 उनका कोई हाथ नहीं है। इसमे संदेह नहीं कि बेसिक स्कूल मे पाठ्य-क्रम
स्तकें होती हैं, परन्तु उनके कार्य एवं प्रबन्ध में इतना लचीलापन,
 एवं विस्तार होता है कि अध्यापक अपने कार्य मे अपनी इच्छा से
 कर सकते हैं जिससे उनका कार्य उनके जीवन का एक अङ्ग बन
।

शिक्षा के दोष

-शिक्षा-योजना के जिन दोषों की ओर संकेत किया गया है, वे
त हैं :

ोजना विशेष रूप से ग्रामों के लिये है, न कि नगरों के लिये।
ोजना में उत्पादिता-सिद्धान्त (Priniciple of Productivity)
ति है। अत: इसका अनुसरण करने से बेसिक विद्यालय कुटीर-
 मे परिणत हो जायेंगे।
ता-सिद्धान्त से अध्यापकों का नैतिक पतन हो जायगा, क्योंकि वे
ों को फ़ेक्ट्रियों एवं विद्यार्थियों को धनोपार्जन करने के साधन
लगेंगे।
ायुयानों एवं बमों का है और विज्ञानों की अति तीव्र गति से
 रही है। ऐसे युग में कताई और बुनाई के समान मध्यकालीन
 प्रयोग का उपदेश करके भारत की औद्योगिक प्रगति अवरुद्ध
।

५. आधारभूत शिल्प द्वारा समस्त विषयों की शिक्षा दी जानी एक असम्भव बात है।

६. आधारभूत शिल्प की सहायता से न तो बच्चों का सर्वतोमुखी विकास करना सम्भव होगा और न उन्हें सामान्य शिक्षा ही दी जा सकेगी, क्योंकि वर्धा-शिक्षा-योजना में व्यावसायिक तथा बौद्धिक शिक्षा में उचित संतुलन का अभाव है।

७. तकली द्वारा कताई पर आवश्यकता से अधिक ज़ोर दिया गया है। क्योंकि इस कार्य द्वारा अधिक उत्पादन होना सम्भव नहीं है, अत इसमे विद्यार्थियों का समय नष्ट होगा और उनके लिये शिक्षा मंहगी पड़ेगी।

८. वर्धा-शिक्षा-योजना मे भारतीय संस्कृति को सुरक्षित रखने की ओर पूर्ण ध्यान दिया गया है, पर धर्म को शिक्षा में कोई स्थान नहीं दिया गया है। अतः धर्मविहीन बेसिक शिक्षा उसी प्रकार की होगी, जिस प्रकार की आत्माविहीन बुद्धि।

९. बेसिक विद्यालय एक वर्ष में २८८ दिन खुलेंगे। इतने अधिक कार्य दिवस रख कर बच्चों को अत्यधिक श्रम करने के लिये बाध्य किया जायगा।

१०. पाठ्य-क्रम के विभिन्न विषयों के लिये समय का विभाजन अत्यन्त त्रुटिपूर्ण है। शारीरिक-शिक्षा के लिये प्रतिदिन केवल १० मिनट दिये गये हैं, जबकि आधारभूत शिल्प के लिये ३ घटे २०मिनट का समय निर्धारित किया गया है।

११. प्राथमिक शिक्षा पर आवश्यकता से अधिक बल दिया गया है और माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा की उपेक्षा की गई है।

अन्त में हम कह सकते हैं कि "यह योजना काल्पनिक है, एक अनावश्यक विश्वास है, एक मनःसृष्टि है और वास्तविक व्यवहार से परे है। इस योजना में एक सुस्थित शिक्षा-दर्शन की अपेक्षा भावुकता अधिक है। इसे गांधी जी की महानता से प्रभावित व्यक्तियों ने भावुकतावश ही स्वीकार किया है।"[१]

## उपसंहार

बेसिक-शिक्षा-योजना के उपर्युक्त गुण-दोषों के विवेचन के आधार पर हमें यह स्वीकार करने में संकोच नहीं करना चाहिये कि भारत जैसे निर्धन देश के

---

१. भिगरन और शर्मा : हमारे शिक्षा प्रतिवेदन, पृष्ठ ३७

लिये वर्धा-शिक्षा-योजना अत्यधिक कल्याणकारी सिद्ध होगी। वस्तुतः देश के लिये इससे अधिक उत्तम शिक्षा-योजना की कल्पना करना ही ... है। इस योजना की महानतम देन है 'उत्पादक क्रिया का सिद्धान्त'। ... योजना गांधीजी की दूरदर्शिता की प्रतीक और उनकी देश-सेवा तथा तपस्... अनुपम फल है। हमें दृढ़ विश्वास है कि जिस प्रकार उनकी राजनीतिक ... नामों में इस देश की राजनीतिक समस्याओं का समाधान करने के लिये ... तीव शक्ति विद्यमान रहती थी, उसी प्रकार उनकी वर्धा-शिक्षा-योजना में भार... की समस्त शिक्षा-समस्याओं को हल करने की पूर्ण क्षमता है।

## २. विश्व-भारती

श्रीमती ल्यागकार्ड डेक ने एक पत्र में रवीन्द्रनाथ टैगोर को लिखा था: "हम अनुभव करते हैं कि यदि हम आपकी संस्था में न गये होते, तो हमारा भारत-आगमन का कार्य पूर्ण न हुआ होता।" जिस संस्था का श्रीमती डेक ने उल्लेख किया है, वह है 'विश्व-भारती'।

### विश्व-भारती की स्थिति एवं स्थापना

कवि-सम्राट् रवीन्द्रनाथ टैगोर के पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ टैगोर ने १८६१ में बङ्गाल प्रान्त में बोलपुर नामक स्थान के समीप भगवान के भक्तों के लिये एक आश्रम की स्थापना की। यह स्थान बोलपुर रेलवे स्टेशन से दो मील और कलकत्ते से लगभग १०० मील दूर है। हावड़ा से यहाँ की यात्रा में तीन घन्टे लगते हैं। कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने १९०१ में इस आश्रम को एक विद्यालय का रूप प्रदान किया और इसका नाम 'शान्तिनिकेतन' रखा। ६ मई १९२२ को इस शिक्षण संस्था को अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय में परिणत करके, कवि टैगोर ने इसका नाम 'विश्व-भारती' रखा। १९५१ में केन्द्रीय धारा-सभा ने एक अधिनियम पारित करके इसको केन्द्रीय सरकार के संरक्षण में रख दिया है।

### टैगोर के शैक्षिक विचार

शान्तिनिकेतन अथवा विश्व-भारती की स्थापना के कारणों को खोजने के लिये हमें कवि टैगोर के शैक्षिक विचारों का विहंगावलोकन करना पड़ेगा। रवीन्द्रनाथ अपने प्रारम्भिक विद्यार्थी जीवन से ही वर्तमान शिक्षा-प्रणाली से असंतुष्ट थे। उनका यह विश्वास था कि यह शिक्षा बालकों की नैसर्गिक शक्तियों को कुंठित कर देती है। उनके मतानुसार यह

शिक्षा न केवल अपूर्ण अपितु व्यर्थ भी थी, क्योंकि इससे बालकों की प्राकृतिक शक्तियों के विकास मे बाधा पहुँचती है। इस शिक्षा में बालकों के शरीर, मन तथा आत्मा का सतुलित विकास करने की क्षमता नहीं है। टैगोर भी अन्य शिक्षा-शास्त्रियों के समान कृत्रिम वातावरण के विरोधी एवं स्वतन्त्रता के समर्थक थे। उनका अटल विश्वास था कि बालकों को वैयक्तिक स्वतन्त्रता प्रदान करके ही उनके व्यक्तित्व का पूर्ण विकास किया जा सकता है। नियंत्रण इस विकास मे बाधा उपस्थित करता है। शिक्षक का यह कर्त्तव्य है कि वह विद्यार्थियों को किसी कार्य के लिये बाध्य न करे। सच्ची शिक्षा वही है, जो विद्यार्थियों को आत्म-अभिव्यक्ति का अवसर प्रदान करे। शिक्षा का उद्देश्य छात्रों का सर्वांगीण विकास करना है, न कि उनको पाठ्य-पुस्तकों को कण्ठस्थ कराके उनकी नैसर्गिक प्रतिभा को कुंठित करना।

टैगोर प्रकृति के अनन्य उपासक और सच्चे भक्त थे। उनके विचारानुसार प्रकृति ब्रह्म की अभिव्यक्ति है। मानव भी उसी ब्रह्म का अङ्ग है। अतः उनका कथन था कि प्रकृति और मानव में अटूट सम्बन्ध है। उनकी धारणा थी कि प्रकृति के माध्यम से ही मानव को सत्य का आभास हो सकता है। इसीलिये उन्होंने अपनी शिक्षा में प्राकृतिक वातावरण को सर्वोपरि रखा। इस वातावरण मे रहकर ही प्रकृति तथा मनुष्य में घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। उनके मतानुसार प्राकृतिक वातावरण मे रहकर छात्रों के हृदयों मे स्वयं ही सौन्दर्य की भावना का संचार हो जाता है, जिससे आत्मा की कालिमा धुल जाती है और छात्र निष्कपट होकर शनैः शनैः उच्चतर जीवन की ओर अग्रसर होते हुए अन्त मे ईश्वर और उसकी सत्ता का अनुभव करते हैं।

टैगोर भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति के पुजारी थे। वे पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति का भी सम्मान करते थे। किन्तु समकालीन अंग्रेजी शिक्षा-प्रणाली ने भारतीयों को पाश्चात्य आचार-विचारों से इतना अतिरंजित कर दिया था कि वे उस शिक्षा के प्रबल विरोधी हो गये थे। तत्कालीन शिक्षा पर अपने विचारों को व्यक्त करते हुए उन्होंने लिखा है : "व्यापक भूमिका से भ्रष्ट यह शिक्षा अत्यधिक अस्पष्ट तथा असम्पूर्ण है। केवल उसके अभ्यस्त हो जाने के कारण हमे इस बात का अनुभव नहीं होता है। जब हम अन्य देशों के साथ अपने देश की शिक्षा की तुलना करते हैं, तो हमें केवल सामने दिखाई देने वाले दृश्यांश ही दिखाई देते हैं। अदृश्य अंश का हम कोई हिसाब नहीं रखते हैं। हम केवल यह देखते हैं कि अन्य देशों में भी विश्वविद्यालय हैं और हमारे देश में भी हैं।" विदेशी शिक्षा-प्रणाली का यह चित्र अङ्कित करने का उनका अभिप्राय यही था कि उस शिक्षा से भारत का हित नहीं हो सकता था। यह क्यों

इसका स्पष्टीकरण करते हुए टैगोर ने आगे लिखा है : "अंग्रेजी भाषा के घूँघट मे छिपी हुई शिक्षा स्वभाव से ही हमारे हृदय की सहवर्तिनी होकर नहीं चल सकती है। यही कारण है कि हम मे से अधिकांश व्यक्तियों को जितनी शिक्षा प्राप्त है, उतना ज्ञान नहीं प्राप्त होता है। हमारे गृह तथा विद्यालय के मध्य ट्राम अथवा पाँवगाड़ी चलती है, परन्तु हृदय नहीं चलता है। नोटबुकों के शासन से हम मुक्त नहीं हो पाये है। शिक्षा के साथ देश के हृदय का सहज स्वाभाविक तादात्म्य कराने की तैयारियाँ आज तक नहीं की गई हैं।"

शिक्षा के प्रति स्वयं टैगोर का क्या दृष्टिकोण था, इसका आभास हमें उनका "मेरा विद्यालय" ( My School ) पढ़ कर हो जाता है। वे लिखते हैं :

"मैं विश्वास करता हूँ कि बच्चों की अर्द्ध-चेतन बुद्धि उनकी चेतन बुद्धि से अधिक शक्तिशाली होती है। हमारे सबसे महत्वपूर्ण पाठों की अधिक मात्रा हमको इसके द्वारा सिखाई गई है। असंख्यों पीढ़ियों के अनुभव हमारे स्वभाव में इसके द्वारा धीरे-धीरे प्रवेश करा दिये गये हैं, और यह न बिना किसी प्रकार की थकान उत्पन्न किये, अपितु हमको आनन्द देकर। ज्ञान की यह स्वाभाविक मानसिक शक्ति हमारे जीवन का पूर्ण अङ्ग हो जाती है। यह एक लालटेन के समान नहीं है, जो बाहर से जलाई जा सकती है और जिसकी बत्ती बाहर से काटी जा सकती है, पर यह जुगनू के प्रकाश के समान है, जिसे वह अपने जीवन-क्रम के कारण रखता है।

"हम इस संसार मे आये हैं, इमे अपनाने के लिये, केवल इसे जानने के लिये नहीं। हम ज्ञान से शक्ति भले ही प्राप्त कर लें, परन्तु हम मे परिपूर्णता सहानुभूति से ही आ सकती है। श्रेष्ठतम् शिक्षा वह है, जो हमे सूचना का भंडार न बनाकर, हमारे जीवन एवं स्थिति को एकलयता प्रदान करती है।

"स्कूलों में सहानुभूति की शिक्षा की अव्यवस्थित रूप से उपेक्षा ही नहीं की जाती है, वरन् उसका कठोरतापूर्वक दमन भी किया जाता है। हम भूगोल की शिक्षा देने के लिये बालक को मिट्टी से दूर हटाते हैं, व्याकरण की शिक्षा देने के लिये उसको भाषा को उससे छीनते हैं। बालक का स्वभाव अपनी सम्पूर्ण शक्ति से इस अत्याचार का विरोध करता है, परन्तु अन्त में दण्ड के भय से चुप हो जाता है।"

अपने विद्यार्थी-जीवन का वर्णन करते हुए टैगोर ने लिखा है : "हम लोग किसी अजायबघर में रखी हुई निष्प्राण वस्तुओं के समान कक्षा में बैठे रहते थे और पढ़ाये जाने वाले पाठों की, पुष्पों पर ओलों के समान, वर्षा की जाती थी। शिक्षा जीवन के परिवेश से दूर भटक गई थी। प्रकृति के स्वस्थ एवं

पूर्णता की ओर अग्रसर करने वाले प्रभावों से उसका सम्बन्ध समाप्त हो गया था।" इस प्रकार की शिक्षा, जिसका जीवन-प्रवाह से कोई तादात्म्य नहीं है, पूर्णतया अस्वाभाविक एवं निरर्थक है।

तत्कालीन शिक्षा के उपरोक्त दोषों का अवलोकन करके और अपने शैक्षिक विचारों को मूर्त्त रूप प्रदान करने के लिये टैगोर १६०१ में शान्ति-निकेतन में केवल १० छात्रों को लेकर शिक्षा के क्षेत्र में अपना नवीन परीक्षण करने के लिये अवतरित हुए। उन्हें अपने इस कार्य मे इतनी अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई कि १६२२ में इस साधारण विद्यालय ने 'विश्व-भारती' के नाम से एक अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय का रूप ग्रहण किया।

## विश्व-भारती का वातावरण

यह संस्था नगर के कोलाहल से दूर प्रकृति की गोद में एक मनोरम स्थान में है। यह विश्वविद्यालय साधारण विश्वविद्यालयों के समान दीवारों से घिरा हुआ, इमारतों की भीड़-भाड़ का दृश्य उपस्थित नहीं करता है। वस्तुतः यह सामान्य अर्थ में एक विश्वविद्यालय का चित्र प्रस्तुत न करके एक आश्रम का दृश्य उपस्थित करता है। प्रकृति के जिस हृदयाकर्षक एवं शान्तिपूर्ण वातावरण में विश्वभारती स्थित है, उसका वर्णन स्वयं टैगोर के शब्दों में ही किया जा सकता है। उन्होंने लिखा है : "निर्विरोध, निर्विकार वातावरण है इस शान्ति-निकेतन आश्रम के चारों ओर। कहीं-कहीं झाड़ियाँ निकल आई हैं। इनके मध्य मे ऊँचे ताड़ के वृक्ष, काली जामुन के विटप, नये पौधे और चोटियों के घरौंदे दृष्टिगत होते हैं। एकाकी खेतो के मध्य में एक पतली पगडंडी क्षितिज के आँचल मे बसे गाँव की ओर बल खाती चली गई है। घास का गट्ठर उठाये संथाल युवतियाँ कभी-कभी उधर से निकल जाती हैं। इस प्रशान्त स्थली के मध्य निर्वक साल वृक्षों का कुंज है जिसके सघन पत्तों के वातायन से किसी पथिक को मन्दिर के कलश के अग्रभाग को झाँकी मिल सकती है। इस आम्र-आमलक कुंज में साल और महुए के आँचल में बसा है हमारा शान्ति निकेतन।" वस्तुतः सौन्दर्य की पराकाष्ठा है। तनिक कल्पना कीजिये उस लावण्य-पूर्ण वातावरण की तथा वृक्षों की छाया में चाँद, चाँदनी, सितारों और [illegible], उन्मुक्त विहंगों के कलरव का रसास्वादन करते हु[illegible] प्रकृति के स्पन्दन में परमात्मा के अंश का संचार नहीं देखत[illegible]

इसका स्पष्टीकरण करते हुए टैगोर ने आगे लिखा है : "अंग्रेजी भाषा के घूँघट में छिपी हुई शिक्षा स्वभाव से ही हमारे हृदय की सहवर्तिनी होकर नहीं चल सकती है। यही कारण है कि हम में से अधिकांश व्यक्तियों को जितनी शिक्षा प्राप्त है, उतना ज्ञान नहीं प्राप्त होता है। हमारे गृह तथा विद्यालय के मध्य ट्राम अथवा पाँवगाड़ी चलती है, परन्तु हृदय नहीं चलता है। नोटबुकों के शासन से हम मुक्त नहीं हो पाये है। शिक्षा के साथ देश के हृदय का सहज स्वाभाविक तादात्म्य कराने की तैयारियाँ आज तक नहीं की गई हैं।"

शिक्षा के प्रति स्वयं टैगोर का क्या दृष्टिकोण था, इसका आभास हमें उनका "मेरा विद्यालय" ( My School ) पढ़ कर हो जाता है। वे लिखते हैं :

"मैं विश्वास करता हूँ कि बच्चो की अर्द्ध-चेतन बुद्धि उनकी चेतन बुद्धि से अधिक शक्तिशाली होती है। हमारे सबसे महत्वपूर्ण पाठों को अधिक मात्रा हमको इसके द्वारा सिखाई गई है। असंख्यों पीढ़ियों के अनुभव हमारे स्वभाव में इसके द्वारा धीरे-धीरे प्रवेश करा दिये गये हैं, और यह न बिना किसी प्रकार की थकान उत्पन्न किये, अपितु हमको आनन्द देकर। ज्ञान की यह स्वाभाविक मानसिक शक्ति हमारे जीवन का पूर्ण अङ्ग हो जाती है। यह एक लालटेन के समान नहीं है, जो बाहर से जलाई जा सकती है और जिसकी बत्ती बाहर से काटी जा सकती है, पर यह जुगनू के प्रकाश के समान है, जिसे वह अपने जीवन-क्रम के कारण रखता है।

"हम इस संसार में आये हैं, इसे अपनाने के लिये, केवल इसे जानने के लिये नहीं। हम ज्ञान से शक्ति भले ही प्राप्त कर लें, परन्तु हम मे परिपूर्णता सहानुभूति से ही आ सकती है। श्रेष्ठतम् शिक्षा वह है, जो हमे सूचना का भंडार न बनाकर, हमारे जीवन एवं स्थिति को एकलयता प्रदान करती है।

"स्कूलों में सहानुभूति की शिक्षा की व्यवस्थित रूप से उपेक्षा ही नहीं की जाती है, वरन् उसका कठोरतापूर्वक दमन भी किया जाता है। हम भूगोल की शिक्षा देने के लिये बालक को मिट्टी से दूर हटाते हैं, व्याकरण की शिक्षा देने के लिये उसको भाषा को उससे छीनते हैं। बालक का स्वभाव अपनी सम्पूर्ण ... इस अत्याचार का विरोध करता है, परन्तु अन्त में दन्ड के भय से चुप

के लिये ... न करते हुए टैगोर ने लिखा है : "हम लोग
पड़ेगा। ... के समान कक्षा में बैठे रहते थे
शिक्षा-प्रणाली ... वर्षा की जाती
बालकों की नर्स ...

सहकारिता, स्वयं-शासन, सामूहिक जीवन, स्वतंत्रता, आनन्दानुभूति, प्रकृति से सम्पर्क, पारस्परिक सद्भावना और छात्रों तथा अध्यापकों की निकटता पर विशेष बल दिया जाता है, जिससे छात्रों में मानवता का उचित रूप में विकास हो सके। इस विद्यालय में साहित्यिक, सामाजिक, हस्तशिल्प, कला, और संगीत से सम्बन्धित कार्यक्रमों की उत्तम व्यवस्था है। फलस्वरूप छात्रों को आत्म-अभिव्यक्ति एवं आत्म-प्रकाशन का अवसर प्राप्त होता है। वस्तुतः इस विद्यालय में छात्रों को सात्विक अनुभव प्राप्त होता है।

२. शिक्षा-भवन—यह एक कॉलेज है, जिसमें उच्च शिक्षा दी जाती है। इसमें इन्टर आर्ट्स और साइन्स की शिक्षा की व्यवस्था है।

३. विद्या-भवन—यह स्नातक तथा स्नातकोत्तर शिक्षा का कॉलेज है। इसमें विद्यार्थियों के लिये बी० ए०, एम० ए० और पी० एच-डी० की शिक्षा का प्रबन्ध है। इसमें अनुसंधान-कार्य की भी सुविधा है। अनुसन्धान-कार्य भारतीय दर्शन, बौद्ध धर्म और हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, पाली, उर्दू, फारसी, अरबी, बंगला आदि भारतीय भाषाओं पर किया जाता है। विद्या-भवन की स्थापना १९१८ में की गई थी।

४. कला-भवन—इसमें ललित कलाओं, विशेष रूप से चित्र-कला और शिल्प-कला की शिक्षा दी जाती है। इनके अतिरिक्त काढ़ना, पिरोना, बुनना, चमड़े का काम, आदि कलायें सिखाई जाती हैं। इसमें अध्ययन करने वाले छात्र 'फ़ाइन आर्ट एन्ड क्राफ़्ट' में डिप्लोमा तथा सार्टीफ़िकेट की परीक्षायें देते हैं। यह भवन १९१९ में स्थापित किया गया था।

५. शिल्प भवन—यहाँ विभिन्न प्रकार के कुटीर-उद्योगों तथा हस्त-कौशलों की शिक्षा दी जाती है और 'डिप्लोमा कोर्स' की परीक्षायें ली जाती हैं। इसकी स्थापना १९२१ में हुई थी।

६. संगीत-भवन—इनमें संगीत, नृत्य एवं अभिनय की शिक्षा की उत्तम व्यवस्था है।

७. चीन-भवन—इसमें भारतीय छात्रों को चीन की संस्कृति और चीन के छात्रों को भारतीय संस्कृति का अध्ययन करने के लिये प्रोत्साहित किया जाता है।

८. विनय-भवन—यह अध्यापकों के प्रशिक्षण का कॉलेज है। इसमें बी० एड० की डिग्री प्रदान की जाती है।

९. श्रीनिकेतन—यहाँ छात्रों में ग्रामों का पुनर्संङ्गठन करने के कार्य में अभिरुचि उत्पन्न की जाती है। इसके उद्देश्य अधोलिखित हैं:

## विश्व-भारती के उद्देश्य

विश्व-भारती की स्थापना निम्नलिखित उद्देश्यो से की गई है:

१. विभिन्न दृष्टिकोणो से अध्ययन किये गये सत्य के विभिन्न रूपों के ज्ञान के उद्देश्य से मानव-मस्तिष्क का अध्ययन करना।

२. प्राच्य संस्कृतियो मे सामजस्य स्थापित करके उनमें घनिष्टता उ[...] करना।

३. पाश्चात्य विज्ञान तथा संस्कृति का समरूप अध्ययन करना।

४. एशिया मे व्याप्त जीवन-दर्शन एवं एशियाई विचार को दृष्टिकोण [...] रखकर पाश्चात्य देशो से सम्पर्क बढाना।

५. पूर्व तथा पश्चिम मे निकट सम्पर्क स्थापित करके विश्वशान्ति की दशाओं को जन्म देना।

६. सह-बन्धुत्व की भावना का विकास करके पूर्व और पश्चिम के देशों को एकता के सूत्र मे आबद्ध करना।

७. पूर्व और पश्चिम के विचारो के आदान-प्रदान द्वारा ऐसी स्थिति उत्पन्न करना जिससे विश्व-बन्धुत्व को सम्भव हो सके।

८. इन आदर्शों को दृष्टिकोण मे रखते हुए विश्व-भारती में एक ऐसे सास्कृतिक केन्द्र का निर्माण करना जहाँ धर्म, साहित्य, विज्ञान, इतिहास, एव हिन्दू, मुस्लिम, जैन, बौद्ध, ईसाई, सिख, और अन्य सभ्यताओ की कला की खोज तथा अध्ययन किया जा सके, जहाँ इन कलाओ का पश्चिमी देशो की कलाओ से सामंजस्य स्थापित किया जा सके, जहाँ उपयुक्त वातावरण मे रह कर विभिन्न दार्शनिकों तथा विचारको में पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित किया जा सके और जहाँ मानव को ब्रह्म की अनुभूति कराके पूर्णता की ओर ले जाया जा सके।

इन श्रेष्ठ आदर्शों, दार्शनिक विचारो और उच्च उद्देश्यों की पृष्ठ-भूमि मे विश्वभारती का शिलान्यास किया गया था।

## विश्वभारती की संस्थाएँ

विश्वभारती विश्वविद्यालय के अन्तर्गत निम्नाकित शिक्षण सस्थायें हैं:

१. पथ-भवन—यह अपने ढग का एक प्रगतिशील विद्यालय है। इसमें प्राथमिक स्तर से लेकर माध्यमिक स्तर तक की शिक्षा प्रदान की जाती है। इसमे अध्ययन करने वाले छात्रो की आयु साधारणतः ६ वर्ष से १६ वर्ष तक की होती है। इस विद्यालय की शिक्षा का उद्देश्य छात्रों के ज्ञान के विकास के साथ-साथ उनके व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना है। इसमें सहयोग,

सहकारिता, स्वयं-शासन, सामूहिक जीवन, स्वतन्त्रता, प्रानन्दानुभूति, प्रकृति से सम्पर्क, पारस्परिक सद्भावना और छात्रों तथा अध्यापकों की निकटता पर विशेष बल दिया जाता है, जिसमें छात्रों में मानवता का उचित रूप में विकास हो सके। इस विद्यालय में साहित्यिक, सामाजिक, हस्तशिल्प, कला, और संगीत से सम्बन्धित कार्यक्रमों की उत्तम व्यवस्था है। फलस्वरूप छात्रों को आत्म-अभिव्यक्ति एवं आत्म-प्रकाशन का अवसर प्राप्त होता है। वस्तुतः इस *विद्यालय में छात्रों को सात्विक अनुभव प्राप्त होता है।*

२. शिक्षा-भवन—यह एक कॉलेज है, जिसमें उच्च शिक्षा दी जाती है। इसमें इन्टर आर्ट्‌स और साइन्स की शिक्षा की व्यवस्था है।

३. विद्या-भवन—यह स्नातक तथा स्नातकोत्तर शिक्षा का कॉलेज है। इसमें विद्यार्थियों के लिये बी० ए०, एम० ए० और पी० एच-डी० की शिक्षा का प्रबन्ध है। इसमें अनुसंधान-कार्य की भी सुविधा है। अनुसन्धान-कार्य भारतीय दर्शन, बौद्ध धर्म और हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, पाली, उर्दू, फारसी, अरबी, बंगला आदि भारतीय भाषाओं पर किया जाता है। विद्या-भवन की स्थापना १९१८ में की गई थी।

४. कला-भवन—इसमें ललित कलाओं, विशेष रूप से चित्र-कला और शिल्प-कला की शिक्षा दी जाती है। इनके अतिरिक्त काढ़ना, पिरोना, बुनना, चमड़े का काम, आदि कलायें सिखाई जाती हैं। इसमें अध्ययन करने वाले छात्र 'फ़ाइन आर्ट एन्ड क्राफ़्ट' में डिप्लोमा तथा सार्टीफिकेट की परीक्षायें देते हैं। यह भवन १९१९ में स्थापित किया गया था।

५. शिल्प-भवन—यहाँ विभिन्न प्रकार के कुटीर-उद्योगों तथा हस्त-कौशलों की शिक्षा दी जाती है और 'डिप्लोमा कोर्स' की परीक्षायें ली जाती हैं। इसकी स्थापना १९२१ में हुई थी।

६. संगीत-भवन—इनमें संगीत, नृत्य एवं अभिनय की शिक्षा की उत्तम व्यवस्था है।

७. चीन-भवन—इसमें भारतीय छात्रों को चीन की संस्कृति और चीन के छात्रों को भारतीय संस्कृति का अध्ययन करने के लिये प्रोत्साहित किया जाता है।

८. विनय-भवन—यह अध्यापकों के प्रशिक्षण का कॉलेज है। इसमें बी० एड० की डिग्री प्रदान की जाती है।

में ग्रामों का पुनर्संङ्गठन करने के कार्य में
उद्देश्य अधोलिखित हैं:

१. ग्रामों की समस्याओं का अध्ययन करना और देश की जनता को उनके प्रति जागरूक करना।
२. ग्रामों की समस्याओं का समाधान करने में ग्राम-निवासियों की सहायता करना और इस प्रकार उनके स्नेह, सहानुभूति और मित्रता को प्राप्त करना।
३. ग्राम-निवासियों के समक्ष स्वास्थ्य, सफ़ाई तथा सहकारिता के आदर्शों को प्रस्तुत करना और उन्हें कृषि की उत्तम विधियों तथा कुटीर-उद्योग धन्धों की शिक्षा देकर उनके जीवन को अधिक सुखमय तथा व्यवस्थित करना।
४. स्काउटिंग के आदर्शों तथा प्रशिक्षण के आधार पर ग्रामों में प्राथमिक शिक्षा की सुविधाओं को उपलब्ध बनाना और ग्राम निवासियों को उत्तम नागरिकता के लाभ बताना।
५. शिक्षालय के छात्रों में ग्रामों के प्रति सेवा तथा सहानुभूति की भावना को उत्पन्न करना और उन्हें कृषि, पशु-पालन, दुग्ध-शाला, मुर्ग़ी पालन, कताई, बुनाई, लुहार का काम, बढ़ई का काम, चमड़े का काम आदि विषयों का व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करना।

उपर्युक्त के अतिरिक्त विश्वभारती में 'हिन्दी भवन' तथा 'इस्लामी अनुसंधान भवन' भी हैं।

## विश्व-भारती के विभाग

विश्व-भारती में निम्नांकित विभाग हैं:—

१. कृषि-विभाग—यह विभाग कृषि की वैज्ञानिक तथा उन्नत विधियों की प्रदर्शन द्वारा शिक्षा प्रदान करता है। इस विभाग मे शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्र कृषि को अपना व्यवसाय बनाते हैं।

२. दुग्धशाला-विभाग—यह विभाग विश्वविद्यालय के छात्रों के लिये शुद्ध दूध और ताजा मक्खन की व्यवस्था करता है। यह पशु-प्रजनन तथा पशु-पालन की आधुनिकतम विधियों का प्रचार करता है।

३. कुटीर-उद्योग विभाग—इस विभाग में कुटीर उद्योग-धंधों का कार्य सिखाया जाता है। प्रमुख कुटीर उद्योग हैं—कताई, बुनाई, चमड़े का काम लकड़ी का काम, बर्तन बनाने का काम, लाख का काम और जिल्दसाजी।

४. ग्राम-कल्याण विभाग—इसके द्वारा ग्रामवासियों के लाभ के लिये सफ़ाई और स्वास्थ्य सम्बन्धी व्याख्यानों का आयोजन किया जाता है। यह विभाग ग्रामीण जनता को औषधालय, रात्रि-पाठशालाओं एवं सचल पुस्तकालय की भी सुविधा प्रदान करता है।

२. पुस्तकालय विभाग—विश्वभारती मे विभिन्न संस्थाओं के लिये विभिन्न विभागीय पुस्तकालय हैं। एक केन्द्रीय पुस्तकालय भी है जिसमें विभिन्न भाषाओं तथा विषयों की लगभग डेढ़ लाख हस्तलिखित पुस्तकों का संग्रह है।

### विश्वभारती का कार्यक्रम

विश्वभारती का कार्य-क्रम यथोलिखित है :

| | |
|---|---|
| जागरण | ४·३० बजे प्रातः |
| आवास झाड़ना | ४·४० |
| शारीरिक व्यायाम | ४·४५ |
| स्नान | ५·३० |
| कलेवा | ५·५५ |
| उपासना | ६·१५ |
| पठन-पाठन | ६·३०—१०·३० |
| प्रक्षालन | १०·३० |
| मध्याह्न-आहार | १०·४० |
| मध्याह्न विश्राम | १२·१५ |
| व्यक्तिगत शिक्षण | १·५—२ |
| पठन-पाठन | २—४ |
| आवास शुद्धि | ४·१५ |
| जलपान | ४·२५ |
| उपस्थिति लेखन | ४·४० |
| खेल-कूद | ४·४५—५·५५ |
| संध्या-प्रक्षालन | ६ बजे सायं |
| उपासना | ६·२० |
| अध्ययन एवं व्याख्यान | ६·२०—७·४५ |
| रात्रि-भोजन | ८ |
| विश्राम | ६ बजे रात्रि |

उपरिलिखित कार्य-क्रम किस प्रकार चलाया जाता है, इसका विस्तृत वर्णन करते हुए भारत-स्थिति अमरीकी राजदूत चेस्टर बोल्स की पुत्री सिंथिया बोल्स ने अपनी पुस्तक "भारत मेरा घर" में लिखा है : "लगभग ६ बजे प्रातःकाल हम बड़े से भोजन-कक्ष में कलेवा करते थे। नीची-नीची लकड़ी के मेजों के सामने हम पतली बेंचों पर बैठते थे। कलेवे में कोको के साथ ताजा

वास हैं। छात्रों एवं छात्राओं के लिये अलग-अलग छात्रावास बने हुए हैं। सभी छात्रावासों में रहने वाले बालकों तथा बालिकाओं के आराम, भोजन तथा स्वास्थ्य का पूर्ण ध्यान रखा जाता है।

कक्षायें—विश्वभारती में सामान्य विश्वविद्यालयों के समान दीवारों से घिरी हुई कक्षायें नहीं हैं। विद्याध्ययन खुले मैदान में या वृक्षों के नीचे किया जाता है। यदि विद्यार्थी चाहता है, तो वह वृक्षों की डालियों मे भी बैठ कर पढ़ सकता है। वहाँ शिक्षक किस प्रकार अध्यापन कार्य करते हैं और छात्र किस प्रकार विद्या का अर्जन करते हैं, इसका आभास हमें "मेरा विद्यालय" में स्वयं टैगोर के वर्णन से प्राप्त होता है। सतीशचन्द्र राय नामक एक शिक्षक के सम्बन्ध में लिखते हुए, वे कहते हैं : "उसके साथ छात्रों ने इस बात का कभी अनुभव नहीं किया कि वे एक पढ़ाने वाली कक्षा की सीमा के अन्दर बन्द थे। उन्हें ऐसा जान पड़ता था कि उनको पहुँच सब स्थानों पर थी। जब वसन्त ऋतु में साल के वृक्ष पूर्णतया फूलों से लद जाते थे, तब वे उसके साथ जंगल को जाते थे, और वहाँ वह भावना से उन्मत्त होकर उनको अपनी चुनी हुई कवितायें सुनाता था। वह उनके सामने शेक्सपीयर ( Shakespeare ) और ब्राउनिंग ( Browning ) की कवितायें पढ़ा करता था; और अपनी बोलने की आश्चर्यजनक शक्ति से उनको बंगला मे समझाता था। वह बालकों की समझने की शक्ति में कभी अविश्वास नहीं करता था। वह जानता था कि बालकों के लिये अक्षरशः और ठीक-ठीक समझना बिल्कुल आवश्यक नहीं था, अपितु यह कि उनके मस्तिष्क को जागृत करना चाहिये। वह अन्य शिक्षकों के समान केवल पाठ्य-पुस्तकों में लिखी बातें पढ़ाने वाला नहीं था। वह अपनी शिक्षा को व्यक्तिगत बनाता था; वह स्वयं उसका स्रोत था, और इसलिए उसकी शिक्षा में जीवन से सम्बन्धित वे बातें होती थीं, जो जीवित मानव-स्वभाव द्वारा सरलता पूर्वक समझी जा सकती हैं।"

पाठ्य-क्रम—विश्वभारती का पाठ्य-क्रम अति विस्तृत रखा गया है। उसमे सामान्य विषयों के अतिरिक्त, जिनकी शिक्षा भारत के अन्य विश्वविद्यालयों में दी जाती है, संगीत, नृत्य, शिल्प, चित्रकला आदि का समावेश किया गया है। ऐसा करने का अभिप्राय केवल यह है कि छात्र अपनी अभियोग्यताओं तथा अभिरुचियों के समान विषयों का चयन कर सकें जिससे कि उनके व्यक्तित्व का पूर्ण विकास हो।

सामूहिक जीवन—विश्वभारती में सामूहिक जीवन पर विशेष बल दिया जाता है। वे साथ-साथ खाते, खेलते और पर्यटन करते हैं। सामूहिक जीवन को प्रोत्साहित करने के लिये अभिनय, गोष्ठियों आदि की व्यवस्था की गई है।

मक्खन लगी हुई रोटियाँ, जिन पर शक्कर बुरकी हुई होती थी या पूरियाँ म
एक हरी सब्जी मिलती थी। रोज कलेवे के बाद एक छोटी सी गायन-प्रार्थन
सभा होती थी। छात्रो के अलग-अलग दल एक सप्ताह उसका नेतृत्व किया
करते थे। प्रार्थना चुप-चाप होती थी और टैगोर के लिये गीत गाये जाते थे।
सुबह दो-तीन क्लासें होती थीं। लगभग साढ़े ग्यारह बजे हम भोजन करते
थे। भोजन के बाद दो-तीन घन्टे आराम और पढ़ने का समय होता था।
तीसरे पहर फिर क्लासें होती थीं। क्लासों के बाद दो घन्टे खेल होते थे।
सात बजे शाम हजारी के लिये छात्रावास पहुँचना पड़ता था। उसके
बाद हम पढ़ते थे या नृत्य और वाद्य-वादन का अभ्यास करते थे या
लेक्चर, सभा, नाटक आदि देखने जाते थे। लगभग ८'३० पर भोजन होता
था। बुधवार को शान्तिनिकेतन में साप्ताहिक छुट्टी रहती थी।"

**विश्वभारती का विवरण एवं विशेषतायें**

प्रवेश एवं अध्ययन की सुविधायें—विश्वभारती सावास एवं सह-शिक्षा की
संस्था है, और यहाँ न केवल भारत के अपितु सुदूर एशिया तथा यूरोप से भी
छात्र एवं छात्रायें अध्ययन करने आते हैं। इस विश्वविद्यालय में भारत के सभी
भागों के शिक्षक हैं। यहाँ के विद्यार्थियो को एक विशेष सुविधा यह है कि वे
विश्वविद्यालय की एक शिक्षण-संस्था में प्रवेश लेकर अन्य संस्थाओं के शिक्षण
से लाभ उठा सकते हैं और उन्हे इसके लिये कोई शुल्क नहीं देना पड़ता है।
परन्तु इस सुविधा से वे ही छात्र लाभ उठा सकते हैं जो अन्य शिक्षा-संस्थाओं
के अध्यापन के विषयों में विशेष रुचि का प्रमाण दें। विश्वभारती नियमित
और आकस्मिक (Regular and Casual) दोनों प्रकार के छात्रो
को प्रवेश देता है और इनका शिक्षण योग्य अध्यापकों के द्वारा किया
जाता है।

शिक्षकों तथा छात्रों के सम्बन्ध—प्राचीन भारत में गुरु एवं शिष्य में
घनिष्ठ सम्बन्ध था। कवि टैगोर ने विश्वभारती में इस परम्परा को पुनर्जीवित
किया। वहाँ शिक्षकों तथा छात्रों में अति निकट सम्पर्क है। उनमें परस्पर स्नेह
और सौहार्द्र की भावना पाई जाती है। इसके अतिरिक्त शिक्षकों का विद्यार्थियों
पर उसी प्रकार अधिकार है जैसा कि मात-पिता को अपने बालकों पर होता है।
इस घनिष्ठता के साथ साथ कवि ने पश्चिमी स्वतन्त्रता के सिद्धान्तों का साम-
ञ्जस्य स्थापित करने का प्रयास किया है।

छात्रावास—विश्वभारती विश्वविद्यालय में विभिन्न आयु के छात्रों के लिए
पृथक् छात्रावासों की व्यवस्था है। प्रारम्भिक कक्षाओं के छात्रों के लिये, तरुण
छात्रों के लिये तथा अनुशासन करने वाले छात्रों के लिये पृथक्-पृथक् छात्रा-

ता है। छात्रों एवं छात्राओं के लिये अलग-अलग छात्रावास बने हुए हैं। सभी त्रावासों में रहने वाले बालकों तथा बालिकाओं के आराम, भोजन तथा गास्थ्य का पूर्ण ध्यान रखा जाता है।

कक्षायें—विश्वभारती में सामान्य विश्वविद्यालयों के समान दीवारों से घरी हुई कक्षायें नहीं हैं। विद्याध्ययन खुले मैदान में या वृक्षों के नीचे किया जाता है। यदि विद्यार्थी चाहता है, तो वह वृक्षों की डालियों में भी बैठ कर पढ़ सकता है। वहाँ शिक्षक किस प्रकार अध्यापन कार्य करते हैं और छात्र किस प्रकार विद्या का अर्जन करते हैं, इसका आभास हमें "मेरा विद्यालय" में स्वयं टैगोर के वर्णन से प्राप्त होता है। सतीशचन्द्र राय नामक एक शिक्षक के सम्बन्ध में लिखते हुए, वे कहते हैं: "उसके साथ छात्रों ने इस बात का कभी अनुभव नहीं किया कि वे एक पढ़ाने वाली कक्षा की सीमा के अन्दर बन्द थे। उन्हें ऐसा जान पड़ता था कि उनको पहुँच सब स्थानों पर थी। जब वसन्त ऋतु में साल के वृक्ष पूर्णतया फूलों से लद जाते थे, तब वे उसके साथ जंगल को जाते थे, और वहाँ वह भावना से उन्मत्त होकर उनको अपनी चुनी हुई कवितायें सुनाता था। वह उनके सामने शेक्सपीयर (Shakespeare) और ब्राउनिंग (Browning) की कवितायें पढ़ा करता था; और अपनी बोलने की आश्चर्यजनक शक्ति से उनको बंगला में समझाता था। वह बालकों की समझने की शक्ति में कभी अविश्वास नहीं करता था। वह जानता था कि बालकों के लिये अक्षरशः और ठीक-ठीक समझना बिल्कुल आवश्यक नहीं था, अपितु यह कि उनके मस्तिष्क को जाग्रत करना चाहिये। वह अन्य शिक्षकों के समान केवल पाठ्य-पुस्तकों में लिखी बातें पढ़ाने वाला नहीं था। वह अपनी शिक्षा को व्यक्तिगत बनाता था; वह स्वयं उसका स्रोत था, और इसलिए उसकी शिक्षा में जीवन से सम्बन्धित वे बातें होती थीं, जो जीवित मानव-स्वभाव द्वारा सरलता पूर्वक समझी जा सकती हैं।"

पाठ्य-क्रम—विश्वभारती का पाठ्य-क्रम अति विस्तृत रखा गया है। उसमें सामान्य विषयों के अतिरिक्त, जिनकी शिक्षा भारत के अन्य विश्वविद्यालयों में दी जाती है, संगीत, नृत्य, शिल्प, चित्रकला आदि का समावेश किया गया है। ऐसा करने का अभिप्राय केवल यह है कि छात्र अपनी अभियोग्यताओं तथा अभिरुचियों के समान विषयों का चयन कर सकें जिससे कि उनके व्यक्तित्व का पूर्ण विकास हो।

सामूहिक जीवन—विश्वभारती में सामूहिक जीवन पर विशेष बल दिया जाता है। वे साथ-साथ खाते, खेलते और पर्यटन करते हैं। सामूहिक जीवन को प्रोत्साहित करने के लिये अभिनय, गोष्ठियों आदि की व्यवस्था की गई है।

इसी उद्देश्य से प्रत्येक छात्र को प्रार्थना में भाग लेने के लिये कहा जाता है। परन्तु किसी भी विद्यार्थी को भगवान का ध्यान करने के लिये बाध्य नहीं किया जाता है। उसको यह अवश्य सिखाया जाता है कि वह शान्त रहे, जिससे दूसरों के ध्यान में बाधा न उपस्थित हो।

समाज-सेवा—विश्वभारती में छात्रों में समाज-सेवा की भावना को विकसित किया जाता है। वहाँ के छात्र निर्बल, रोगी तथा दुखी विद्यार्थियों की देख-भाल करते हैं। इसके अतिरिक्त वे समीपवर्ती ग्रामों में निवास करने वाले व्यक्तियों के कष्टों को दूर करने का प्रयास करते हैं और निराश जनों के हृदयों में आशा का संचार करते हैं।

अन्य विशेषतायें—विश्वभारती में विद्यार्थियों के अपने डेरी-फार्म, अस्पताल, मन्दिर और कारखाने हैं। वहाँ १६२२ में विश्वभारती मुद्रणालय की स्थापना हुई, जिसके द्वारा विश्वविद्यालय अपने मुद्रण का कार्य स्वयं कर रहा है। विश्वभारती टैगोर के विचारों का प्रचार करने के लिये दो पत्रिकाएँ प्रकाशित करता है; एक अंग्रेजी को और एक हिन्दी की—विश्वभारती क्वार्टरली और विश्वभारती पत्रिका। वहाँ के हिन्दी-भवन का शिलान्यास जनवरी, १६३७ में सी० एफ० एण्ड्रयूज (C. F. Andrews) ने किया था। विश्वविद्यालय में उद्योग-धंधों से सम्बन्धित शिक्षा भी दी जाती है। कपड़ा बुनने के कर्घे भी हैं। पुस्तकालय में असंख्य पुस्तकें हैं। फ्रांस एवं जर्मनी ने पुस्तकें भेंट की हैं। भिन्न-भिन्न लेखक अपनी पुस्तकें वहाँ भेजते हैं। वहाँ के छात्रों को ग्राम-उत्थान के लिये कार्य करने की शिक्षा दी जाती है। वे ग्रामों में जाकर श्रमिकों तथा हरिजनों के लिये कक्षायें चलाते हैं। विश्वभारती में विद्यार्थियों के अपने न्यायालय हैं। वे ही दण्ड देते हैं, पर शारीरिक दण्ड नहीं दिया जाता है।

## उपसंहार

स्वतन्त्र भारत में विश्वभारती ही ऐसा प्रथम विश्वविद्यालय था, जिसका अपना स्वयं का आदर्श एवं विचार था। आज भी यह अपने ढंग का एक निराला शिक्षा-केन्द्र है। यह वास्तव में एक स्वयं-शासित संस्था है। जिन उद्देश्यों से प्रेरित होकर कवीन्द्र रवीन्द्र ने इस सरस्वती-मन्दिर की आधार-शिला रखी थी, वे आज भी वहाँ के वातावरण में दृष्टिगत होते हैं। यद्यपि विश्वभारती टैगोर के संरक्षण से वंचित हो चुका है, परन्तु उनके व्यक्तित्व की छाप उस पर लगी हुई है। उस संस्था की भूमि पर पदार्पण करने वाले व्यक्तियों को उनकी अज्ञात उपस्थिति का अनुभव होता है और वहाँ के काव्य-मय जीवन से उनकी संगीतपूर्ण कविताओं की अनुभूति होती है। विश्व के

भौतिक कोलाहल से दूर अन्तर्राष्ट्रीय बंधुत्व के संदेश को प्रसारित करता हुआ सरस्वती का यह पावन मन्दिर मानव-सभ्यता के उन्नयन मे अपूर्व योग प्रदान कर रहा है। प्राच्य एवं पाश्चात्य संस्कृतियों का यह संगम-स्थल विश्व को सत्य की दिशा में अग्रसर होने के लिये प्रेरणा दे रहा है। भारतीय शिक्षा-परम्पराओं का पोषक बनकर भी यह आधुनिकतम अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय की संज्ञा प्राप्त करने का अधिकारी है।

किन्तु खेद है कि विश्व-बन्धुत्व एवं प्राच्य और पाश्चात्य संस्कृतियों के संतुलित संघिस्थल के रूप में यह विश्वविद्यालय उस लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पाया है और सम्भवतः प्राप्त नहीं कर पायेगा, जिससे प्रेरित होकर कवि सम्राट् टैगोर ने इसकी आधारशिला रखी थी। कारण यह है कि सरकार द्वारा समर्थित बन कर इसका शिक्षण एव पाठ्य-क्रम बहुत कुछ अन्य भारतीय विश्वविद्यालयों के समान हो गया है और इसका लक्ष्य नवीन पाठ्य-क्रम का पूरा करना हो गया है। स्पष्ट रूप से आभास होने लगा है कि धर्म-निरपेक्ष राज्य की अधीनता में यह अपने सास्कृतिक उद्देश्य की पूर्ति में सफल न हो सकेगा।

## ३. अरविन्द-आश्रम

भारत ने सुदूर अतीत मे आध्यात्मिक एवं सात्विक आदर्शों पर आधारित एक महान् संस्कृति का निर्माण किया। देश की पावन भूमि पर जन्म लेने वाले ऋषियों-मुनियों ने इस संस्कृति के पथ को प्रशस्त बनाकर उसकी प्रगति में योग प्रदान किया है। इन्हीं के सतत प्रयास के फलस्वरूप आज भारतीय संस्कृति को मानव-वाद का आधार स्वीकार किया जाता है। श्री अरविन्द घोष की भी इन्हीं महात्माओं में गणना है।

### श्री अरविन्द घोष

श्री अरविन्द का जन्म १८७२ मे कलकत्ता में एक धनी बंगाली परिवार में हुआ था। प्रारम्भ से ही उनको सर्वोत्तम प्रकार की शिक्षा दी गई। पाँच वर्ष की आयु में उन्हें दार्जिलिंग के एक इंगलिश स्कूल में विद्याध्ययन के लिए भेज दिया गया। दो वर्ष उपरान्त उन्हें ज्ञान का अर्जन करने के लिये इंगलैण्ड को रवाना कर दिया गया। वहाँ उन्होने सेण्ट पॉल स्कूल और केम्ब्रिज विश्वविद्यालय में अध्ययन किया। चौदह वर्ष तक पाश्चात्य सभ्यता तथा संस्कृति के मध्य में जीवन व्यतीत करने के कारण वे पाश्चात्य परम्पराओं से पूर्णतया

कर जीवन का महान् उन्नयन करने वाला विचार और मानव-जीवन का घोषित अन्तिम लक्ष्य बनाया गया है। यह समस्त विचार का सार और समस्त धर्म का आधार है। ये सब बातें भारतीय सभ्यता को आध्यात्मिक संस्कृति के सर्वोच्च स्थान पर आसीन कर देती हैं। यह सत्य भारतीय विचार की विशेषता नहीं है। सर्वत्र इसे देखा गया है और इसका अनुसरण किया गया है, परन्तु जब कि अन्य देशों में यह केवल कुछ ही विचारकों का वास्तविक पथ-प्रदर्शक रहा है, भारत में यह सर्व-साधारण का पथ-प्रदर्शक रहा है। भारतीय संस्कृति ने सत्य की अपनी निरन्तर खोज से वह कार्य करने में सफलता प्राप्त की है, जो किसी अन्य संस्कृति द्वारा नहीं प्राप्त की गई है। इसी बात में संसार की अन्य संस्कृतियों की अपेक्षा भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता है। इसने धर्म पर वास्तविक आध्यात्मिकता के आदर्श की छाप लगा दी है। यह कहना ही बिल्कुल असत्य है कि भारत के सामान्य धार्मिक व्यक्ति ने भारतीय धर्म को उच्चतर आध्यात्मिक अथवा आत्मविद्या के सत्यों को नहीं समझा है। इसके विपरीत, भारतीय दर्शन के प्रमुख आध्यात्मिक सत्य, व्यक्तियों के सामान्य मस्तिष्क पर अङ्कित कर दिये गये हैं। माया, लीला आत्मा की अमरता और भौतिक वस्तुओं की निरर्थकता के विचारों से सामान्य मनुष्य और मन्दिर के उपासक उतने ही परिचित हैं, जितना कि एकान्त में रहने वाला दार्शनिक, अपने मठ में रहने वाला साधु और अपनी कुटी में रहने वाला सन्यासी।[1]

भारतीय धर्मों के सम्बन्ध में अपने विचारों को व्यक्त करते हुए श्री अरविन्द ने लिखा है कि समस्त भारतीय धर्मों का एक सामान्य आधारभूत विचार है। वे सब एक सर्वोच्च प्राणी अथवा ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास करते हैं, वह मस्तिष्क, जीवन और शरीर से परे है। वह पूर्ण और अनन्त है। वह एक जीवित आध्यात्मिक सत्य, एक सत्ता, एक शक्ति और एक वास्तविकता है। अपनी योग्यता की मात्रा के अनुसार सभी व्यक्ति उसकी खोज कर सकते हैं, उसे जीवन में और जीवन के उपरान्त अनेकों विधियों से प्राप्त किया जा सकता है। उस सर्वोच्च शक्ति को जानना और उसकी खोज करना भारतीय धर्म

1. "The ideas *Maya, Lila,* divine Immanence are as famil to the man in the street and the worshipper in the tem as to the philosopher in his seclusion, the monk in monastery and the saint in *his hermitage.* The spirit reality which they reflect, the profound experience which they point has permeated the religion, the lite ture, the art, even the popular religious songs of a wh people."—Sri Aurobindo : ***The Unity of Indian Relig***

यह शिक्षा जीवन एवं मानव-जाति के मन तथा आत्मा से और उस समस्त मानवता के मन तथा आत्मा से जिसका कि वह एक अंश है, सत्य सम्बन्ध की स्थापना में सहायता देती है।"

श्री अरविन्द के मतानुसार अन्तःकरण अथवा मानस शिक्षा का प्रमुख अंग है। उन्होंने अन्तःकरण के चार स्तर बताये हैं :—चित्त, मनस, बुद्धि तथा ज्ञान। उनके विचारानुसार मानव की इन शक्तियों में क्रमिक विकास होता रहा है। अतः शिक्षा इस प्रकार की होनी चाहिये कि वह इन शक्तियों को विकसित कर सके। केवल ज्ञान की प्राप्ति ही शिक्षा नहीं है। सच्ची शिक्षा वही है जिसमें मानव का पूर्ण विकास करने की क्षमता हो।

मानव का पूर्ण विकास क्या है ? इस सम्बन्ध में श्री अरविन्द के विचार निम्नांकित हैं :

१. मानव का आध्यात्मिक विकास करके उसमें दिव्यता को कुसुमित करना।
२. मानव की समस्त व्यक्तिगत क्षमताओं एवं विलक्षणताओं को विकसित करके उसमें दिव्य प्रकाश भरना और उसे मानव के स्तर से ऊँचा उठाकर दिव्य पुरुष बनाना।
३. मानव में अन्तर्निहित प्रेम, प्रतिभा एवं सार्वभौमिकता को विकसित करके उसे सृष्टि के सम्पूर्ण सौन्दर्य तथा आनन्द की अनुभूति कराना।

श्री अरविन्द ने अपनी शिक्षा में किसी ऐसे विषय की उपेक्षा नहीं की, जिसमें शैक्षिक अभिव्यक्ति तथा जीवन की क्रियाशीलता के गुण विद्यमान थे। यही कारण है कि उनकी शिक्षा में राजनीति, समाज, व्यापार, साहित्य, कविता, वास्तु-कला और मूर्ति-कला को उचित स्थान प्रदान किया गया। उनका एकमात्र उद्देश्य था, इन सभी विषयों में जीवन का नया संचार करके उनको एक नवीन रूप प्रदान करना। वे इनको इतना अधिक विकसित कर देना चाहते थे कि उनके माध्यम से श्रेष्ठ मानवता तथा आत्मा की पूर्णता का प्रकाश बिल्कुल स्पष्ट रूप से दृष्टिगत हो सके। इस प्रकार उनकी शिक्षा का परम लक्ष्य सम्पूर्ण मानव-जाति का सर्वाङ्गीण विकास करके आध्यात्मिक आधार पर विश्व के समस्त राष्ट्रों की स्थापना करना था।

श्री अरविन्द का कथन था कि शिक्षा में बालक पर किसी प्रकार का प्रतिबंध नहीं लगाना चाहिये, अपितु उसे पूर्ण रूप से स्वतन्त्र रहने देना चाहिये। उनका विश्वास था कि शिक्षा का बालक के स्वभाव के अनुकूल होना आवश्यक है। बालक एक जड़ पदार्थ नहीं है जिसे शिक्षक जिधर भी चाहे ले जाय। वह सभी व्यक्तियों के समान एक स्वयं-विकसित होने वाला प्राणी है। अतः

एक सार्वभौमिक सत्य है। यदि जीवन भ्रम नहीं है, तो वह अनन्त शक्ति के वैभव का प्रदर्शन है। अथवा वह एक साधन है, जिसके द्वारा आत्मा, ज्ञान, श्रद्धा तथा उपासना के माध्यम से अनन्त शक्ति से सम्पर्क स्थापित कर सकता है, उसका अनुभव कर सकता है और स्वयं को उसमें विलीन कर सकता है। यह आत्मा अथवा स्वयंभू प्राणी एक सर्वोच्च वास्तविकता है। इससे यह परिणाम निकलता है कि आत्म-सिद्धि और ईश्वर-सिद्धि प्रत्येक विवेकपूर्ण प्राणी का महान कर्तव्य है। समस्त जीवन और विचार अन्त में आत्म सिद्धि एवं ईश्वर-सिद्धि के साधन हैं।

भारतीय दर्शन और धर्म की अनन्त अनेकरूपता पर श्री अरविन्द ने अपने विचारों को प्रकट करते हुए लिखा है कि भारतीय दर्शन और धर्म की अनन्त अनेकरूपता है। योरुप निवासियों को यह अनेकरूपता; घातवर्द्धक और व्यर्थ जान पड़ती है। परन्तु स्वयं यही अनन्त अनेकरूपता जैसा कि स्वामी विवेकानन्द ने कहा है, श्रेष्ठतर धार्मिक संस्कृति का चिन्ह है। योरुप के लोगों ने सम्पूर्ण मानव-जाति के लिये केवल एक धर्म के पूर्णतया तर्क रहित विचार को घोषित किया है। उन्होंने एक प्रकार के सिद्धान्तों और एक प्रकार के रिवाजों पर जोर दिया है। उन्होंने इस विचार का समर्थन किया है कि समस्त व्यक्तियों को एक ही धर्म स्वीकार करना चाहिये, चाहे उनसे ऐसा करवाने के लिये शक्ति का प्रयोग करना पड़े। यही कारण है कि योरुप में इतनी असहिष्णुता, क्रूरता और बलपूर्ण धर्मान्धता रही है। ऐसी बातें भारतवासियों के स्वतंत्र मस्तिष्क पर कभी दृढ़ अधिकार नहीं कर सकी हैं। मनुष्यों में सर्वत्र समान निर्बलतायें होती हैं। भारत में हिंसा के कार्य, धार्मिक झगड़े और क्रूरता के कार्य हुए हैं, जिनसे मृत्यु भी हुई है, परन्तु ये बातें उस अनुपात में नहीं हुई हैं, जिनमें योरुप में हुई हैं। भारतीय धर्म ने सदैव यह अनुभव किया है कि क्योंकि मनुष्यों के विचार तथा स्वभाव भिन्न हैं, इसलिये उन्हें विचार तथा उपासना की पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिये।

## श्री अरविन्द के शिक्षा-सम्बन्धी विचार

श्री अरविन्द के शिक्षा-सम्बन्धी विचार आध्यात्मिक साधना, ब्रह्मचर्य और योग पर आधारित हैं। उनका विश्वास था कि इस प्रकार की शिक्षा से मानव का पूर्ण विकास किया जा सकता है। उन्होंने लिखा है : "सच्ची एवं वास्तविक शिक्षा केवल वही है, जो मानव की अन्तर्निहित समस्त शक्तियों को इस प्रकार विकसित करती है कि वह उनसे पूर्णरूपेण लाभान्वित होता है। यह शिक्षा जीवन को सफल बनाने में मानव की सहायता करती है। इसके अतिरिक्त

यह शिक्षा जीवन एवं मानव-जाति के मन तथा आत्मा से और उस समस्त मानवता के मन तथा आत्मा से जिसका कि वह एक अंश है, सत्य सम्बन्ध की स्थापना में सहायता देती है।"

श्री अरविन्द के मतानुसार अन्तःकरण अथवा मानस शिक्षा का प्रमुख अंग है। उन्होंने अन्तःकरण के चार स्तर बताये हैं :—चित्त, मनस, बुद्धि तथा ज्ञान। उनके विचारानुसार मानव की इन शक्तियों में क्रमिक विकास होता रहा है। अतः शिक्षा इस प्रकार की होनी चाहिये कि वह इन शक्तियों को विकसित कर सके। केवल ज्ञान की प्राप्ति ही शिक्षा नहीं है। सच्ची शिक्षा वही है जिसमें मानव का पूर्ण विकास करने की क्षमता हो।

मानव का पूर्ण विकास क्या है ? इस सम्बन्ध में श्री अरविन्द के विचार निम्नांकित हैं :

१. मानव का आध्यात्मिक विकास करके उसमें दिव्यता को कुसमित करना।
२. मानव की समस्त व्यक्तिगत क्षमताओं एवं विलक्षणताओं को विकसित करके उसमें दिव्य प्रकाश भरना और उसे मानव के स्तर से ऊँचा उठाकर दिव्य पुरुष बनाना।
३. मानव में अन्तर्निहित प्रेम, प्रतिभा एवं सार्वभौमिकता को विकसित करके उसे *सृष्टि के सम्पूर्ण सौन्दर्य तथा आनन्द की अनुभूति कराना।*

*श्री अरविन्द ने अपनी शिक्षा में किसी ऐसे विषय की उपेक्षा नहीं की,* जिसमें शैक्षिक अभिव्यक्ति तथा जीवन की क्रियाशीलता के गुण विद्यमान थे। यही कारण है कि उनकी शिक्षा में राजनीति, समाज, व्यापार, साहित्य, कविता, वास्तु-कला और मूर्ति-कला को उचित स्थान प्रदान किया गया। उनका एकमात्र उद्देश्य था, इन सभी विषयों में जीवन का नया संचार करके उनको एक नवीन रूप प्रदान करना। वे इनको इतना अधिक विकसित कर देना चाहते थे कि उनके माध्यम से श्रेष्ठ मानवता तथा आत्मा की पूर्णता का प्रकाश बिल्कुल स्पष्ट रूप से दृष्टिगत हो सके। इस प्रकार उनकी शिक्षा का चरम लक्ष्य सम्पूर्ण मानव-जाति का सर्वाङ्गीण विकास करके आध्यात्मिक आधार पर विश्व के समस्त राष्ट्रों की स्थापना करना था।

श्री अरविन्द का कथन था कि शिक्षा में बालक पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं लगाना चाहिये, अपितु उसे पूर्ण रूप से स्वतन्त्र रहने देना चाहिये उनका विश्वास था कि शिक्षा का बालक के स्वभाव के अनुकूल होना आवश्यक है। बालक एक जड़ पदार्थ नहीं है जिसे शिक्षक जिधर भी चाहे ले जाय समान एक स्वयं-विकसित होने वाला प्राणी है। अतः

माता-पिता और शिक्षक का कर्त्तव्य कि वे बालक को अपनी मानसिक, नैतिक और व्यावहारिक शक्तियों को स्वयं तथा स्वतन्त्र रूप में विकसित करने में सहायता दें।[1]

## श्री अरविन्द के शिक्षा-सिद्धान्त

श्री अरविन्द ने निम्नाङ्कित मनोवैज्ञानिक शिक्षा-सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया:

१. शिक्षा का माध्यम—शिक्षा का माध्यम अनिवार्य रूप से मातृभाषा होनी चाहिये।

२. शारीरिक शुद्धि—शिक्षा प्राप्त करने वालों की शारीरिक शुद्धि के प्रति विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये, क्योंकि शरीर के द्वारा ही मानव-धर्म तथा उसके समस्त उद्देश्यों की पूर्ति होती है और शरीर ही मानव को दैवी जीवन एवं आध्यात्मिक जीवन के स्तर पर पहुँच सकता है।

३. ज्ञानेन्द्रियों का विकास—बालकों की ज्ञानेन्द्रियों की शिक्षा (Training of the senses) पर विशेष रूप से बल दिया जाना चाहिये। इस शिक्षा के साधन स्नायु-शुद्धि (Nerve purification) चित्त-शुद्धि एवं मानस-शुद्धि हैं, जो योग-साधन ही के रूप हैं। इस प्रकार की नियमित शिक्षा प्रदान करके बालकों की ज्ञानेन्द्रियों का विकास किया जा सकता है।

४. मानसिक क्षमताओं का विकास—श्री अरविन्द ने मानसिक क्षमताओं के अन्तर्गत स्मृति, निर्णय-शक्ति, तर्क, कल्पना, चिन्तन आदि को स्थान दिया है। उनके मतानुसार बालकों की ज्ञानेन्द्रियों के विकास के पश्चात् उनकी मानसिक क्षमताओं का विकास किया जाना चाहिये। इस विकास का आधार बालकों की अभिरुचियाँ होनी चाहिये। जब तक उनको विभिन्न अभिरुचियों के अनुसार उनको शिक्षा प्राप्त करने का अवसर नहीं मिलेगा, तब तक उनकी मानसिक क्षमताओं का विकास नहीं होगा। यदि शिक्षा को बालकों की अभिरुचियों के अनुकूल बना दिया जाय, तो वह 'स्व-शिक्षा' (Self-Education) का रूप धारण करके बालकों का महान् हित कर सकेगी।

५. पाठ्य-क्रम की रोचकता—बालकों के लिए जो पाठ्य-क्रम निर्धा-

---

1. "Each human being is a self-developing soul and the business of both parent and teacher is to help the child to educate himself, to develop his own intellectual, moral, aesthetic and practical capacities and to grow freely as an organic being, not to be kneaded and pressured into form like an inert plastic material." Sri Aurobindo.

रित किया जाय, वह रोचक होना चाहिये। उसमें जिन विषयों को स्थान दिया जाय, उनमें बालकों को आकृष्ट करने को शक्ति होनी चाहिये। बालक इस प्रकार के विषयों का तल्लीनता से अध्ययन करेंगे और फलस्वरूप उन पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करेंगे। शिक्षक का स्पष्ट कर्त्तव्य है कि वह सर्व प्रथम जीवन, जीवन की क्रियाओं तथा विश्व-ज्ञान में बालकों की रुचि उत्पन्न करे। इस कार्य में सफलता प्राप्त करने के पश्चात् ही वह बालको के ज्ञान-प्राप्ति के साधनों का विकास करे और उन्हें भाषा का सम्पूर्ण ज्ञान कराये। इन परिस्थितियों में ज्ञान तथा अध्ययन की वृद्धि स्वतः ही तीव्र गति से होती चली जायगी।

६. **अध्यापक का स्थान**—श्री अरविन्द के मतानुसार शिक्षा में अध्यापक को निर्देशक, पथ-प्रदर्शक और सहायक के रूप में कार्य करना चाहिये। वह मौन रूप से बालकों की अभिरुचियों का अध्ययन करके और उन अभिरुचियों के अनुसार बालकों के लिये शिक्षा की सामग्री का सकलन तथा प्रस्तुतिकरण करे। उसे स्वयं बालकों को ज्ञान देने का प्रयास नही करना चाहिये और न उन पर बाह्य ज्ञान को लादना ही चाहिये। उसे तो यह प्रयत्न करना चाहिये कि बालक अपनी अभिरुचियों के अनुसार ज्ञान का अर्जन करते हुए 'स्व शिक्षा' के पथ पर अग्रसर हों। इस प्रकार श्री अरविन्द ने अध्यापक को शिक्षा में गौण स्थान दिया है।

७. **बालक का स्थान**—श्री अरविन्द ने बालक को शिक्षा में प्रमुख स्थान दिया है। उनके विचारानुसार बालक का विकास उसकी प्रकृति, अभिरुचि, स्वभाव तथा धर्म के अनुकूल ही किया जाना चाहिये। वह शिक्षा बालक के लिये निरर्थक है जो पूर्व निर्धारित गुणों, आदर्शों, मान्यताओं एवं विशेषताओं के अनुसार आयोजित की जाती है। कारण यह है कि प्रत्येक बालक मे व्यक्तिगत क्षमतायें तथा विलक्षणतायें होती हैं। यदि इनकी अवहेलना करके एक पूर्व सूची के अनुसार बालकों मे किन्हीं गुणों एवं आदर्शों को उत्पन्न करने का प्रयास किया जाता है, तो यह कार्य बालक के लिये अन्यायपूर्ण तथा अहितकर होता है। शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिये—बालकों की अभियोग्यताओं, अभिरुचियों तथा अंतर्हित क्षमताओं की खोज करके उनको पूर्ण रूप से विकसित करना। यदि शिक्षा का उद्देश्य यह नहीं है, तो वह सच्ची शिक्षा कहलाने की अधिकारिणी नहीं है।

८. **अन्तःकरण का विकास**—श्री अरविन्द के मतानुसार अंतःकरण अथवा मानस शिक्षा का प्रमुख माध्यम है। अन्तःकरण के चार स्तर हैं: चित्त, मनस, बुद्धि तथा ज्ञान। 'चित्त' मे मानव-जीवन के गत तथा वर्तमा

अनुभवों का संचय होता है । सरल शब्दों में हम 'चित्त' को 'स्मृति' को भ
कह सकते हैं । शिक्षा ऐसी होनी चाहिए, जिसके द्वारा अन्तःकरण की वि
सम्बन्धी क्रियाशीलता का विकास तथा समृद्ध बनाया जा सके । आ
मनोविज्ञान के अनुसार 'मनस' शक्ति की छठी ज्ञानेन्द्रिय है । यह
कार्य करता है और कल्पना, चिन्तन, मनन आदि का आधार है । शिक्षा
प्रकार की होनी चाहिए जिससे 'मनस' का विकसित करने की सामर्थ्य
'मनस' अपनी क्रियाओं को 'बुद्धि' द्वारा व्यक्त करता है । उदाहरणार्थ—
आलोचना, व्याख्या, निर्णय, निरीक्षण, निष्कर्ष, सामान्यीकरण आदि मा
सिक क्रियाओं की अभिव्यक्ति बुद्धि के द्वारा होती है । शिक्षा का उद्देश्य
क्रियाओं को परिमार्जित करके शुद्ध तथा सत्य रूप प्रदान करना है । 'ज्ञा
मानव की वह शक्ति है जिसे हम साधारण शब्दों में दिव्य-दृष्टि अथवा अन्त
दृष्टि या सत्य का आन्तरिक दर्शन कह सकते हैं । ज्ञान के विकास में
मानव का विकास हुआ है । अतः ज्ञान को विकसित करना भी शिक्षा का
लक्ष्य है । सारांश में शिक्षा का प्रमुख कर्त्तव्य मानव के अन्तःकरण का विका
करना है, क्योंकि इसका विकास करने से इसके चारों स्तरों—चित्त, मनस
बुद्धि तथा ज्ञान का स्वतः ही विकास हो जायगा ।

९. नैतिकता का विकास —श्री अरविन्द का अन्तिम शिक्षा-सिद्धान्त यह है कि शिक्षा को मानव की नैतिकता का विकास करना चाहिये । मनुष्य की नैतिकता से सम्बन्ध रखने वाली तीन मुख्य बातें हैं—उसकी प्रकृति (Nature), उसकी आदतें (Habits), और उसकी भावनायें (Emotions) । शिक्षा का उद्देश्य इन तीनों बातों को शुद्ध तथा सुन्दर बनाकर मानव के हृदय का परिवर्तन करना है । हृदय-परिवर्तन का यह कार्य मौखिक शिक्षा तथा भाषणों के द्वारा सम्पन्न न किया जाकर केवल सुझाव (Suggestion) द्वारा ही किया जा सकता है । अध्यापक का कार्य बालकों को प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से सुझाव देना है । अतः आवश्यक है कि वह ऐसे आदर्शों का अनुसरण करे और ऐसा श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करे कि उसके छात्र प्रतिपल उससे प्रेरणा प्राप्त करके जीवन की उच्चतर अवस्थाओं को प्राप्त होते रहें । भारत के प्राचीन गुरुओं का उदाहरण हमारे समक्ष है । यदि वर्तमान समय के शिक्षक उनके पद-चिन्हों का अनुगमन करें तो वे अति सरलता पूर्वक अपने छात्रों की नैतिकता को श्रेष्ठतर बनाने में योग प्रदान कर सकते हैं । परन्तु केवल इतना ही पर्याप्त नहीं होगा । इसके अतिरिक्त छात्रों के लिये सत्संग तथा धार्मिक शिक्षा की व्यवस्था भी करनी होगी । धार्मिक शिक्षा से श्री अरविन्द का अभिप्राय किसी विशेष धर्म पर आधारित संकीर्ण धार्मिक शिक्षा से न होकर,

अन्य व्यक्तियों, सम्पूर्ण मानवजाति, देश, विश्व तथा सर्व व्यापक ईश्वर की सेवा में जीवन को अर्पित करना है।

### अरविन्द-आश्रम

अपने उपरिलिखित आदर्शों तथा उद्देश्यों को साकार रूप प्रदान करने के लिये श्री अरविन्द ने १६१० में पांडेचेरी में एक 'आध्यात्मिक पुनर्जन्म केन्द्र' की स्थापना की, जो 'अरविन्द आश्रम' के नाम से प्रख्यात है। प्रारम्भ में आश्रम-वासियों की संख्या केवल ८ थी, परन्तु शनैः शनैः इस संख्या में वृद्धि होती चली गई और वह १६२६ में ८०० हो गई। यद्यपि आश्रम-वासियों के बच्चों के लिये १६४० से शिक्षा की व्यवस्था प्रारम्भ करदी गई थी, तथापि इसको सुनियोजित शिक्षा-संस्था की संज्ञा नहीं प्रदान की जा सकती है। इस आश्रम के विकास में मीरा रिचर्ड नामक एक फ्रांसीसी महिला का विशेष हाथ रहा है। इन्हें 'दी मदर' (The Mother) कहा जाता है और ये यहाँ १६२० से हैं। वस्तुतः आश्रम को सुसंगठित तथा विकसित करने का श्रेय इन्हीं को प्राप्त है।

'अरविन्द आश्रम' सन्यासियों का मठ नहीं है और न यहाँ रहने वाले गेरुआ अथवा अन्य कोई विशेष पोशाक ही धारण करते हैं। यह तो आध्यात्मिक शान्ति के इच्छुक जिज्ञासुओं का एक केन्द्र है, जहाँ वे साधकों के रूप में आध्यात्मिक जीवन से लाभान्वित होने के लिये अपने समय का सद् उपयोग करते हैं। वे पृथक्-पृथक् स्थानों पर तपस्या नहीं करते हैं, वरन् एक परिवार के सदस्यों के समान श्री अरविन्द के आदर्शों के अनुसार अपना जीवन व्यतीत करते हैं। किसी भी जाति, वर्ग, लिंग, राष्ट्र, धर्म, तथा वर्ण का व्यक्ति इस परिवार का सदस्य बन सकता है। शर्त केवल यह है कि 'मदर' को इस बात का विश्वास हो जाना चाहिये कि प्रवेश चाहने वाला व्यक्ति श्री अरविन्द के आदर्शों का पालन करने वाला है और उसे आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करने की आन्तरिक प्रेरणा प्राप्त हो चुकी है। आज इस आश्रम में विभिन्न राष्ट्रों तथा जातियों के स्त्री एवं पुरुष पाये जाते हैं। उन सब का श्री अरविन्द के आदर्शों के अनुसार 'मदर' के द्वारा पथ-प्रदर्शन किया जाता है। सभी साधकों का जीवन आध्यात्मिक अनुशासन पर आधारित है। वे मन, वचन, कर्म से इसी जीवन में 'दैवी जीवन' की प्राप्ति के लिये प्रयास करते हैं। प्रत्येक साधक का 'दैवी जीवन' में दृढ़ विश्वास है और वह योग-साधन द्वारा उसकी प्राप्ति में दत्तचित्त रहता है।

साधकों के जीवन का मूल-मंत्र निःस्वार्थ सेवा-भावना से कार्य करना है।

वे जो कुछ भी करते हैं उसे भगवान् को समर्पित करते हैं। सभी साधकों को अपनी योग्यता के अनुसार कुछ न कुछ कार्य करना होता है। इस कार्य के अतिरिक्त उन पर अन्य कोई बन्धन नहीं है। उन्हें अपनी रुचि तथा क्षमता के अनुसार किसी भी कार्य को करने की पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त है। उन्हें सब कार्य स्वयं करने पड़ते हैं, क्योंकि आश्रम मे सेवक रखने का निषेध है।

आश्रम का मूल रूप वही है जो प्राचीन भारत मे ऋषियों के आश्रमो का था, केवल उसको कुछ आधुनिक ढंग दे दिया गया है। आश्रम के केन्द्र मे एक भवन है जिसमे 'मदर' एवं कुछ अन्य प्रमुख साधक रहते हैं। अन्य साधकों के निवास के लिये पृथक् भवन हैं। ये सभी भवन शान्त एवं स्वस्थ वातावरण में हैं। आश्रम वासियों को सभी प्रकार की सुविधायें हैं। उनके लिये पुस्तकालय, वाचनालय, भोजनालय, चिकित्सालय, बैंक, लाड्री, डेरी, प्रेस, इंजीनियरिंग वर्क-शाप, आदि हैं। इन सब का प्रबन्ध 'मदर' के निर्देशन में साधकों द्वारा किया जाता है। आश्रम में कुटीर-उद्योगों, कताई-बुनाई, काष्ठ-कला आदि की व्यवस्था है। इनका संचालन साधकों के द्वारा ही किया जाता है। ये बातें प्रमाणित करती हैं कि यद्यपि आश्रम आध्यात्मिक चिन्तन का स्थान है, तथापि इसमे सांसारिक जीवन की उपेक्षा नही की गई है।

### आश्रम-स्कूल

श्री अरविन्द ने १६४० मे आश्रम के साधकों के बच्चों के लिये शिक्षा की व्यवस्था कर दी थी। १६४३ मे 'आश्रम स्कूल' की स्थापना करके इस कार्य को सुसगठित रूप प्रदान किया गया। आरम्भ मे इसमें केवल ३२ छात्र थे, परन्तु आज इसमें ३०० से अधिक छात्र तथा छात्रायें हैं। ये विभिन्न जातियों, वर्गों, वर्णों तथा राष्ट्रों के हैं। इनमे सबसे अधिक संख्या गुजराती एवं बगाली छात्रों की है। सभी को शिक्षा निःशुल्क दी जाती है। उनको शिक्षा देने वाले आश्रम के साधक ही हैं। इन अध्यापकों को वेतन के रूप में धन नहीं दिया जाता है, अपितु उनका और उनके परिवारो का भरण-पोषण आश्रम के द्वारा किया जाता है।

स्कूल मे सभी सामान्य विषयों के शिक्षण की व्यवस्था है, यथा—गणित, भूगोल, इतिहास, भौतिक विज्ञान, रसायन शास्त्र, चित्रकला आदि। भाषाओं मे अग्रेजी, संस्कृत, तामिल, फ्रेंच, जर्मन आदि के शिक्षण की व्यवस्था है। वयस्कों के लिये भी इन भाषाओं को सीखने का प्रबन्ध किया गया है। प्रवेश लेने वालों मे नियमित (Regular) तथा सामयिक (Casual) दोनों प्रकार के विद्यार्थी हैं। शिक्षा का माध्यम फ्रेंच है। भाषाओं के शिक्षण के लिये छात्रों

को उनके ज्ञान के स्तर के अनुसार विभिन्न समूहों में विभक्त किया जाता है। समान विशेषताओं वाले छात्रों को एक समूह में रखा जाता है और उन्हें उसी प्रकार की विशेषताओं वाले अध्यापक के द्वारा शिक्षा दी जाती हैं। इस प्रकार स्कूल के छात्र अनेकों समूहों के विभाजित हैं। परिणामस्वरूप उनको शिक्षा देने के लिये साधारण स्कूलों की अपेक्षा कहीं अधिक अध्यापक हैं। विज्ञान मे प्रयोगात्मक कार्य करने के लिये उपकरणों से युक्त प्रयोगशालायें हैं। कला एवं सङ्गीत के शिक्षण के लिये भी उत्तम व्यवस्था है। इस स्कूल की शिक्षा का स्तर हमारे देश के हाई स्कूल के स्तर के बराबर है।

आश्रम-स्कूल में सामान्य त्रैमासिक, अर्द्ध-वार्षिक तथा वार्षिक परीक्षाओं को कोई स्थान नहीं दिया गया है। अध्यापक समय-समय पर छात्रो के टेस्ट लेते रहते हैं और उन्हीं की रिपोर्टों के आधार पर छात्रों की एक कक्षा से दूसरी कक्षा को उन्नति की जाती है। यदि कोई छात्र भारत के 'हाई स्कूल', फ्रांस, के 'बैका-लोरियेट' अथवा इंगलैण्ड के 'सीनियर केम्ब्रिज' की परीक्षा में सम्मिलित होने की इच्छा व्यक्त करता है, तो उसको अपना उद्देश्य प्राप्त करने मे शिक्षण की विशेष सुविधायें प्रदान की जाती हैं। इस प्रकार के कुछ छात्र प्रतिवर्ष हो जाते हैं और उन्हें अपनी परीक्षाओं से सम्बन्धित सभी पाठ्य-विषयों की शिक्षा दी जाती है।

श्री अरविन्द शिक्षा ग्रहण करने वाले बालक की स्वतन्त्रता के प्रबल समर्थक थे। आश्रम-स्कूल में इसी सिद्धान्त का पालन किया जाता है। इस बात का पूर्ण प्रयास किया जाता है कि बालक स्वतन्त्र वातावरण में विद्यार्जन करता हुआ अपने व्यक्तित्व तथा आत्मा का पूर्ण विकास करने में सफल हो। हम ऊपर लिख चुके हैं कि आश्रम-स्कूल साधकों के बच्चों को शिक्षा देने के लिये है। अतः स्वाभाविक है कि ये बच्चे अपने माता-पिता के पास रहते हैं। इसके अति-रिक्त स्कूल मे कुछ बाहर के छात्रो को भी प्रवेश दिया जाता है। यदि छात्र पांडेचेरी के हैं, तो वे नगर मे अपने अभिभावकों के साथ रहते हैं। यदि वे किसी अन्य स्थान के होते हैं, तो उन्हे बालकों के उपनिवेश में स्थान दे दिय जाता है। सभी छात्रों का पथ-प्रदर्शन 'मदर' के द्वारा किया जाता है और वे स्वयं उन्हें फ्रेंच की शिक्षा देती हैं।

आश्रम-स्कूल भारत की प्राचीन परम्पराओं पर आधारित एक आधुनिक विद्यालय है। इसमे प्रायः सभी आधुनिक शिक्षा-पद्धतियों को स्थान दिया गय है। इसमे धर्म को कोई स्थान नहीं प्राप्त है। छात्रों को धार्मिक कृत्यों तथ कर्म-काण्डों को करने का निषेध है जिससे कि उनका दृष्टिकोण संकुचित हो जाय। देश के विभाजन के समय से, जब इस पर मुसलमानों ने आक्रमर

किया था, इसमें शारीरिक व्यायाम पर विशेष बल दिया जाने लगा है। स्कूल के छात्रों को ही नहीं, अपितु आश्रम के सभी साधकों को व्यायाम में नियमित रूप से भाग लेना पड़ता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि 'आश्रम-स्कूल' शिक्षा में एक नवीन परीक्षण है और यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि इस परीक्षण को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

### श्री अरविन्द अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय केन्द्र[1]

१९५० में श्री अरविन्द के निधन के पश्चात् उनके शिक्षा-सम्बन्धी आदर्शों को मूर्त रूप प्रदान करने के लिये एक अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय केन्द्र स्थापित करने का विचार किया गया। १९५१ में एक विशेष सम्मेलन (Convention) में निश्चय किया गया कि महायोगी अरविन्द की पुण्य स्मृति में तथा 'मदर' के निर्देशन में एक अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय की स्थापना की जाय जहाँ श्री अरविन्द के आदर्शों के अनुसार मानव जाति को दिव्य-प्रकाश प्राप्त हो सके[2]। ६ जनवरी, १९५२ को इस विश्व-विख्यात शिक्षा-केन्द्र का शिलान्यास किया। वस्तुतः यह 'आश्रम स्कूल' का ही विकसित रूप है, जिसकी स्थापना १९४३ में की गई थी। यह केन्द्र तीन शैक्षिक विभागों—प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्च में विभाजित है। इसमें निम्नाङ्कित पाठ्य-क्रमों के शिक्षण की उपयुक्त व्यवस्था है :

१. शिशु-शिक्षा—शिशु-शिक्षा की व्यवस्था उन बच्चों के लिये है जो चार वर्ष की आयु पूर्ण कर लेते हैं। शिशुओं को तीन वर्ष तक मान्टेसरी तथा अन्य प्रगतिशील पद्धतियों से शिक्षा दी जाती है और उनकी अभिरुचियों को सन्तुष्ट तथा विकसित करने की चेष्टा की जाती है।

२. प्राथमिक शिक्षा—प्राथमिक शिक्षा की अवधि चार वर्ष की है। इसकी व्यवस्था ७ से ११ वर्ष तक की आयु के बच्चों के लिये की गई है। छात्रों को उनकी मातृभाषा, अंग्रेजी, फ्रेंच, सामान्य विज्ञान, गणित, सामाजिक अध्ययन

[1] "Sri Aurobindo International University Centre.

[2] "This Convention resolves that with the purpose of realising one of the most cherished ideals of Sri Aurobindo and of giving concrete shape to what he regarded as one of the best means of preparing humanity to recieve the Supernatural Light, an International University on the lines approved by the Mother, and under her guidance and control, be established in Pondicherry as a fitting memorial to the Master."

और चित्रकला की शिक्षा दी जाती है। खेल, फ़िल्म शो, संगीत आदि कार्य क्रम विशेष रूप से आयोजित किये जाते हैं। शिक्षण-कार्य में अध्यापकों को पूर्ण स्वतन्त्रता है।

३. माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक शिक्षा—इस शिक्षा की अवधि *सात वर्ष की है। पाठ्य-विषयों में मातृभाषा, अंग्रेज़ी, फ्रेंच, गणित, भौतिक-*शास्त्र, रसायन-शास्त्र, प्राकृतिक विज्ञान (वनस्पति-विज्ञान, जीव-विज्ञान, शरीर-विज्ञान, स्वास्थ्य-विज्ञान, भौमिकी(Geology), सामाजिक अध्ययन और चित्र-कला को स्थान दिया गया है। इन विषयों के अतिरिक्त प्रत्येक छात्र को व्याव-सायिक विषयों में से किसी एक विषय का अध्ययन भी करना पड़ता है।

४. विश्वविद्यालय-शिक्षा—विश्वविद्यालय की सामान्य शिक्षा का काल तीन वर्ष है। उसके उपरान्त उच्चतर शिक्षा प्राप्त करने के लिये दो वर्ष और व्यतीत करने पड़ते हैं। अध्ययन के विषय हैं—विश्व-एकीकरण (World Integration) अथवा अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध (International Relations), भारतीय तथा पाश्चात्य दर्शन, मनोविज्ञान, समाज-शास्त्र, सभ्यता का इतिहास, अंग्रेज़ी साहित्य, जीवन का विज्ञान (Science of Life), गणित, भौतिक-शास्त्र, रसायन-शास्त्र, विज्ञान का इतिहास और फ्रेंच साहित्य। अन्तिम पाँच विषयों की शिक्षा फ्रेंच के माध्यम से और शेष की अंग्रेज़ी के माध्यम से दी जाती है।

५. व्यावसायिक शिक्षा—व्यावसायिक शिक्षा अधांकित विषयों में दी जाती है—काष्ठ-कला, सामान्य मेकेनिकल और एलेक्ट्रिकल इंजीनियरिंग, फोटोग्राफ़ी, चित्रकारी, अभिनय, आशुलिपि (Short-hand), टंकन(Type-writing), व्यावसायिक पत्र-व्यवहार (Commercial Correspondence) सूची-शिल्प-कार्य (Embroidery) सिलाई, कुटीर-उद्योग, शिल्प-कला सम्बन्धी ड्राइंग, भारतीय और यूरोपीय संगीत, नृत्य, उपचारण (Nursing)।

६. वयस्क-शिक्षा—वयस्कों के लिये अंग्रेज़ी, फ्रेंच, जर्मन, हिन्दी, संस्कृत और तामिल की शिक्षा की व्यवस्था है।[1]

'अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय केन्द्र' का उद्देश्य छात्रों के शरीर, मस्तिष्क और जीवन का चतुर्मुखी विकास करना और उन्हें 'दैवी जीवन' के स्तर पर पहुँचाना है। इसलिये योग पर विशेष बल दिया जाता है। केन्द्र में किसी विशेष धर्म से सम्बन्धित धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाती है और न विभिन्न धर्मों के

1. *Sri Aurobindo International University Centre, p. 15.*

## उपसंहार

'श्री अरविन्द अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय केन्द्र' शिक्षा के क्षेत्र म
तथा महत्वपूर्ण परीक्षण है। यहाँ आडम्बर तथा दिखावे का कोई स
नहीं है। जिन महान् भारतीय योगी के नाम पर इस केन्द्र की स्थापना की गई है, उनका नाम इमारत के किसी भाग पर भी अंकित नहीं है। परन्तु वहाँ उनके आदर्शों, उपदेशों, उद्देश्यों और सिद्धान्तों की पूर्ण अभिव्यक्ति होती है। यहाँ भारतीय शिक्षा, संस्कृति तथा साधना को पुनर्जीवित करके वरासन पर प्रतिष्ठित किया गया है। सम्पूर्ण जीवन की शिक्षा प्रदान करता हुआ, छात्रों को विश्व-बन्धुत्व तथा पूर्ण मानवता की ओर अग्रसर करता हुआ और श्री अरविन्द के शिक्षा दर्शन को व्यावहारिक रूप देता हुआ यह केन्द्र सम्पूर्ण विश्व में प्रकाश एवं अध्यात्मवाद की किरणों को विकीर्ण कर रहा है।

## ५. गुरुकुल शिक्षा प्रणाली

शिक्षा व्यक्ति के सर्वाङ्गीण विकास, सामाजिक और राष्ट्रीय प्रगति तथा सभ्यता और संस्कृति के उत्थान के लिये अनिवार्य है। भारतवासियों ने शिक्षा के इस गहन महत्व को समझ लिया था। इसी के फलस्वरूप भारत के सुदूर अतीत में भी गुरुकुलों में शिक्षा की सुन्दर व्यवस्था की गई थी। वेदों में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि उस समय भी भारत में संगठित रूप में गुरुकुलों में शिक्षा दी जाती थी। छान्दोग्य उपनिषद् से ज्ञात होता है कि बालक गुरु-गृह में रहकर विद्याध्ययन करते थे।

### प्राचीन गुरुकुल-शिक्षा-प्रणाली

जैसा कि हम ऊपर संकेत कर चुके हैं, प्राचीन समय में बालक गुरु के गृह अथवा कुल में रहकर विद्यार्जन करते थे। इन गुरुकुलों की आधुनिक विद्यालयों के समान भव्य अट्टालिकायें नहीं होती थीं। ये तो जनपद के कोलाहल से दूर, नैसर्गिक सौन्दर्य के सुरभित घने वन, प्रकृति के सुरम्य कक्ष तथा मनोरम पर्वतों की कन्दराओं में स्थित होते थे। वहाँ नील नभ के नील वितान के नीचे असंख्यों छात्र ऋषियों-मुनियों से उच्च शिक्षा ग्रहण करते थे। लता-पता-परिवेष्टित ऋषि-आश्रम ही प्रकाश की पवित्र एवं दिव्य रश्मियों को प्रसारित करते थे।

ये गुरुकुल ही भारतीय संस्कृति के केन्द्र थे। इसीलिये कवि-सम्राट् रवीन्द्रनाथ टैगोर ने लिखा है कि भारतीय संस्कृति के निर्झर नगरों में नहीं, अपितु

भारत के वनों में बहते हैं। वैदिक एवं बौद्ध काल में भारतीय संस्कृति का विकास राजप्रासादों तथा सचिवालयों में नहीं हुआ, वरन् प्रकृति के नैसर्गिक वैभव के मध्य इन्हीं गुरुकुलों में हुआ। यह संस्कृति शनैः शनैः भारत के प्रत्येक कोने तक फैल गई।

प्राचीन गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली का आधार भारतीय संस्कृति थी। इस शिक्षा का मानव-जीवन के प्रति वही दृष्टिकोण था, जो भारतीय संस्कृति का था। इसका प्रमुख उद्देश्य आत्मा तथा परमात्मा के सम्बन्ध का स्पष्टीकरण और आत्म-ज्ञान तथा आत्मा की परिपूर्णता की प्राप्ति थी। यह व्यक्ति को लौकिक से पारलौकिक की ओर ले जाती थी। यह उसे आत्मा का दर्शन और परब्रह्म की प्राप्ति का मार्ग बताती थी। यह विश्व में जो अक्षुण्ण है उसे पहिचानने तथा उसे प्राप्त करने में व्यक्ति की सहायता करती थी। अतः विद्यार्जन में बाह्य ज्ञान की अपेक्षा आत्म-विद्या अथवा आत्म-ज्ञान पर ही विशेष बल दिया जाता था।

प्राचीन गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली में व्यक्ति ही शिक्षा का केन्द्र था। शिक्षा का परम लक्ष्य व्यक्ति का पूर्ण विकास करके उसे शाश्वत सत्य का साक्षात्कार कराना था। उसका परम ध्येय था व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक शक्तियों को पूर्ण रूप से विकसित करके उसे इस योग्य बनाना कि वह अपने अन्तर में महान् तत्त्व का दर्शन कर सके और अनन्त आत्मा का अङ्ग बनने में सफल हो सके।

गुरुकुलों के छात्रों का जीवन दुरूह अनुशासनों से पूर्ण होता था। उन्हें अपने सम्पूर्ण शिक्षा-काल में ब्रह्मचर्य-जीवन व्यतीत करना पड़ता था। उनकी शारीरिक प्रसाधन सामग्री, मेखला, मृगचर्म और लम्बे केश थे। दण्ड और कमण्डल उनके आभ्यान्तरिक चिन्ह थे। उनके लिये एक निश्चित दिनचर्या का विधान था। उन्हें प्रातः काल ब्रह्म मुहूर्त में उठना पड़ता था। उन्हें गुरु की सेवा करनी पड़ती थी। वे उसकी गौओं को चराते थे। उसके लिये लकड़ियाँ एकत्रित करके लाते थे। छात्रों को नित्य-प्रति अपने भोजन के लिये भिक्षाटन करने जाना पड़ता था। गुरु तथा छात्र में पिता पुत्र का सा सम्बन्ध होता था और गुरु प्रत्येक प्रकार से अपने छात्रों का ध्यान रखता था।

शिक्षा मौखिक रूप से दी जाती थी। गुरु अपने छात्रों को वेदों की शिक्षा देते थे और उनके मन्त्रों की व्याख्या करते थे। शिष्य अपनी शंकाओं का समाधान करने के लिये गुरु से प्रश्न पूछते थे। तर्क तथा वाद विवाद को शिक्षण में विशेष महत्व प्रदान किया जाता था। इस प्रकार इन्द्रिय-संयम और पूजा-पाठ करते हुए छात्र गुरु के गृह में रहकर विद्या का उपार्जन करते थे।

कठोर काल ने भारतीय संस्कृति के इन केन्द्रों को पद-दलित कर डाला। मुस्लिम शासकों ने भारतीय शिक्षा के उच्च आदर्शों पर वज्रप्रहार किया। शिक्षा की प्राचीन संस्थायें अनन्त में विलीन होने लगीं और उसकी रूप-रेखा बदलती चली गई। अंग्रेजों के आगमन ने भारतीय शिक्षा और उसकी संस्थाओं के अवशेषों को सदैव के लिये धरती पर से हटा दिया। शिक्षा की रूप-रेखा और उसके उद्देश्यों में पूर्ण परिवर्तन हो गया। विद्या का अर्जन जीवन-यापन के लिये किया जाने लगा। भारत के निवासियों को गुरुकुलों में दी जाने वाली शिक्षा एक कहानी बन गई। पाश्चात्य संस्कृति में सराबोर वे अपनी शिक्षा के उच्च आदर्शों से अनभिज्ञ ही नहीं अपितु विमुख भी हो गये। भारतीय संस्कृति से उनका सम्बन्ध समाप्त हो गया।

## आधुनिक काल में गुरुकुलों की स्थापना

एक लम्बे समय के बाद भारतीयों के नेत्रों के आगे से पाश्चात्य संस्कृति का आवरण हटा। बीसवीं शताब्दी का उषा-काल उनके लिये युग-प्रवर्त्तक सिद्ध हुआ। कांग्रेस ने राजनैतिक क्षेत्र में हलचल उत्पन्न कर दी। समाज-सुधारकों ने समाज के प्रत्येक अंग को दोष रहित करने के लिये आन्दोलन प्रारम्भ किये। कतिपय देश-प्रेमियों ने तत्कालीन शिक्षा के विदेशी स्वरूप की अति कटु आलोचना की। उन्होंने उसके दोषों की व्याख्या करके उसे देश के लिये स्पष्ट रूप से अहितकर बताया। उन्होंने भारतीय संस्कृति पर आधारित राष्ट्रीय शिक्षा तथा राष्ट्रीय विद्यालयों के लिये आन्दोलन प्रारम्भ किया। इसी के फलस्वरूप गुरुकुलों की स्थापना की गई और उनमें वैदिक मन्त्रों की मधुर ध्वनियाँ भारत के अतीत की गौरवगाथा गुंजरित करने लगीं।

## गुरुकुलों के लिये आन्दोलन

बीसवीं शताब्दी के उषा-काल में भारत में जिन राजनैतिक, सामाजिक तथा धार्मिक क्रान्तियों का आविर्भाव हुआ, उन्हीं के मध्य गुरुकुलों के निर्माण के आन्दोलन का जन्म हुआ। इसका श्रेय स्वामी दयानन्द सरस्वती को प्राप्त है। भारतीय संस्कृति और हिन्दू धर्म के प्रबल समर्थक होने के कारण उन्होंने समकालीन शिक्षा-पद्धति की तीक्ष्ण आलोचना की। उनका कथन था कि यह पद्धति पाश्चात्य संस्कृति से सराबोर होने के कारण भारतीय संस्कृति तथा भारतीय धर्म को समूल नष्ट करने का प्रयास कर रही है। अंग्रेजी शिक्षा के उपासक बनकर इस देश के निवासी अपनी प्राचीन परम्पराओं से दूर होते जा रहे हैं। इस शिक्षा में चरित्र निर्माण का कोई स्थान न होने के कारण भारतीयों के चरित्र का निरन्तर पतन हो रहा है। उन्होंने घोषित किया कि यदि

देश को पतनोन्मुख होने से रक्षा करनी है तो वेदों की शिक्षा की ओर पु जाना पड़ेगा और प्राचीन भारत की गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली को जीवित करन होगा। यद्यपि उनके समय में प्रचलित संस्कृत पाठशालायें भारत की शिक्षा-प्रणाली के अनुसार ज्ञान का प्रसार कर रही थी, परन्तु उन्होंने उनको अनुपयुक्त बताया। इस पक्ष में अपने कारणों को प्रस्तुत करते हुए उन्होंने कहा:

१. इन पाठशालाओं के अध्यापक प्राचीन गुरुओं के समान त्यागी और तपस्वी नहीं हैं।
२. इन पाठशालाओं के प्रति छात्रों का कोई आकर्षण नहीं है, क्योंकि इनकी शिक्षा से उन्हें कोई लाभ नहीं होता है।
३. इनमें अंग्रेजी तथा भारतीय भाषाओं की शिक्षा की व्यवस्था नहीं है।
४. इनमें केवल संस्कृत के अध्ययन तथा अध्यापन पर बल दिया जाता है और इतिहास, भूगोल, ज्योतिष, चिकित्सा आदि के शिक्षण पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता है।
५. इनमें योग्य तथा अनुभवी गुरुओं का प्राय. पूर्ण अभाव है।

तत्कालीन अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति तथा संस्कृत-पाठशालाओं के उपरोक्त दोषों का विश्लेषण करने के पश्चात् स्वामी दयानन्द ने अपने देशवासियों के समक्ष प्राचीन गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली के आदर्श को उपस्थित किया।

## गुरुकुल-शिक्षा-प्रणाली की रूप-रेखा

स्वामी दयानन्द ने जिस शिक्षा-प्रणाली का समर्थन किया वह प्राचीन आश्रम-प्रणाली के आदर्शों पर आधारित होते हुए भी उससे कुछ भिन्न थी। इसका प्रमुख कारण यह था कि स्वामी जी शिक्षा को देश की परिवर्तित परिस्थितियों के अनुकूल बनाना चाहते थे। संक्षेप मे उनके द्वारा प्रतिपादित गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली की रूप-रेखा इस प्रकार थी:

१. आठ वर्ष की आयु के पश्चात् बालकों तथा बालिकाओं को घर पर न रखकर गुरुकुलों में विद्याध्ययन के लिये भेज दिया जाय।
२. बालकों एवं बालिकाओं के लिये पृथक् गुरुकुलों की स्थापना की जाय।
३. इन गुरुकुलों मे ब्रह्मचर्य-जीवन व्यतीत किया जाय।
४. इनमे शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्रों के प्रति समान व्यवहार किया जाय और उनमें किसी प्रकार का कोई अन्तर न समझा जाय।
५. गुरुकुलों की स्थापना जनपद कोलाहल से दूर प्रकृति के सुरम्य कक्ष में की जाय।
६. गुरुओं और शिष्यों के मध्य बहुत समीप का सम्पर्क हो।

७. गुरुकुलों के पाठ्य-क्रम में संस्कृत के साथ-साथ अंग्रेजी, भूगर्भ शास्त्र गणित, ज्योतिष, चिकित्सा आदि की शिक्षा की पूर्ण व्यवस्था की जाय।

८. शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो।

## गुरुकुल-संस्थाओं का निर्माण

स्वामी दयानन्द के शिक्षा-सम्बन्धी आदर्शों से प्रेरित होकर भारत के विभिन्न भागों में गुरुकुलों की स्थापना की गई। इनमें से प्रमुख गुरुकुल अधो-लिखित हैं :

१. गुरुकुल कांगड़ी—इसकी स्थापना १९०३ में पंजाब में स्वामी श्रद्धानन्द के द्वारा की गई थी। १९२४ में इसे उठाकर कांगड़ी (हरिद्वार) ले आया गया। इसके प्रबन्ध तथा संचालन का भार आर्य-प्रतिनिधि सभा पर है। प्रारम्भ में यह एक छोटी सी संस्था थी, परन्तु आज इसने विश्वविद्यालय का रूप धारण कर लिया है। इसमें साधारणतः ६ से ८ वर्ष तक की आयु के बालक प्रवेश करते हैं। इसमें शिक्षा की अवधि १४ वर्ष की है। उसे समाप्त करने के पश्चात् छात्र को 'स्नातक'(Graduate) की उपाधि दी जाती है। दो वर्ष और अध्ययन करके वह 'वाचस्पति' (M. A.) की उपाधि प्राप्त कर सकता है।

छात्रों को होम, यज्ञ, संध्या, उपासना आदि करने पड़ते हैं। उनके लिए शारीरिक व्यायाम अनिवार्य है। पाठ्य-क्रम के अन्तर्गत हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी, हिन्दू संस्कृति तथा आयुर्वेदिक चिकित्सा की शिक्षा की सुन्दर व्यवस्था है। यह शिक्षा भारतीय आदर्शों के अनुसार दी जाती है और उसका रूप विदेशी नहीं होने दिया जाता है। समस्त शिक्षा का माध्यम हिन्दी है। आयुर्वेदिक शिक्षा का स्तर पर्याप्त रूप में ऊँचा है और आयुर्वेदिक उपाधियों को भारत सरकार की मान्यता प्राप्त है। इस शिक्षा की अवधि ५ वर्ष की है और १५ से १६ वर्ष तक की आयु के छात्रों को प्रवेश दिया जाता है।

२. गुरुकुल वृन्दावन—इसकी स्थापना १९०२ में सिकन्दराबाद में की गई थी। १९११ में इसे वहाँ से उठाकर मथुरा के निकट कृष्ण भगवान् की जन्म-भूमि वृन्दावन ले आया गया। इसका प्रबन्ध तथा संचालन उस प्रदेश की आर्य-प्रतिनिधि सभा के द्वारा किया जाता है। यह भी आज गुरुकुल कांगड़ी के समान एक विश्वविद्यालय है और इसमें सामान्य तथा आयुर्वेदिक शिक्षा की व्यवस्था उसी प्रकार की है जिस प्रकार की गुरुकुल कांगड़ी में है।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के उपरान्त उपरोक्त दोनों गुरुकुलों को आशातीत उन्न

हुई है और भारतीय नेताओं ने इनकी मुक्त-कंठ से प्रशंसा की है। इन दोनों विश्वविद्यालयों में न केवल भारत के विभिन्न भागों से अपितु एशिया और अफ्रीका से भी विद्या ग्रहण करने के अभिलाषी छात्र आते हैं।

३. कन्या-गुरुकुल—गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली में ब्रह्मचर्य को विशेष महत्व दिये जाने के कारण सह-शिक्षा का निषेध है। अतः बालकों के समान बालिकाओं के लिये भी गुरुकुलों का निर्माण किया गया है। कन्या-गुरुकुलों में तीन गुरुकुल विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—(१) कन्या-गुरुकुल, देहरादून। यह गुरुकुल कांगड़ी की शाखा है। (२) कन्या-गुरुकुल, सासनी (उत्तर प्रदेश) और (३) आर्य कन्या-महाविद्यालय, बड़ौदा। इसमें शारीरिक शिक्षा पर विशेष बल दिया जाता है।

उपरिलिखित तीनों कन्या-गुरुकुलों के उद्देश्य एवं विशेषतायें लगभग वही हैं जो बालकों के गुरुकुलों की हैं। छात्राओं को सोलह वर्ष की आयु तक ब्रह्मचर्य का पालन और अविवाहित रहना पड़ता है। उन्हें हिन्दू आदर्शों के अनुसार स्त्री-धर्म तथा स्त्री-कर्त्तव्य की विशेष रूप से शिक्षा दी जाती है।

## गुरुकुल-शिक्षा के उद्देश्य

जिन उद्देश्यों, सिद्धान्तों एवं आदर्शों को सम्मुख रख कर भारत में गुरुकुल-शिक्षा-पद्धति की पुनर्स्थापना की गई है, उनका संक्षिप्त विवरण निम्नाङ्कित हैं :—

१. बालकों तथा बालिकाओं की शिक्षा कम से कम आठ वर्ष की आयु से गुरुकुलों में होना।
२. गुरुकुलों को नगर के कोलाहल से दूर सुन्दर प्राकृतिक वातावरण में स्थापित करके छात्रों तथा छात्राओं को नागरिक जीवन की कुरूप छाया से पृथक् रखना।
३. छात्रों को प्राचीन भारतीय आदर्शों के अनुसार शिक्षा देना।
४. छात्रों को प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं हिन्दू धर्म की विशेषताओं का समुचित ज्ञान प्रदान करना।
५. उपरोक्त विशेषताओं के छात्रों के जीवन में व्यावहारिक रूप में चरितार्थ करना।
६. छात्रों का सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक विकास करके, उनमें प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक परम्पराओं तथा आदर्शों के गौरव से परिपूर्ण करना।
७. छात्रों में ब्रह्मचर्य, जप, तप, उपासना आदि के द्वारा काम-प्रवृत्ति पर अधिकार प्राप्त करने की क्षमता उत्पन्न करना।

८. छात्रों की नैसर्गिक प्रतिभाओं तथा शक्तियों का विकास और उनके चरित्र का उत्थान करना।
९. छात्रों को विभिन्न विषयों की शिक्षा देकर उनका मानसिक विकास करना।
१०. उनको व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करके सामाजिक जीवन के अनुकूल बनाना।
११. छात्रों में जन्म, वंश या वर्ण के कारण भेदभाव न करके उनमें समानता और सहयोग की भावना तथा मानवजाति की एकता की चेतना को जागृत करना।
१२. छात्रों को कठोर तथा अनुशासनपूर्ण जीवन व्यतीत करने का अभ्यस्त करके उनमें सहन-शक्ति का निर्माण करना।
१३. *गुरु तथा शिष्य के मध्य निकट सम्बन्ध स्थापित करना।*
१४. सामूहिक शिक्षण के स्थान मे व्यक्तिगत शिक्षण की व्यवस्था करना।
१५. संस्कृत भाषा के साथ-साथ हिन्दी, अंग्रेजी और पाश्चात्य ज्ञान की शिक्षा देना।
१६. भारतीय इतिहास तथा अन्य विषयों मे अनुसधान-कार्य को प्रोत्साहित करना।

## गुरुकुल-शिक्षा की विशेषतायें

भारत के नवनिर्मित गुरुकुलों की शिक्षा की विशेषतायें प्राय: वही हैं, जो प्राचीन गुरुकुलों की शिक्षा की थी। केवल आधुनिक परिवर्तित परिस्थितियों को ध्यान मे रख कर उनमें थोड़ा-सा हेर-फेर कर दिया गया है।

छात्रों को नगर के विलास-पूर्ण जीवन से दूर किसी शान्त स्थान में निर्मित गुरुकुल में दुरुह मर्यादाओं से युक्त साधारण जीवन व्यतीत करना पड़ता है। उन्हें धूम्र तथा मदिरा-पान और मांस-सेवन का निषेध होता है। उनकी पोशाक सादा होती है और उन्हें शिक्षा-काल में ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करना पड़ता है। उनके लिये एक निश्चित कार्यक्रम निर्धारित होता है। उसके अनुसार उन्हें प्रातःकाल उठना, व्यायाम करना तथा होम और उपासना मे भाग लेना पड़ता है।

छात्रों के चरित्र-निर्माण की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है। उनमें कठोरता सहन करने और सहनशीलता तथा सहानुभूति के गुणों को उत्पन्न किया जाता है। उनमें सामुदायिक जीवन, साम्य तथा सहयोग की भावनाओं का विकास किया जाता है। उनमें भारतीय सस्कृति की प्रेरणा कूट-कूट कर

भर दी जाती है। उनका अपने शिक्षकों से निकट सम्पर्क होता है। विकास के साथ साथ विभिन्न प्राच्य तथा पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान की देकर उनका बौद्धिक विकास किया जाता है। उनके आध्यात्मिक वि विशेष बल दिया जाता है।

गुरुकुल आवास शिक्षा-संस्थायें हैं। उनमें सह-शिक्षा का प्रचलन न बालकों तथा बालिकाओं के लिये पृथक् गुरुकुल हैं। उनमें कल्पित कला शिक्षा को कोई स्थान नहीं दिया गया है। शिक्षा निःशुल्क है और माध्यम हिन्दी है। पाठ्य-क्रम में हिन्दी और अंग्रेजी के साथ-साथ प्राच आधुनिक शास्त्रों तथा विज्ञानों को स्थान दिया गया है। शोध-कार्य के पर्याप्त सुविधायें हैं।

## उपसंहार

आधुनिक भारत के गुरुकुल शिक्षा के क्षेत्र में नवीन तथा सफल परी हैं। वे भारत की प्राचीन संस्कृति तथा शिक्षा के महान् उद्देश्यों को पुनर्जी करने में संलग्न हैं। वे भारतीय दर्शन, साहित्य तथा विज्ञानों के संरक्षण प्रसार में अभिनन्दनीय योग प्रदान कर रहे हैं। वे छात्रों को आत्म-नि त्याग और सेवा की दीक्षा देकर उन्हें भारत की नवीन सामाजिक संरचना लिये उपयुक्त बनाने में प्रयत्नशील हैं। वे पाश्चात्य संस्कृति की बेड़ियों में ज हुए भारतीयों में आशा का नव-संदेश प्रसारित कर रहे हैं। वे वस्तुतः भार वासियों के बौद्धिक तथा सांस्कृतिक जागरण के लिये श्लाघनीय कार्य कर रहे हैं

## ५. वनस्थली विद्यापीठ

बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में राष्ट्रीय आन्दोलन के अन्तर्गत राष्ट्रीय शिक्षा का आन्दोलन भी प्रारम्भ किया गया। देश के नेताओं ने प्रचलित शिक्षा-प्रणाली से असन्तुष्ट होकर राष्ट्रीय शिक्षा की व्यवस्था के लिये राष्ट्रीय विद्यालयों का निर्माण प्रारम्भ किया। इन्हीं विद्यालयों में वनस्थली विद्यापीठ का स्थान है।

### विद्यापीठ की स्थिति एवं स्थापना

राजस्थान में वनस्थली नामक एक ग्राम है। यह जयपुर से ४५ मील है। १६२६ में राजस्थान के कुछ कांग्रेसी कार्यकर्ता श्री हीरालाल शास्त्री की अध्यक्षता में इस ग्राम में रह कर समाज-सेवा का कार्य कर रहे थे। वहाँ उन्होंने अपने निवास के लिये 'जीवन-कुटीर' नामक एक आश्रम बना लिया था। उसी

को अपना केन्द्र बनाकर वे लोग ग्राम के निर्धन कृषकों, श्रमिकों और हरिजनों के उत्थान के लिये रचनात्मक कार्य कर रहे थे।

प० हीरालाल शास्त्री की एक पुत्री थी, जिसका नाम शान्ताबाई था। १९३४ में जब शान्ताबाई बारह वर्ष की थी, तब एक दिन उसने यह इच्छा प्रकट की कि *वह बालिकाओं की शिक्षा के लिये एक विद्यालय स्थापित करेगी।* दुर्भाग्यवश १९३५ में अकस्मात ही उसकी मृत्यु हो गई और उसकी इच्छा पूर्ण न हो सकी। अपनी एक मात्र पुत्री की अपूर्ण अभिलाषा को पूर्ण करने के उद्देश्य से पं० हीरालाल शास्त्री ने अक्टूबर, १९३५ में 'जीवन कुटीर' में एक 'शिक्षा-कुटीर' को जन्म दिया। १९३६ में इस 'शिक्षा-कुटीर' का नाम 'राजस्थान बालिका-विद्यालय' रखा गया और १९४२ से वह 'बनस्थली विद्यापीठ' के नाम से विख्यात हुआ।

### छात्रायें तथा भवन

१९३५ में इस *विद्यालय का शिक्षण कार्य ६ बालिकाओं से प्रारम्भ किया* गया था। आज इसमे लगभग ७०० छात्रायें हैं। वे देश के विभिन्न भागों, वर्गों तथा जातियों की हैं। प्रारम्भ मे विद्यालय के सभी भवन कच्चे थे। परन्तु गत वर्षों से वहाँ बहुउद्देशीय विद्यालय, हाई-स्कूल, शिक्षा-भवन, कला-भवन, छात्रावास तथा कुछ अध्यापकों के निवास-स्थान पक्की ईंटों के बन गये हैं। प्रतिवर्ष कुछ पक्के भवनों का निर्माण हो जाता है। विद्यापीठ के लिये बिजली, पोस्ट-आफिस, पानी के नलों एवं टेलीफोन की व्यवस्था कर दी गई है। विद्यापीठ की स्थापना के समय बनस्थली में जीवन व्यतीत करना कठिन था, परन्तु आज वहाँ सभी आवश्यक वस्तुयें अति सुगमता से मिल जाती हैं और जयपुर तथा निवाई स्टेशन तक, जो बनस्थली से पाँच मील है, आवागमन की उत्तम सुविधायें उपलब्ध हो गई हैं। विद्यापीठ का वार्षिक व्यय तीन लाख रुपये से अधिक है।

### विद्यापीठ के शिक्षा-विभाग

बनस्थली विद्यापीठ बालिका-शिक्षा का अखिल भारतीय केन्द्र है। इसमे शिशु-शिक्षा से लेकर स्नातकोत्तर स्तर तक की शिक्षा की व्यवस्था है। विभिन्न स्तरों की शिक्षा प्रदान करने के लिये विद्यापीठ में निम्नांकित शिक्षा-विभाग हैं :

१. प्राथमिक विभाग—इसमे ५ कक्षायें प्राथमिक शिक्षा की हैं। प्राथमिक पाठशाला से सम्बन्धित एक शिशु-कक्षा भी है। इस विभाग का पाठ्यक्रम स्वतन्त्र रूप से निर्धारित किया जाता है।

२. संस्कृता विभाग—इस विभाग में विद्यापीठ द्वारा परीक्षा-प्रमाण पत्र चाहने वाली बालिकाओं की शिक्षा की व्यवस्था है। यह माण-पत्र कक्षा ८ के बाद दिया जाता है।

३. माध्यमिक शिक्षा-विभाग—माध्यमिक शिक्षा के लिये दो प्रकार के विद्यालय हैं :—(१) सामान्य हाई स्कूल, और (२) बहुउद्देशीय विद्यालय। ८ वीं कक्षा उत्तीर्ण होने के उपरान्त छात्रायें दोनों में से किसी भी शिक्षालय में प्रवेश कर सकती हैं।

४. सामान्य हाई स्कूल—इसमें कक्षा ६ और १० हैं। इस स्कूल में अध्ययन करने वाली छात्रायें राजस्थान बोर्ड की हाईस्कूल परीक्षा में सम्मिलित होती हैं।

५. बहुउद्देशीय विद्यालय—यह विद्यालय भारत-सरकार द्वारा संचालित हैं। इसमें कक्षा ६, १० और ११ हैं। छात्राओं को उच्चतर माध्यमिक शिक्षा के त्रिवर्षीय पाठ्यक्रम का अनुसरण करना पड़ता है। पाठ्यक्रम के अन्तर्गत संगीत, कला, हस्तकला और गृह-विज्ञान के शिक्षण की व्यवस्था है। इस विद्यालय की छात्रायें उच्चतर माध्यमिक परीक्षा में उत्तीर्ण होने के पश्चात् बी० ए० में प्रवेश करती हैं। उनके लिये बी० ए० का पाठ्य-क्रम समाप्त करने की अवधि तीन वर्ष है।

६. कॉलेजीय शिक्षा विभाग—कॉलेजीय शिक्षा के अन्तर्गत इन्टर, बी०ए० और एम० ए० स्तर की शिक्षा प्रदान की जाती है। ये परीक्षायें राजस्थान बोर्ड तथा राजस्थान विश्वविद्यालय द्वारा ली जाती हैं। विद्यापीठ में केवल इन्टर आर्ट्स् की व्यवस्था है। एम० ए० स्तर की शिक्षा केवल इतिहास और अर्थशास्त्र में दी जाती है।

७. अन्य शिक्षा विभाग—अन्य शिक्षा विभागों में संगीत (वाद्य तथा गायन) चित्र-कला एवं शारीरिक शिक्षा का समुचित प्रबन्ध है। जो छात्रायें इनमें से किसी शिक्षा के पाठ्य-क्रम का अध्ययन करती हैं, उनकी परीक्षा स्वयं विद्यापीठ द्वारा ली जाती है और उत्तीर्ण होने वाली छात्राओं को डिप्लोमा प्रदान किये जाते हैं। इन डिप्लोमा परीक्षाओं का पर्याप्त सम्मान है।

**विद्यापीठ के लक्ष्य एवं उद्देश्य**

वनस्थली विद्यापीठ बालिका-शिक्षा के क्षेत्र में एक अनुपम परीक्षण है। इसके लक्ष्य एवं उद्देश्य निम्नांकित हैं :

१. प्राचीन भारतीय संस्कृति तथा आदर्शों के आधार पर बालिकाओं को आधुनिक शिक्षा प्रदान करके उनका सर्वांगीण विकास करना।

२. बालिकाओं का शारीरिक, मानसिक तथा चारित्रिक विकास करना।

३. विभिन्न प्रकार के गृह-कार्यों की शिक्षा देकर बालिकाओं को स्वावलम्
बनाना ।
४. बालिकाओं में सहयोग, समाज-सेवा, नागरिकता, देश-प्रेम की भा
नाओं का समावेश करना ।
५. बालिकाओं में स्त्री-स्वातंत्र्य-भावना का विकास करके उन्हें पर्दा प्र
आदि बंधनों से मुक्त करना ।
६. शिक्षा को वाह्य परीक्षाओं एवं बधनो से मुक्त करके बालिकाओं
स्वतन्त्र रूप से अपना संतुलित विकास करने का अवसर प्रदान करन
७. पूर्व की आध्यत्मिक विरासत और पश्चिम की सफलताओं के समन्वय
लिये प्रयत्न करना ।
८. बनस्थली विद्यापीठ के उद्देश्य को इन शब्दों में अङ्कित किया गया है
,"विद्यापीठ का उद्देश्य भारतीय संस्कृति की पृष्ठभूमि में विज्ञान अ
प्रज्ञान के आधार पर व्यक्तित्व का सर्वतोमुखी शारीरिक, नैतिक, बौधि
तथा आध्यात्मिक विकास करने वाली ऐसी सर्वांगपूर्ण शिक्षा की व्यवस्
करना है, जिसके परिणामस्वरूप गतिशील जीवन के अनुरूप सुसं
सुयोग्य और कार्यकुशल नागरिक का निर्माण किया जा सके। छात्र
सफल नागरिक तथा साथ-साथ सफल गृहिणी और मातायें दोनों ब
इस उद्देश्य को लेकर बनस्थली विद्यापीठ आगे आया है।"[1]

### विद्यापीठ की विशेषतायें

बनस्थली विद्यापीठ की कतिपय अनोखी विशेषतायें हैं, जिन पर हम न
प्रकाश डाल रहे हैं :

१. शिक्षा सर्वांगीण, स्वतन्त्र तथा प्रगतिशील है।
२. भारतीय परम्पराओं के अनुसार मर्यादा-पालन, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता
सामाजिक उत्तरदायित्व का समन्वय किया गया है।
३. छात्राओं का जीवन सादा और सरल है।
४. छात्राओं द्वारा कातने का कार्य अनिवार्य रूप से किया जाता है।
५. छात्राओं तथा अध्यापकों के लिये खद्दर पहिनना आवश्यक है।
६. छात्राओं को अपना निजी एवं घरेलू कार्य स्वयं करना पड़ता है जि
उन्हे भावी जीवन मे नौकरी का सहारा न खोजना पड़े। ६ ठी कक्षा
ऊपर की समस्त छात्राओं को भोजन बनाने के कार्य में सहायता
पड़ती है।

---

१. बनस्थली विद्यापीठ, २२ वां कार्य-विवरण, १६५८ पृष्ठ ५१

७. छात्राओं को सामाजिक तथा सामुदायिक कार्य करना अनिवार्य है।
८. छात्राएँ ऊँच-नीच का भेदभाव किये बिना छात्रावास में सामुदायिक जीवन व्यतीत करती हैं।
९. छात्रावास का प्रबन्ध सभी बालिकाओं के सहयोग से किया जाता है।
१०. विद्यापीठ केवल बालिकाओं की शिक्षा-संस्था है। उसमें कोई भी बालक प्रवेश नहीं ले सकता है।
११. बालिकाओं को सर्वतोमुखी शिक्षा देने के विचार से पाठ्य-क्रम के विषयों के अतिरिक्त भोजन बनाना, घरेलू कार्य करना, पीसना आदि भी अनिवार्य रखा गया है।
१२. बालिकाओं को शारीरिक शिक्षा प्रदान करके निडर तथा चुस्त बनाने का प्रयास किया जाता है।
१३. सब बालिकाओं का धन एक सम्मिलित कोष में रखा जाता है और सभी बालिकाओं को उसमें से अपनी आवश्यकतानुसार व्यय करने का अधिकार होता है।
१४. छात्राओं के संरक्षकों से सम्पर्क रखने के लिये प्रति वर्ष 'संरक्षक-सम्मेलन' आयोजित किया जाता है।
१५. "विद्यापीठ उस मार्ग की ओर अग्रहर होने का प्रयास कर रहा है, जहाँ परीक्षाओं, पाठ्य-क्रमों पाठ्य-पुस्तकों, अति निश्चित तथा कठोरता से चलाये जाने वाले दैनिक कार्य-क्रमों और घन्टों की अनुचित प्रधानता न हो एवं शिक्षा वास्तव में घर के से सहयोगी, ऊँचा उठाने वाले और अच्छा बनाने वाले वातावरण में व्यतीत किये जाने वाले जीवन-क्रम का रूप ले ले।"[१]

### पंचमुखी शिक्षा

वनस्थली विद्यापीठ की एक अनुपम विशेषता है, उसकी पंचमुखी शिक्षा। यह बालिकाओं का सर्वतोमुखी विकास करने के लिए एक अनोखी शिक्षा-योजना है। इस योजना के अनुसार उनको निम्नलिखित प्रकार की शिक्षा प्रदान करने का आयोजन किया गया है:

१. शारीरिक शिक्षा
२. बौद्धिक शिक्षा
३. प्रायोगिक शिक्षा
४. कला की शिक्षा

---

१. वनस्थली विद्यापीठ, २२ वाँ कार्य-विवरण १९५८, पृष्ठ ८

५. नैतिक शिक्षा

१. शारीरिक शिक्षा—इस शिक्षा का उद्देश्य बालिकाओं को स्वस्थ, साहसी और निर्भीक बनाना है। इस शिक्षा के कार्य-क्रम के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के शारीरिक व्यायामों और खेलों को स्थान दिया गया है। उदाहरणार्थ सैनिक योग्या (Military Drill), शारीरिक योग्या (Physical Drill) लाठी तलवार, भाला और बल्लम चलाना, लेज़िम, गदका डम्बल, जोड़ी, यौगिक आसन, वालीबाल, रिंगबाल, बास्केटबाल, हैंडबाल, डाजबाल, हाकी, बेडमिंटन फुटबाल, लांग जम्प, हाई जम्प, साईकिल चलाना, घुड़सवारी करना, नाव चलाना, तैरना इत्यादि।

२. बौद्धिक शिक्षा—इस शिक्षा का उद्देश्य छात्राओं का बौद्धिक, मानसिक एवं ज्ञानात्मक विकास करना है। विभिन्न कक्षाओं में विभिन्न विषयों का शिक्षण देते समय इस बात का पूर्ण ध्यान रखा जाता है कि छात्राओं का मानसिक विकास एकाङ्गी तथा संकीर्ण न होकर विशाल एवं व्यापक रूप में हो। इसके अतिरिक्त इस बात पर बल दिया जाता है कि बालिकाओं में स्वयं विचार करने की शक्ति का विकास हो, जीवन तथा संसार के प्रति उनका दृष्टिकोण पूर्ण एवं वैज्ञानिक हो, पुस्तकीय ज्ञान पर आवश्यकता से अधिक बल न दिया जाय और बालिकाओं का व्यक्तित्व पुस्तकों एवं परीक्षाओं से दब न जाय। इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिये बालिकाओं को प्रारम्भ से ही समाज शास्त्र एवं विज्ञान की शिक्षा दी जाती है। भारतीय तथा विश्व इतिहास के शिक्षण पर विशेष बल दिया जाता है। अंग्रेज़ी की शिक्षा कक्षा ६ से प्रारम्भ कर दी जाती है। बालिकाओं को विभिन्न विधियों से भारतीय धर्म, दर्शन और संस्कृति का समुचित ज्ञान दिया जाता है।

३. प्रायोगिक शिक्षा—इस शिक्षा का उद्देश्य बालिकाओं को गृह-कार्य में दक्ष बनाना और उनमें शारीरिक श्रम के प्रति सम्मान उत्पन्न करना है। इस शिक्षा के अन्तर्गत निम्नलिखित कार्यों की पूर्ण जानकारी प्राप्त करने पर बल दिया जाता है :—अनाज छानना, साफ करना और पीसना, भोजन बनाना, ... मंगौड़ी बनाना, कातना, बुनना, सीना, कसीदा ... तेल, साबुन और वेसलीन बनाना, बर्तनों पर ... घरेलू चिकित्सा करना; जिल्दसाजी, ... श्रम के कार्य।

... गठित करके उसमें आगे लिखे नवीन ... गई है—मोज़ा, बनियान, चाक, स्लेट, ... और पाउडर बनाना; अर्वी, कार्डबोर्ड,

हाथ के करघे की बुनाई, कपड़े की छपाई, सलमे-सितारे और गोटे किनारी का काम।

४. कला की शिक्षा—इस शिक्षा का उद्देश्य छात्राओं में रागात्मक वृत्ति का विकास करना और उनमें माधुर्य, सौन्दर्य एवं सुरुचि उत्पन्न करना है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये बालिकाओं को विभिन्न कलाओं से अवगत कराया जाता है। उदाहरणार्थ, कक्षा १ से कक्षा ५ तक की छात्राओं के लिये सङ्गीत तथा चित्रकला की शिक्षा प्राप्त करना अनिवार्य है। कक्षा ६ से उन्हें इन दोनों विषयों में से केवल एक का चयन करने का अधिकार है। संगीत के अन्तर्गत वाद्य एवं गायन दोनों की व्यवस्था है। बालिकाओं के लिये नृत्य सीखने का समुचित प्रबन्ध है।

५. नैतिक शिक्षा—विद्यापीठ का प्रमुख उद्देश्य छात्राओं का चारित्रिक निर्माण करना है। अतः इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये नैतिक शिक्षा की व्यवस्था की गई है। इस शिक्षा का रूप व्यावहारिक है। व्याख्यानों तथा उपदेशों द्वारा चरित्र-निर्माण के कार्य को वरीयता नहीं दी जाती है। इसके विपरीत सामूहिक प्रार्थना, साप्ताहिक विचार-विनिमय, छात्र-संगठन, स्वच्छ वातावरण एवं सामूहिक जीवन द्वारा बालिकाओं के चरित्र का निर्माण करने का प्रयास किया जाता है।

## विद्यापीठ के विशिष्ट शैक्षिक कार्य क्रम

विद्यापीठ में कतिपय विशिष्ट शैक्षिक कार्य-क्रमों का आयोजन किया गया है। इनका उद्देश्य बालिकाओं की विभिन्न क्षमताओं तथा अभिरुचियों का विकास करके उनके व्यक्तित्व का बहुमुखी विकास करना है। ये कार्य-क्रम निम्नाङ्कित हैं

१. वाद-विवाद परिषद तथा बालिकासंघ—विद्यापीठ में विभिन्न विषयों की वाद विवाद परिषदें हैं। विद्यालय की छात्राओं के लिये एक बालिकासंघ भी है। इसके द्वारा उन्हें वक्तृत्व की कला, भाषण की निर्भीकता, ज्ञानार्जन की जिज्ञासा, चिन्तन की शक्ति तथा तर्क की पटुता को अनुभव करने का अवसर प्रदान किया जाता है।

२. संगीत एवं कला-परिषदें—संगीत एवं कला-परिषदों को आयोजित किया गया है जिनके द्वारा बालिकाओं में रसात्मकता, कलात्मकता तथा सौन्दर्य तत्त्व की भावनाओं का विकास किया जाता है।

३. अन्य परिषदें—छात्राओं के लिये साहित्य, दर्शन तथा समाज शास्त्र की परिषदें आयोजित की गई हैं। इनके माध्यम से इनमें गम्भीर अध्ययन एवं विचार-विमर्श के गुणों का विकास किया जाता है।

४. समाज-सेवा—छात्राओं को समाज-सेवा के लिये प्रोत्साहित किया जाता है। उद्देश्य की प्राप्ति के लिये रात्रि-पाठशालायें संचालित की जाती हैं। छात्राओं द्वारा उनमें वयस्क स्त्रियों को शिक्षा दी जाती है। इसके अतिरिक्त वे समाज-शिक्षा के अन्य कार्य-क्रमों में भी भाग लेती हैं।

५. पाठ्य-बाह्य-क्रियायें—विद्यापीठ में पाठ्य-बाह्य-क्रियाओं पर विशेष बल दिया जाता है। इन क्रियाओं में भ्रमण, यात्रा, पर्व एवं त्यौहार समारोह, शिक्षण-प्रयोजनों, वार्षिक बालमेला और अभिनय विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

उपसंहार

बनस्थली विद्यापीठ बालिका-शिक्षा के क्षेत्र में एक अद्वितीय तथा सफल परीक्षण है। सम्पूर्ण भारतवर्ष में यह संस्था अपने ढङ्ग की निराली है। इसमें बालिकाओं को पाश्चात्य विषयों की शिक्षा भारतीय आदर्श के अनुसार दी जाती है। इस बात का अथक प्रयास किया जाता है कि छात्रायें अपने भावी जीवन में देश की उत्तम नागरिक बनकर समाज में अपना उचित स्थान ग्रहण कर सकें। भारतीय परम्पराओं तथा भारतीय संस्कृति से अवगत कराके उन्हें स्त्रियों के उच्च दायित्वों तथा कर्त्तव्यों की भावना से सराबोर कर दिया जाता है। उनकी शारीरिक, मानसिक, चारित्रिक, व्यावहारिक, सामाजिक तथा रागात्मक क्षमताओं का उन्नयन करके उनके व्यक्तित्व का सर्वतोमुखी विकास किया जाता है। सारांश में बनस्थली की शिक्षा भारतीय नारी-जीवन के पुनर्निर्माण की एक पूर्ण तथा सराहनीय योजना है।

## सारांश

### १. बेसिक शिक्षा

तत्कालीन शिक्षा-पद्धति के दोष—(१) पूर्णतया पुस्तकीय, साहित्यिक तथा शास्त्रीय, (२) बुद्धि तथा समझ में कोई उन्नति नहीं, (३) ज्ञान का असम्बद्ध विषयों में विभाजन, (४) व्यावहारिक कुशलता की अवहेलना, (५) प्रतिस्पर्द्धा तथा प्रतिद्वन्द्विता की भावना को प्रोत्साहन, (६) भारतीय संस्कृति का कोई स्थान नहीं, (७) अंग्रेजी का सर्वोच्च स्थान, (८) मातृभाषा का गौण स्थान, (९) शिक्षित तथा अशिक्षित व्यक्तियों के मध्य भेदभाव, (१०) जनसाधारण की शिक्षा की अवहेलना, और (११) अत्यधिक अपव्यय।

बेसिक शिक्षा का जन्म और कार्यान्वन—शिक्षा के सम्बन्ध में गाँधी जी
के विचार मौलिक थे। शिक्षा से उनका अर्थ था बच्चे एवं मनुष्य की सम्पूर्ण
शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक शक्तियों का सर्वतोमुखी विकास। १९३७ में
वर्धा में 'अखिल भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन' हुआ और गाँधी जी
उसके समक्ष अपनी योजना प्रस्तुत की। यही योजना 'बेसिक शिक्षा-योजना
के नाम से विख्यात हुई। 'जाकिर हुसेन समिति' ने इस योजना के लिये पाठ्य-
क्रम तैयार किया। 'प्रथम और द्वितीय खेर समिति' ने केन्द्रीय सरकार को
इसके सम्बन्ध में सुझाव दिये। १९३८ में 'बेसिक शिक्षा-योजना' का कार्या-
न्वन किया गया।

बेसिक योजना की रूपरेखा—(१) ६ से १४ वर्ष तक के बच्चों के लिये
अनिवार्य, (२) शिक्षा का माध्यम मातृभाषा, (३) सम्पूर्ण शिक्षा का किसी
आधारभूत शिल्प से सम्बन्ध, (४) पाठ्य विषयों में आधारभूत शिल्प, मातृ-
भाषा, हिन्दी, गणित, सामाजिक विषय, सामान्य विज्ञान और कला तथा (५)
अध्यापन का कार्य क्रियाओं एवं अनुभवों के माध्यम से।

बेसिक शिक्षा के सिद्धान्त—(१) जनसाधारण की शिक्षा, (२) अनिवार्य
एवं निःशुल्क शिक्षा, (३) हस्तशिल्प की शिक्षा, (४) स्वावलम्बी शिक्षा, (५)
शिक्षा में शारीरिक श्रम, और (६) सामाजिक शिक्षा।

बेसिक शिक्षा के उद्देश्य—(१) नागरिकता के गुणों का विकास, (२)
नैतिक विकास, (३) सांस्कृतिक उद्देश्य, (४) त्रिविध विकास, (५) आर्थिक
उद्देश्य, और (६) सर्वोदय समाज।

बेसिक शिक्षा की विशेषतायें—(१) मनोवैज्ञानिक आधार, (२) सामा-
जिक आधार, (३) आर्थिक आधार, (४) हस्तश्रम का महत्त्व, (५) विद्यालय,
गृह और समाज के जीवन में सामंजस्य, (६) सहसम्बद्ध शिक्षण, (७) ज्ञान
एक अभिन्न अखंड समष्टि, (८) बालक-प्रधान शिक्षा, (९) क्रिया-प्रधान
शिक्षा, (१०) शिक्षा का माध्यम आधारभूत शिल्प, और (११) स्वतंत्रता
प्रधान प्रणाली।

बेसिक शिक्षा के दोष—(१) विशेष रूप से ग्रामों के लिये, (२) उत्पा-
दिता सिद्धान्त पर अत्यधिक बल, (३) विज्ञान के आधुनिक युग में मध्य-
कालीन उद्योगों के प्रयोग की निरर्थकता, (४) धार्मिक शिक्षा का अभाव, (५)
विभिन्न विषयों के लिये समय का त्रुटिपूर्ण विभाजन, और (६) प्राथमिक शिक्षा
पर अत्यधिक बल।

## २. विश्व-भारती

यह विश्वविद्यालय कलकत्ता से लगभग सौ मील दूर बोलपुर रेलवे स्टेशन से दो मील है। १८६३ में महर्षि देवेन्द्र नाथ टैगोर ने यहाँ भगवान् के भक्तों के लिये एक आश्रम स्थापित किया था। १९०१ में रवीन्द्रनाथ टैगोर ने शिक्षा में एक नवीन परीक्षण करने के लिये यहाँ 'शान्तिनिकेतन' नामक एक विद्यालय स्थापित किया। १९२२ में उन्होंने इसे एक अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय में परिणत करके इसका नाम 'विश्वभारती' रखा। यह शान्त वातावरण में स्थित है।

**टैगोर के शैक्षिक विचार**—टैगोर वर्तमान शिक्षा-प्रणाली से असंतुष्ट थे। उनके मतानुसार यह बालकों की प्राकृतिक शक्तियों के विकास में बाधा पहुँचाती थी। वे कृत्रिम वातावरण के विरोधी और स्वतंत्रता के समर्थक थे। वे शिक्षा द्वारा छात्रों को आत्म-अभिव्यक्ति का अवसर प्रदान करना चाहते थे। उनकी धारणा थी कि प्रकृति के माध्यम से ही मानव को सत्य का आभास हो सकता है। वे भारतीय संस्कृति के पुजारी और पाश्चात्य संस्कृति का सम्मान करते थे। परन्तु वे पाश्चात्य संस्कृति को भारतीयों के लिये उपयुक्त नहीं समझते थे। उनका विश्वास था कि बच्चों की अर्द्ध-चेतन बुद्धि उनकी चेतन बुद्धि से अधिक शक्तिशाली होती है। वे स्कूलों में बच्चों के प्रति सहानुभूति का व्यवहार चाहते थे।

**विश्वभारती के उद्देश्य**—(१) अनुभव किये गये सत्य के विभिन्न रूपों को परिज्ञान के उद्देश्य से मानव मस्तिष्क का अध्ययन करना, (२) प्राच्य संस्कृतियों में सामंजस्य स्थापित करना, (३) पाश्चात्य विज्ञान तथा संस्कृति का समरूप अध्ययन करना, (४) पूर्व तथा पश्चिम में निकट सम्पर्क स्थापित करना, (५) एशियाई विचार को दृष्टिकोण में रख कर पाश्चात्य देशों से सम्पर्क बढ़ाना, (६) सहबंधुत्व की भावना का विकास करना, (७) विश्व-शान्ति की दशाओं को जन्म देना, और (८) सांस्कृतिक केन्द्र का निर्माण करना।

(२) शिक्षा-भवन, (३) विद्या-
... (७) चीन-भवन,

... (२) दुग्धशाला विभाग, (३)

(४)

६ बजे

रात्रि तक, (२) सावास एवं सह-शिक्षा विश्वविद्यालय, (३) शिक्षकों तथा छात्रों में घनिष्ठ सम्बन्ध, (४) छात्रों तथा छात्राओं के लिये पृथक् छात्रावास, (५) खुले मैदानों या वृक्षों के नीचे कक्षायें, (६) विस्तृत पाठ्य-क्रम, (७) सामूहिक जीवन, (८) समाज-सेवा का आदर्श, (९) स्वयं शासित संस्था, (१०) डेरी फार्म, अस्पताल, मुद्रणालय, मन्दिर कारखाने, (११) कुटीर उद्योगों की शिक्षा, (१२) विद्यार्थियों के न्यायालय, (१३) अंग्रेजी एवं हिन्दी की पत्रिकायें, और (१४) ग्राम-उत्थान का कार्य।

## ३. अरविन्द-आश्रम

**श्री अरविन्द के धर्म तथा संस्कृति-सम्बन्धी विचार**—श्री अरविन्द की भारतीय धर्म तथा संस्कृति में दृढ़ आस्था थी। उनके विचारानुसार आध्यात्मिक संस्कृति के रूप में भारतीय सभ्यता का सर्वप्रथम स्थान है। भारत में महानतम् आध्यात्मिक सत्य को अधिकतम् व्यापकता से देखा जाता है। भारतीय संस्कृति ने सत्य की निरन्तर खोज की है। इसने धर्म पर वास्तविक आध्यात्मिकता के आदर्श की छाप लगा दी है। भारतीय दर्शन के प्रमुख आध्यात्मिक सत्य व्यक्तियों के सामान्य मस्तिष्क पर अंकित कर दिये गये हैं। समस्त भारतीय धर्म एक सर्वोच्च प्राणी अथवा ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास करते हैं। ईश्वर एक सर्वोच्च वास्तविकता है। भारतीय दर्शन और धर्म की अनेकरूपता श्रेष्ठतर धार्मिक संस्कृति का चिन्ह है।

**श्री अरविन्द के शिक्षा-सम्बन्धी विचार**—श्री अरविन्द के शिक्षा-सम्बन्धी विचार आध्यात्मिकता, साधना, ब्रह्मचर्य और योग पर आधारित हैं। उनका विश्वास था कि इस प्रकार की शिक्षा से मानव का पूर्ण विकास हो सकता है। उनके मतानुसार अंतःकरण अथवा मानस शिक्षा का प्रमुख अङ्ग है। केवल ज्ञान की प्राप्ति ही शिक्षा नहीं है। सच्ची शिक्षा वही है, जिसमें मानव का पूर्ण विकास करने की क्षमता हो। उन्होंने किसी ऐसे विषय को जोड़ा नहीं जो, जिसमें वैदिक अभिव्यक्ति तथा जीवन की क्रियाशीलता के गुण विद्यमान हों। उनका कथन था कि शिक्षा में बालक को पूर्ण स्वतन्त्रता देनी चाहिये। शिक्षा बालक के स्वभाव के अनुकूल होनी चाहिये। बालक एक जड़ पदार्थ नहीं है, जिसे शिक्षक जिधर भी चाहे ले जाय। बालक को अपनी मानसिक, नैतिक और व्यावहारिक शक्तियों को स्वयं तथा स्वतन्त्र रूप से विकसित करने में सहायता दी जानी चाहिये।

**श्री अरविन्द के शिक्षा-सिद्धान्त**—(१) शिक्षा का माध्यम मातृ-भाषा, (२) बालकों की रुचि पर विशेष ध्यान, (३) ब्रह्मचर्य का विकास, (४) मानसिक

क्षमताओं का विकास, (५) पाठ्य-क्रम की रोचकता, (६) शिक्षक बालक का निर्देशक, पथ-प्रदर्शक तथा सहायक, (७) बालक का शिक्षा में प्रमुख स्थान, (८) अन्तःकरण का विकास, और (९) नैतिकता का विकास।

अरविन्द आश्रम—यह आश्रम पांडिचेरी में १९१० में स्थापित किया गया। प्रारम्भ में इसमें केवल ८ साधक थे। १९२६ में यह संस्था ८०० हो गई। इसमें १९४० में आश्रम के बालकों के लिये शिक्षा की व्यवस्था की गई। १९२० से इसका संचालन एक फ्रांसीसी महिला जिन्हें 'दी मदर' कहते हैं, कर रहीं हैं। यह आश्रम आध्यात्मिक शान्ति के इच्छुक जिज्ञासुओं का एक केन्द्र है। सब साधक एक परिवार के सदस्यों के समान रहते हैं। श्री अरविन्द के आदर्शों का पालन करने वाला कोई भी स्त्री या पुरुष आश्रम का सदस्य बन सकता है। इनका पथ-प्रदर्शन 'मदर' के द्वारा किया जाता है। साधकों का जीवन आध्यात्मिक अनुशासन पर आधारित है। वे मन, वचन, कर्म से इसी जीवन मे 'दैवी जीवन' प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। साधकों के जीवन का मूल-मन्त्र निस्स्वार्थ सेवा-भावना से कार्य करना है।

आश्रम स्कूल—यह स्कूल १९४३ मे स्थापित किया गया। प्रारम्भ मे इसमे ३२ छात्र थे, परन्तु अब ३०० से अधिक हैं। शिक्षा निःशुल्क दी जाती है। अध्यापकों को वेतन नहीं दिया जाता है। शिक्षा के विषय-गणित, भूगोल, इतिहास, भौतिक विज्ञान, रसायन-शास्त्र, चित्रकला आदि हैं। भाषाओं में अंग्रेजी, संस्कृत, तामिल, फ्रेंच, जर्मन आदि के शिक्षण की व्यवस्था है। स्कूल का शिक्षा का स्तर हमारे देश के 'हाई स्कूल' के समान है। वार्षिक परीक्षायें नहीं होती हैं। छात्र स्वतन्त्र वातावरण में विद्या का अर्जन करते हैं। शिक्षा मे धर्म का कोई स्थान नहीं है।

श्री अरविन्द अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय केन्द्र—इसकी स्थापना ६ जनवरी, १९५२ को की गई थी। इसमें अधलिखित पाठ्य-क्रमों के शिक्षण की उपयुक्त व्यवस्था है—(१) शिशु शिक्षा, (२) प्राथमिक शिक्षा, (३) माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक शिक्षा, (४) विश्व-विद्यालय शिक्षा, (५) व्यावसायिक शिक्षा, और (६) वयस्क शिक्षा। केन्द्र का उद्देश्य छात्रों के शरीर, मस्तिष्क और जीवन का चतुर्मुखी विकास करना है। सह-शिक्षा का प्रचलन है। किसी जाति, धर्म और राष्ट्र का बालक प्रवेश ले सकता है। वर्ष के अन्त में परीक्षा नहीं होती है। कोई डिग्री अथवा उपाधि नहीं दी जाती है। लगभग ५०० छात्र और १२० अध्यापक हैं। केन्द्र का प्रशासन एक शैक्षिक प्रधान करता है। सभी विषयों के लिये पृथक् कक्ष हैं।

## ४. गुरुकुल

**प्राचीन गुरुकुल-शिक्षा-प्रणाली**—प्राचीन समय में बालक गुरु के गृह अथवा कुल में रह कर विद्यार्जन करते थे। गुरुकुल जनपद कोलाहल से दूर प्राकृतिक रम्य स्थल में होते थे। इनमें उच्च शिक्षा दी जाती थी, इनका आधार भारतीय संस्कृति थी और शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को लौकिक से पारलौकिक की ओर ले जाना था। गुरुकुलों में छात्रों को ब्रह्मचर्य-जीवन व्यतीत करना पड़ता था, उनके लिये एक निश्चित दिनचर्या थी, उन्हें गुरु की सेवा करनी पड़ती थी, और उन्हें मौखिक रूप से शिक्षा दी जाती थी। मुसलमान और अंग्रेज शासकों के काल में गुरुकुलों और उनकी शिक्षा का अन्त हो गया।

**आधुनिक काल में गुरुकुलों के लिये आन्दोलन**—बीसवीं शताब्दी के उप-काल में राजनैतिक, सामाजिक तथा धार्मिक क्रान्तियों के मध्य गुरुकुलों की स्थापना के लिये आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। इसका श्रेय स्वामी दयानन्द सरस्वती को है। उन्होंने पाश्चात्य संस्कृति से सराबोर अंग्रेजी की शिक्षा को भारत के लिए अनुपयुक्त बताया। उन्होंने तत्कालीन संस्कृत पाठशालाओं की शिक्षा का भी समर्थन नहीं किया। उन्होंने कहा कि आठ वर्ष की आयु के पश्चात् बालकों तथा बालिकाओं को पृथक् गुरुकुलों में शिक्षा प्रदान की जाय।

**गुरुकुल संस्थाओं का निर्माण**—स्वामी दयानन्द के शिक्षा-सम्बन्धी आदर्शों से प्रेरित होकर अधोलिखित गुरुकुलों की स्थापना की गई :—(१) गुरुकुल कांगड़ी, (२) गुरुकुल वृन्दावन, (३) कन्या-गुरुकुल, देहरादून; (४) कन्या गुरुकुल, [illegible], और (५) आर्य कन्या महाविद्यालय, बड़ौदा।

**गुरुकुल शिक्षा के उद्देश्य**—(१) आठ वर्ष की आयु में छात्रों को गुरुकुलों में शिक्षा देना, (२) उनको नागरिक जीवन की बुराइयों से दूर रखना, (३) [illegible] के अनुसार शिक्षा देना, (४) छात्रों का [illegible] करना, (५) छात्रों में ब्रह्मचर्य द्वारा [illegible] करना, (६) छात्रों के चरित्र का [illegible] करना, (७) छात्रों का [illegible] विकास करना, (८) छात्रों को [illegible] करना, (९) छात्रों को [illegible] करना, (१०) छात्रों में [illegible] करना, (११) छात्रों में [illegible], (१२) [illegible], और (१३) [illegible]।

गुरुकुल-शिक्षा की विशेषतायें—(१) छात्रों का साधारण जीवन, (
निश्चित कार्य-क्रम, (३) सामुदायिक जीवन, (४) सह-शिक्षा का निषेध, (
ललित कलाओं की शिक्षा का निषेध, (६) शिक्षा का माध्यम हिन्दी, (
सभी आधुनिक विषयों का अध्ययन, और (८) शोध-कार्य की सुविधा ।

## ५. बनस्थली विद्यापीठ

बनस्थली विद्यापीठ जयपुर से ४५ है। इसकी स्थापना पं० हीराला
शास्त्री ने १९३५ में अपनी एकमात्र पुत्री शान्ताबाई की स्मृति में की थी
प्रारम्भ में इसका नाम 'राजस्थान बालिका-विद्यालय' था । १९४२ से
'बनस्थली विद्यापीठ' के नाम से प्रख्यात है ।

*शिक्षा-विभाग*—(१) *प्राथमिक विभाग*, (२) *संस्कृत विभाग*, (
माध्यमिक शिक्षा-विभाग, (४) सामान्य हाईस्कूल, (५) बहुउद्देशीय हाई स्कूल
(६) कॉलेजीय शिक्षा-विभाग, और (७) अन्य शिक्षा-विभाग ।

लक्ष्य एवं उद्देश्य—(१) प्राचीन भारतीय आदर्शों के अनुसार आधुनि
शिक्षा, (२) बालिकाओं का शारीरिक, मानसिक तथा चारित्रिक विका
(३) गृह-कार्यों की शिक्षा, (४) बालिकाओं में सहयोग, समाज-सेवा, नागरिकत
देश-प्रेम एवं स्वस्थ राष्ट्रीयता की भावनाओं का समावेश, (५) बालिकाओं
स्त्री-स्वातन्त्र्य-भावना का विकास, (६) शिक्षा को बाह्य परीक्षाओं से मुक्त कर
(७) प्राच्य आध्यात्मिक विरासत एवं पाश्चात्य सफलताओं का समन्वय, औ
(८) बालिकाओं के व्यक्तित्व का सर्वतोमुखी विकास ।

विशेषतायें—(१) स्वतन्त्र एवं प्रगतिशील शिक्षा, (२) व्यक्तिगत स्वतंत्र
एवं सामाजिक उत्तरदायित्व का समन्वय, (३) सादा और सरल जीवन, (
कातना और खद्दर पहिनना, (५) छात्राओं द्वारा निजी एवं घरेलू कार्य कि
जाना, (६) सामाजिक एवं सामुदायिक कार्य, (७) शुद्ध बालिका विद्याल
(८) सर्वतोमुखी शिक्षा, (९) शारीरिक शिक्षा, (१०) बालिकाओं का सम्मि
लित कोष, (११) संरक्षकों से सम्पर्क, और (१२) शिक्षा को दैनिक कार्य-क्र
के बन्धन से मुक्ति ।

पंचमुखी शिक्षा—(१) शारीरिक शिक्षा, (२) बौद्धिक शिक्षा, (३) प्रा
गिक शिक्षा, (४) कला की शिक्षा, और (५) नैतिक शिक्षा ।

विशिष्ट शिक्षा कार्य-क्रम—(१) वाद-विवाद परिषदें तथा पार्लियामे
(२) *संगीत एवं कला परिषदें*, (३) *अन्य परिषदें*, (४) *समाज-सेवा*
(५) पाठ्य-बाह्य क्रियायें ।

# सहायक पुस्तकों की सूची


1. T. S. Avinashlingam : *Understanding Basic Education.*
2. Hans Raj Bhatia : *What Basic Education Means.*
3. M. K. Ghandi : *India of my Dreams.*
4. Mahatma Gandhi : *Autobiography.*
5. Rabindranath Tagore: *Personality.*
6. Rabindranath Tagore : *My Reminiscences.*
7. Sri Aurobindo : *The Unity of Indian Religion.*
8. Sri Aurobindo and The Mother : *On Education.*
9. Sri Aurobindo : *The Supernatural Manifestation.*
10. Sri Aurobindo : *The Life Divine.*
11. *Report of the Zakir Husain Committee.*
12. *Educational Reconstruction* (Hindustani Talimi Sangh)
13. *Report of the Committee of the C. A. B. E. appointed to consider the Wardha Scheme of Education.*
14. *Report of the Second Wardha Education Committee of C. A. B. E.. 1939, together with the Decisions of the Board thereon.*
15. *Year Book of Education* (Evan Bros.)
16. *Visva Bharti Prospectus.*
17. *Directory of Institutions for Higher Education,* 1960.
18. *Physical Education in Aurobindo Ashram.*
19. *Integral Education* (Sri Aurobindo Ashram)
20. *Sri Aurobindo International University Centre* (Sri Aurobindo Ashram).

२१. मलैया तथा मलैया : बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्त।
२२. हंसराज भाटिया : बेसिक शिक्षा क्या है।
२३. झिगरन और शर्मा : हमारे शिक्षा-प्रतिवेदन।
२४. सिथिया बोल्स : भारत मेरा घर।
२५. शान्ति निकेतन ( टैगोर प्रकाशन )।
२६. आर० आर० दिवाकर : महायोगी
२७. बनस्थली विद्यापीठ, २२ वाँ कार्य-विवरण
२८. बनस्थली विद्यापीठ विवरण पत्रिका, १९५९–६०
२९. बनस्थली विश्वविद्यालय की कल्पना, १९५५
३०. हमारी विचारधारा ( बनस्थली प्रकाशन

## सहायक पुस्तकों की सूची


1. T. S. Avinashlingam : *Understanding Basic Education.*
2. Hans Raj Bhatia : *What Basic Education Means.*
3. M. K. Ghandi : *India of my Dreams.*
4. Mahatma Gandhi : *Autobiography.*
5. Rabindranath Tagore: *Personality.*
6. Rabindranath Tagore : *My Reminiscences.*
7. Sri Aurobindo : *The Unity of Indian Religion.*
8. Sri Aurobindo and The Mother : *On Education.*
9. Sri Aurobindo : *The Supernatural Manifestation.*
10. Sri Aurobindo : *The Life Divine.*
11. *Report of the Zakir Husain Committee.*
12. *Educational Reconstruction* (Hindustani Talimi Sangh)
13. *Report of the Committee of the C. A. B. E. appointed to consider the Wardha Scheme of Education.*
14. *Report of the Second Wardha Education Committee of C. A. B. E., 1939, together with the Decisions of the Board thereon.*
15. *Year Book of Education* (Evan Bros.)
16. *Visva Bharti Prospectus.*
17. *Directory of Institutions for Higher Education,* 1960.
18. *Physical Education in Aurobindo Ashram.*
19. *Integral Education* (Sri Aurobindo Ashram)
20. *Sri Aurobindo International University Centre* (Sri Aurobindo Ashram).

२१. मलैया तथा मलैया : बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्त ।
२२. हंसराज भाटिया : बेसिक शिक्षा क्या है ।
२३. भिगरन और शर्मा : हमारे शिक्षा-प्रतिवेदन ।
२४. सिपिया बोल्स : भारत मेरा घर ।
२५. शान्ति निकेतन ( टैगोर प्रकाशन ) ।
२६. आर० आर० दिवाकर : महायोगी
२७. बनस्थली विद्यापीठ, २२ -विवरण
२८. बनस्थली विद्यापीठ
२९. बनस्थली
३०. हमार

# अनुक्रमणिका